परिशोध

अंक 65 वर्ष 2019–2020 (श्री गुरु नानक देव विशेषांक)

संस्थापक संपादक – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

यू.जी.सी. प्रमाणित पत्रिका सूची (केयर लिस्ट 2019) में शामिल

हिंदी विभाग

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

मुख्य संपादक
नीरजा सूद

संपादक
गुरमीत सिंह

परिशोध के अंक 64 (भारतीय साहित्य विशेषांक) पर एक प्रतिक्रिया

प्रिय डॉ. गुरमीत सिंह

आपकी भेजी पत्रिका परिशोध मिली। धन्यवाद। आपने संपादकीय में अनुवाद को महत्व देकर तथा अन्य भाषाओं के लेखकों पर शोध सामग्री लेकर बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपने यह शुरुआत की है तो मैं आपको बधाई देता हूँ। यह काम भाषाओं को एक साथ लायेगा और नयी पीढ़ी भाषागत एकता के महत्व को समझेगी। मेरे विचार में अनुवाद का एक पेपर अनिवार्य कर देना चाहिए। मैंने सरकार को प्रस्ताव किया है एक अनुवाद विश्वविद्यालय खोलना चाहिए। शुभकामनाओं सहित

प्रोफेसर कमल किशोर गोयनका
प्रसिद्ध साहित्यकार एवं
उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिंदी संस्थान

विषयानुक्रम

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्रमांक
मुख्य सम्पादक की ओर से	: नीरजा सूद	**v**
संपादकीय	: गुरमीत सिंह	**vii**
श्री गुरु नानक देव की दिव्य ज्ञान–सरणी	: नीरजा सूद	01
श्री गुरु नानक देव के काव्य में मानवतावाद	: योजना रावत	06
साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सद्भाव के अग्रदूत : श्री गुरु नानक देव	: अशोक सभ्रवाल	14
श्री गुरु नानक देव के संदेश और वाणी का भाषाई विश्लेषण	: गुरमीत सिंह	20
श्री गुरु नानक काव्य में सामाजिक अवधारणा : एक विश्लेषण	: आदित्य आंगिरस	28
श्री गुरु नानक वाणी में मन जीतै जग जीत का संकल्प	: मलकीत सिंह	35
हिंदी सन्त साहित्य में श्री गुरु नानक देव का योगदान	: रामबाबू	41
श्री गुरु नानक देव की प्रगतिशील विचारधारा और आधुनिक हिंदी कविता	: सुनीता शर्मा	48
श्री गुरु नानक वाणी में सृष्टि–परिकल्पना	: नरेन्द्र कुमार	60
मानवतावाद के रक्षक : श्री गुरु नानक देव	: सुनीता कुमारी	69
श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित गुरु नानक वाणी में पर्यावरण चिन्तन	: गगनदीप कौर	75
सामासिक संस्कृति के विकास में श्री गुरु नानक देव का योगदान	: नितिन मिश्रा	82
श्री गुरु नानक देव : मैथिलीशरण गुप्त और अलामा मुहम्मद इकबाल के काव्य में	: नवीन कुमार नीरज	90
श्री गुरु नानक वाणी में विन्रमता का महत्त्व	: पिंकी	97
श्री गुरु नानक देव की उदासियाँ और उसके निहितार्थ	: सुअम्बदा कुमारी	104
श्री गुरु नानक देव के जीवन और वाणी में प्रेम तत्त्व	: वंदना रानी	112
श्री गुरु नानक देव का संगीत प्रेम	: मधु कुमारी	120
श्री गुरु नानक वाणी में प्रयुक्त लोक काव्य–रूपों का परिचय	: पवनदीप कौर	128
श्री गुरु नानक देव की दृष्टि में कादर की कुदरत	: सुरिन्द्र सिंह	134
समाज सुधारक : श्री गुरु नानक देव	: कमलजीत कौर	142

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ : ਕੋਮਾਂਤਰੀ ਪਰਿਪੇਖ	:ਕੁਲਦੀਪ ਸਿੰਘ	148
ਵਾਤਾਵਰਣ ਚਿੰਤਨ : ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਮਹੱਤਵ	:ਹਰਮੇਲ ਸਿੰਘ	156
ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ	:ਪਰਮਜੀਤ ਕੌਰ	167
ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ-ਬਾਣੀ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ ਪੱਖ	:ਰਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ	174
ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਦੌਰ ਦੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ : ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਤਿਰੋਧ ਦੇ ਬਿੰਬ ਵਜੋਂ	:ਜਸਬੀਰ ਸਿੰਘ	181
ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਨਿਆਂ ਸਿਧਾਂਤ	:ਬਲਜੀਤ ਸਿੰਘ	192
Guru as a Literary Motif : A NanaKian Critique	:Rajesh Kumar Jaisawal	202
An Analytical Study of Shri Guru Nanak Dev as the Voice of the Subaltern	:Kriti Kuthiala Kalia	211
Shri Guru Nanak and Effective Communication : A Theoretical Analysis	:Bhavneet Bhatti	218

मुख्य संपादक की ओर से

सगणी धरती सकर होवे खुसी करे नित जीउ

भी तू है सालहणा आखण लहै न चाउ

देश और काल की सामयिक चेतना के वाहक श्री गुरुनानक देव जी एक ऐसे महानायक एवम् कालजयी कवि हैं जिनकी वाणी भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण विश्व का पथ प्रशस्त करने में पूर्णतः सक्षम है। 'आदि सचु जुगादि सचु' का उद्घोष 'हुक्मी हुकमु चलाए राहु, नानक विगसै, बेपर वाहु' के समक्ष किसी वर्चस्व को स्वीकार नहीं करता। नानकवाणी में समय की नब्ज को पहचान कर सामाजिकता और नैतिकता का जो स्वर गूंजता है तथा सत्यतत्त्व निरूपण के साथ–साथ सत्य आचरण का जो दिव्य संदेश निहित है वह आज भी नितान्त व्यावहारिक तथा प्रासंगिक है।

श्री गुरुनानक देव के 550वें प्रकाशोत्सव के संदर्भ में पंजाब विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की शोध पत्रिका 'परिशोध' का 'श्री गुरुनानक विशेषांक' निश्चित रूप से शोध की मांगलिक और गौरवमयी परम्परा को दर्शाता है । मैं विभागाध्यक्ष डॉ. गुरमीत सिंह और संपादक मंडल को बधाई और साधुवाद देती हूँ जिनके सफल निर्देशन में परिशोध का यह विशेषांक प्रकाशित हो रहा है ।

नीरजा सूद

संपादकीय

इन विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिए वे मनुष्य की अंतर्निहित शक्ति को जागृत करने का ही आवाह्न करते हैं। वे निर्भय, निरहंकार और निर्वाह अकाल पुरूष में अखंड विश्वास करते थे और उसी विश्वास को प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में जाग्रत करते थे। अत्याचारी का अत्याचार इसलिए सह लिया जाता है कि साधारण मनुष्य के मन में भय और आशंका का भाव रहता है। भयवश और लोभवश मनुष्य क्या कुछ नहीं करता। विरूप परिस्थितियों में भी गुरु नानक भय को छोड़कर सत्य पर अडिग रहने की बात करते हैं। कहते तो और लोग भी हैं, पर इतिहास साक्षी है कि गुरु के अनुयायियों ने भय का सही अर्थों में त्याग किया था।

– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सिख गुरूओं का पुण्य स्मरण)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा श्री गुरु नानक देव के लिए कहे गए यह शब्द आज की परिस्थितियों में बहुत अर्थपूर्ण प्रतीत होते हैं। आज सारी दुनिया कोरोना नामक वैश्विक महामारी के आसन्न संकट से भयाक्रांत है। यह महामारी जिस तरह से सारे विश्व में फैल रही है उससे सभी लोग सहमे हुए हैं। परिस्थितियां कितनी भी विकट हों उनमें भय को छोड़ने और उनका सामना करने के लिए मनुष्य की अंतर्निहित शक्ति को जागृत करने का गुरु जी का संदेश सारी मानवता को बड़े से बड़े संकट से निकाल सकता है।

श्री गुरु नानक देव के 550वें प्रकाश पर्व को समर्पित यह बहुभाषी विशेषांक हिंदी विभाग की ओर से उनके जीवन और उनके संदेश को आप तक पहुंचाने का एक विनम्र प्रयास है। हमने नवंबर 2019 में भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् के सहयोग से आयोजित एक दिन की राष्ट्रीय संगोष्ठी में इसकी शुरूआत की थी और इसी कड़ी में यह विशेषांक भी आपके समक्ष प्रस्तुत है। श्री गुरु नानक देव की समावेशी सोच को ध्यान में रखकर ही हमने संगोष्ठी और इस विशेषांक में इस बार भाषा का कोई बंधन नहीं रखा है और इसीलिए इस प्रयास में हम हिंदी के साथ–साथ पंजाबी और अंग्रेजी भाषा को जोड़ पाए हैं। श्री गुरु नानक देव का संदेश तो सारे विश्व के लिए उपयोगी है।

इस विशेषांक में कुल 29 आलेख शामिल हुए हैं, इनमें छह आलेख पंजाबी और तीन आलेख अंग्रेजी के हैं। तीन वर्ष पहले शुरू की गई रवायत के अनुसार विभाग और बाहर के शोधार्थियों ने भी अपना योगदान दिया है। इस विशेषांक में भी 11 आलेख शोधार्थियों के हैं। प्रो. नीरजा सूद के आलेख में श्री गुरु नानक देव के दिव्य ज्ञानसरणी को आधार बनाया गया है जबकि प्रो. योजना रावत का आलेख श्री गुरु नानक देव के काव्य में मानवतावाद की बात करता है। प्रो. अशोक सभ्रवाल के आलेख में श्री गुरु

नानक देव जी को साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सद्भाव के अग्रदूत के रूप में चित्रित किया गया है। इन पंक्तियों के लेखक ने अपने आलेख में श्री गुरु नानक देव के संदेश और वाणी का भाषाई विश्लेषण करने का प्रयास किया है। डॉ. आदित्य आंगिरस के आलेख में श्री गुरु नानक के काव्य में सामाजिक अवधारणा का विश्लेषण किया गया है जिसमें ईश्वर भक्ति के माध्यम से सामाजिक समानता एवं समरसता को समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। डॉ. मलकीत सिंह का आलेख श्री गुरु नानक वाणी में 'मन जीतै जग जीत' का संकल्प प्रस्तुत करता है। डॉ. रामबाबू का आलेख हिंदी संत साहित्य में श्री गुरु नानक देव जी के योगदान को दर्शाता है। डॉ. सुनीता शर्मा का आलेख श्री गुरु नानक देव की प्रगतिशील विचारधारा की बात करता है। डॉ. नरेन्द्र कुमार का आलेख श्री गुरु नानक की वाणी में सृष्टि परिकल्पना पर आधारित है। सुनीता कुमारी के आलेख में श्री गुरु नानक देव को मानवतावाद के रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। गगनदीप कौर का आलेख पर्यावरण चिंतन पर आधारित है। नितिन मिश्रा का आलेख सामासिक संस्कृति के विकास में श्री गुरु नानक देव जी के योगदान के संदर्भ में है। नवीन कुमार नीरज का आलेख श्री गुरु नानक देव पर केंद्रित मैथिलीशरण गुप्त और अलामा मुहम्मद इकबाल के काव्य पर आधारित है। पिंकी के आलेख में श्री गुरु नानक देव की वाणी में विनम्रता के महत्त्व को बताया गया है जबकि सुअम्बदा कुमारी का आलेख श्री गुरु नानक देव की उदासियाँ और उनके निहितार्थ को दर्शाता है। वंदना रानी ने अपने आलेख में श्री गुरु नानक देव के जीवन और वाणी में प्रेमतत्व का चित्रण किया है। मधु कुमारी का आलेख श्री गुरु नानक देव जी के संगीत प्रेम के संदर्भ में है। पवनदीप कौर का आलेख श्री गुरु नानक वाणी में प्रयुक्त लोक काव्य–रूपों के परिचय की बात करता है। सुरिंदर सिंह का आलेख श्री गुरु नानक देव की दृष्टि में कादर की कुदरत पर आधारित है। कमलजीत कौर के आलेख में श्री गुरु नानक देव द्वारा समाज सुधारक के रूप में दिए योगदान को रेखांकित किया गया है ।

पंजाबी के आलेखों में डॉ. कुलदीप सिंह ने श्री गुरु नानक देव की वाणी में वैश्विक मूल्यों और आदर्श मानव की परिकल्पना को चित्रित किया गया है जबकि डॉ. जसबीर सिंह ने श्री गुरु नानक देव की वाणी में प्रतिरोध के स्वर को पंजाबी कविता के संदर्भ से उजागर किया है। हरमेल सिंह ने श्री गुरु नानक देव की वाणी में वातावरण चितंन को अपने लेख का आधार बनाया है जबकि डॉ. बलजीत सिंह ने श्री गुरु नानक देव के न्याय सिद्धांत पर चर्चा की है। डॉ. राजेंद्र सिंह ने अपने आलेख में श्री गुरु नानक देव की वाणी के सामाजिक पक्ष को उजागर किया है। डॉ. परमजीत ने श्री गुरु नानक देव की वाणी में आदर्श मानव की परिकल्पना को रेखांकित किया है।

अंग्रेजी के आलेखों में डॉ. राजेश जायसवाल ने श्री गुरु नानक देव को एक आदर्श गुरु के रूप में स्थापित करने पर जोर दिया है जबकि डॉ. कृति ने वंचित वर्गों के संदर्भ से श्री गुरु नानक देव की वाणी के ऐतिहासिक योगदान को स्पष्ट किया है। डॉ. भवनीत भट्टी ने लोगों के साथ सार्थक संवाद करने में श्री गुरु नानक देव की क्षमता और कला को संचार के आधुनिक सिद्धांतो की कसौटी के माध्यम से उजागर किया है।

इस विशेषांक के लिए हमें परिशोध के वर्ष 2019–20 के निर्धारित बजट से अतिरिक्त विशेष अनुदान देने और पहली बार बहुभाषी अंक निकालने की स्वीकृति प्रदान करने के लिए हम अपने विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर राज कुमार और डीन (रिसर्च) प्रो. आर. के. सिंगला के प्रति कृतज्ञ हैं। इसके बिना यह अंक प्रकाशित करना संभव ही नहीं था। दरअसल कुलपति प्रोफेसर राजकुमार ने ही एक बैठक में सभी विभागों से श्री गुरु नानक देव जी के 550वें प्रकाश पर्व पर अधिक से अधिक प्रकाशन करने के लिए कहा था और वहीं से इस विशेषांक का विचार पहली बार मन में आया। प्रेस प्रबंधक जतिंदर मोदगिल और अन्य अधिकारियों से मिले सहयोग और मार्गदर्शन के लिए हम उनके आभारी हैं। इसके साथ ही परिशोध के परामर्श मंडल व संपादक मंडल के सभी सदस्यों और हिंदी विभाग के कर्मचारियों, शोधार्थियों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा दायित्व है जिन्होंने इस विशेषांक के लिए हर कदम पर प्रोत्साहन और समर्थन दिया। तभी हम एक ही वर्ष में दूसरा विशेषांक निकालने में सफल हो सकें। अंत में इस विशेषांक के प्रकाशन के अवसर पर मैं अपने स्वर्गीय पिता श्री कुलदीप सिंह की स्मृति को भी नमन करना चाहता हूं, जिनका सारा जीवन एक सरकारी अधिकारी होने के बाद भी गुरूवाणी को ही समर्पित रहा और उन्होंने अनथक परिश्रम से गुरूवाणी पर ही केंद्रित दो पुस्तकें "मंगल कलश" और "मुक्ति के सोपान" भी लिखी। वे जहां भी होंगे, इस विशेषांक के प्रकाशन से अति प्रसन्न होंगे।

– गुरमीत सिंह

x

श्री गुरु नानक देव की दिव्य ज्ञान–सरणी

प्रो॰ नीरजा सूद*

भक्तिकाल में गुरु नानक का आर्विभाव उस समय हुआ जब इस्लाम धर्म का प्रवेश और तत्कालीन शासकों की निर्दयता और निरंकुशता अपनी चरम सीमा पर थी। वर्गीकृत समाज का नैराश्य, निरीह और निर्दोष प्रजा पर अन्याय और भारतीय जनमानस के दारिद्रय से जन्मी भयावहता ने उन्हें संतप्त कर दिया। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि गुरु नानक से पूर्व रामानन्द और कबीर[1] तुल्य समाज सुधारकों ने अपने अद्भुत व्यक्तित्व से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया लेकिन नानक ने व्यावहारिक स्तर पर जनमानस के साथ मृदुलता के स्तर पर सान्निध्य स्थापित किया परिणाम स्वरूप वे समाज–सुधारक की भूमिका का अतिक्रमण करके युगदृष्टा के रूप में सामने आए। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'सिख गुरुओं का पुण्य स्मरण' में ये शब्द महत्त्वपूर्ण और सार्थक हैं "यह मानना पड़ेगा कि जैसी अद्भुत प्रेरणा दायिनी शक्ति इनकी वाणियों ने दी है वैसी मध्ययुग के किसी अन्य सन्त की वाणियों ने नहीं दी है। सच्चे ह्रदय से निकले हुए भक्त के अत्यन्त सीधे उद्गार और सत्य के प्रति दृढ़ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं यह नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया है। मध्ययुग ने अन्य सन्तों का संदेश धार्मिक और सामाजिक जीवन तक ही सीमित था। गुरु नानक देव ने बृहतर पटभूमि पर रखा। यह एक बहुत बड़ी विशेषता है, जो गुरु नानक के पहले भारतवर्ष में सैकड़ों वर्ष तक किसी दूसरे महात्मा को नहीं प्राप्त हुई।"[2]

उनकी इस सफलता की पृष्ठभूमि में चार उदासियों के महत्त्व को इंगित करना भी सम्यक् होगा। चार दिशाओं के अनुरूप रचित ये उदासियां नानक के जीवन में अर्जित उनके महान् अनुभवों का अनुपम कोष कही जा सकती हैं। सांस्कृतिक आचार–विचार, आदान–प्रदान और कर्मकाण्डों के प्रति सुस्पष्ट, सृजनात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में उनकी वाणी इसलिए सशक्त माध्यम बनी क्योंकि इसकी परिधि में सम्पूर्ण जगत् समाविष्ट हो गया।

नानक निराकार सर्वशक्तिमान सच्चिदानंद, अगम्य और अगोचर परमात्मा के अनन्य स्वरूप पर मंत्र मुग्ध होकर, उनकी निर्हेतुक कृपा दृष्टि पाने के लिए भावविहवल हैं। अध्यात्म, दर्शन और चिंतन के मणिकांचन संयोग द्वारा श्री जपुजी में नानक मनुष्य को दिव्य संदेश देते हैं। इस दृष्टि से विनोवा भावे ने 'जपुजी' के भाष्य भाग के प्रारम्भ में सर्वथा सच लिखा हैं– 'जपुजी' में धर्म का निचोड़ रखा है।.... मुझे यह बहुत भाया है।... इसका जितना चिंतन करो उतना अधिक मिलता जाता है। मैं चाहता हूँ कि इसका असर हिंदुस्तान के लोगों के चित्त पर हो।"[3] नानक की वाणी संकीर्ण दायरों को लांघती हुई सम्पूर्ण विश्व की धरोहर बन जाती है। वे श्रवणमनन, गुण संकीर्तन भगवनमहिमा आदि का इतनी सहज भाषा में चित्रण करते है कि शास्त्रीय प्रपंचों के प्रति वितृष्णा का भाव उमड़ने लगता है। "आश्चर्य नहीं कि इस रचना ने हजारों लाखों का मार्गदर्शन किया है

* हिंदी–विभाग, पंजाब–विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

और न जाने कितनों को भगवत्–प्रेम की दीप शिखा दी है। प्रत्येक पाठ के बाद इससे नया आलोक मिलता है।"[4] वह परमात्मा एकमात्र कर्त्ता है जो आदि, युगादि और भविष्य सबका निर्धारक, सर्वशासक और सृष्टि संचालक है।

"हुक्मी हुकमु चलाए राहु

नानक विगसै,बेपर वाहु" [5]

"करि करि देखै सिरचणहार

नानक राचे की साचीकार" [6]

नानक इस अमिट और अकाट्य सत्य पर बल देते हैं कि नाम श्रवण मात्र से ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है कि सभी द्वीपों, भुवनों और पातालों का कार्यक्षेत्र एक ही ईश्वरीय नियम के अधीन है। यह नाम पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न दुःखों का भंजक बनता है। वह निर्मल नाम प्रेमरूपी अमृत बनकर मनुष्य को आनन्द और शांति प्रदान करता है। अहंकार और माया के मद में आसक्त को गंतव्य से परिचित कराने का निमित्त भी वही है क्योंकि अंततः तीर्थाटन की अपेक्षा आत्मतीर्थ ही सहायक सिद्ध होता है। 'कीड़ी तूलि न होवनी ते तिसु मनहु न विसरहि' (श्री जपु दर्पण 48)

"जतु पाहारा धीरजु सुनिआरू

अहरिण मति वेदु हथि आरू" [7]

दृष्टान्त के माध्यम से नानक दैवी गुणों की उपादेयता और आचरण की पवित्रता का संदेश देते हैं। हरिनाम का स्मरण साधक को निष्पाप एवं निष्कलंक बनाता है और सापेक्ष है वेद पुराण, पोथियों और धर्मग्रन्थों का अध्ययन क्योंकि सबमें उसकी अनन्तता ही वर्णित है। सबकी व्याख्याएँ अंततः एक ही निष्कर्ष प्रतिपादित करती हैं कि सृष्टि का मूल कर्त्ता केवल परमात्मा है वह अनादि अनन्त और गणनातीत है अतः सनातन है।

"सहस अठारह कहनि कतेबा, असुलभ इकु धातु

लेखा होइ न लिखीऐ लेखै होइ विणासु"[8]

वेद जिन तीन शाखाओं (सात्विक,राजसी, तामसिक) को उद्धृत करते हैं संभवतः वे ज्ञान, कर्म और उपासना अथवा त्रिदेव ही हैं। दस (चार वेद, छह शास्त्र और अठारह पुराण) में वर्णित अपरम्पार ईश्वर के अलौकिक स्वरूप को पहचानना ही साधक का लक्ष्य है और भवसागर से मुक्ति का द्वार भी यही है।

दस अक्षर मै अपरंपरो चीनै कहे नानक इव एकु तारै'[9]

प्रभु की दिव्यसत्ता का यशोगान साधक का लक्ष्य हो अन्यथा उसका मन भी नट के समान सदैव चंचल अवस्था में ठहर कर नाचता रहेगा। जिसके हृदय में अलक्ष्य एवं अभेध प्रभु का निवास है वही विकार मुक्त है।

सगणी धरती सकर होवे खुसी करे नित जीउ

भी तू है सालहणा आखण लहै न चाउ (112 (14)

राति दिहै के वार घुरहु फुरमाइया

नानक सचु सालाहि पूरा पाइया 10 (136 (27)

परमात्मा की स्तुति और दिव्य ज्ञान प्राप्ति गुरू सान्निध्य और गुरु शब्द की महिमा पर निर्भर है। गुरु शब्द की सराहना मात्र से परमात्मा का मन में वास संभव है ।

'सलादि सालाहि मनि बसैह हउमैदुखु जलि जाउ' 70 (25)

'सफालियो बिरखु हरी आवला छाप जनेरी होइ' के समान गुरु अकथ्य को कथ्य और अज्ञेय को ज्ञेय बनाने में समर्थ है। भगवान के सच्चे दरबार में स्थान पाने के लिए भी गुरु शब्द ही सर्वोत्तम आश्रय है। सद्गुरु द्वारा अर्जित ज्ञान एवं कृपा वह अमृत है जिसके समक्ष समस्त सांसारिक व्यंजन फीके एवं नीरस है। जीवन और सृष्टि के विचार तक को जानने के लिए यह अनुकम्पा ही प्रथम निमित्त है। गुरु परमात्मा का साक्षात्कार करने के पश्चात् शिष्य को भी पवित्र रूप का अनुभव करा पाने में दक्ष है। उनकी भेंट मात्र से साधक निर्भीक और निर्दोष होकर (पारसु भए जोति जोति मिलाए) अभीष्ट मनोरथ और सिद्धि प्राप्त करता है।

सति गुरु वाकि हिरदै हरि निरमुल

ना जम काणि न जमकी बाकी। [11]

अज्ञान और अहंकारवश लोक की स्थिरता पर विश्वास करके और झूठे नश्वर तन 'जा भजे ता ठीकरू होवै छाडत घड़ी न जाइ' के मान में बेसुध साधक को गुरुकृपा से ही वास्तविक ज्ञान और सत्य की प्राप्ति होती है।

नाम रूपी रस का पान करने के पश्चात् जाति की भेद भावना और लोक प्रतिष्ठा के निर्धारित आचार–विचार पंगु सिद्ध होते हैं। नानक का यह उपदेश है कि इस सत्य की उपेक्षा करके कि परलोक में जाति–भेदभाव निरस्त हो जाएगा, जाति को महत्व देना मानव व्यवहार का नियम बन गया और समाज एवं संस्कृति के लिए घातक सिद्ध हुआ क्योंकि परमात्मा का निवास एवं कृपा सदैव निम्न श्रेणी में ही संभव है।

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचू

नानक तिन के संगि साथि बडिया सिउ किया रीस

जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी क्खसीस। [12]

जाति–भेद भाव के साथ–साथ नानक बाह्य आडम्बरों और कर्मकाण्डों के परित्याग पर भी बल देते हैं। इस दृष्टि से सिद्ध और नाथों के साथ प्रश्नोत्तर (सिध गोसटि) विशेष महत्त्वपूर्ण है। दैवी गुणों के संग्रह तथा आत्म योग की साधना पर बल

देते हुए उन्हें वास्तविक विभूति से परिचित होने की शिक्षा देते हैं। नानक अध्यात्म और दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए लोकप्रचलित रूपकों, दृष्टान्तों और लोकप्रसंगों का प्रयोग करते हैं। सर्वग्राह्यता का माध्यम बन वे योगियों की मिथ्या धारणाओं को तृण मूल सिद्ध करते हैं। (इकु संसारी, इकु भंडारी, इकु लाए दिवाणु) सत्य और न्याय स्वरूप हरि अनन्त है उसकी कृपा दृष्टि के समक्ष छद्म वेष और चमत्कार निरर्थक हैं। आत्मा का परमात्मा से योग मिलाप ही वास्तविक योग है। कुमारी कन्या के समान देह को सम्पूर्ण विकारों से अछूता रखकर ही साधक को सत्य का बोध होता है–

"खिथा कालू कुआरी काइआ

जुगति डेडा परतीति ।

भुगति गिआनु दइया भंडारणि।"[13]

निष्कर्षतः गुरु नानक देव की ओजस्वी वाणी वर्तमान संदर्भ में इसलिए सर्वग्राह्य सिद्ध होती है क्योंकि अज्ञानता से उत्पन्न स्वार्थप्रियता और संकुचितता ने मनुष्य को निराश और पंगु बना दिया है।[14] सीमाओं के अतिक्रमण के पश्चात् प्रस्थान की स्थिति निश्चित रूप से जन्म लेती है। शून्यता और रिक्तता मनुष्य की जीवन शैली को अंततः परिवर्तित करती है। परिणामस्वरूप निरुपायता से उत्पन्न पराजय का भाव उसे व्यर्थता का बोध कराता है। यही वह बिन्दु है जब सत्य के साथ साक्षात्कार उसक लक्ष्य बनता है। परमात्मा की सर्वज्ञता के समक्ष अपनी दीनता और लघुता का ज्ञान होना अनिवार्य है। 'अंशी बिन अंश नाहीं, गुरु बिन गोबिंद नाहीं।

संदर्भ सूची :–

1. गुरु नानक आरम्भ से ही भक्त थे अतः उनका ऐसा मत की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था, जिसकी उपासना का स्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को समान रूप से ग्राह्य हो द्यअंत में कबीरदास के निर्गुण उपासना का प्रचार उन्होंने पंजाब में प्रारम्भ किया और वे सिक्ख सम्प्रदाय के आदि गुरु हुए द्य भक्ति या विनय के सीधे–सादे भाव सीधी–सादी भाषा में कहे गए हैं – (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012 पृष्ठ 55)

1. डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली 6, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 232,248
2. उद्धृत, श्री जपुजी दर्पण, अमरजीत सिंह धवन, चंडीगढ़, द्वितीय संस्करण, निवेदन, पृष्ठ–5
3. यथावत्, हजारी प्रसाद द्विवेदी, आमुख पृष्ठ– ध, ङ
4. ऊपरिवत् पृष्ठ 21
5. गुरु नानक रचनावली, डॉ.रत्न सिंह जग्गी, पंजाब भाषा विभाग, पटियाला, 1970, पृष्ठ 18–31

6. श्री जपुजी दर्पण, पृष्ठ– 81.1
7. यथावत्, पृष्ठ 47.22
8. गुरुनानक रचनावली पृष्ठ 50.26
9. कबीर मन निरमल भया जैसा गंगा नीर, तब पांछे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर (डॉ. पारस नाथ तिवारी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2010, पृष्ठ 178, साखी 72)
10. गुरु नानक रचनावली, पृष्ठ संख्या 316
11. गुरु नानक रचनावली, आमुख पृष्ठ xiv
12. श्री जपुजी–दर्पण, पृष्ठ संख्या 65–66
13. उतरो महागुरों, एक बार और उतरो। हम तुम्हारी ऊंचाई तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। आज भी मनुष्य की क्षुद्र अहमिका विक्षिप्त नर्त्तन कर रही है, आज भी भय और लोभ की आशंका और तृष्णा की धमाचौकड़ी व्याप्त है। एक बार और रक्षा करो मनुष्यता की, धर्म की, सत्य की। सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली– 6 पृष्ठ– 236)

श्री गुरु नानक देव के काव्य में मानवतावाद

प्रो॰ योजना रावत *

दर्शन के क्षेत्र में मानव से जुड़ी हुई दो अवधारणाएँ प्रचलित हैं जिनमें एक 'मानववाद' और दूसरी 'मानवतावाद' है। मानववाद का संबंध समाजवादी चिन्तनधारा से है। इसमें केवल उन्हीं मनुष्यों के प्रति करुणा व सहानुभूति के भाव की अभिव्यक्ति की जाती है जो समाज में कमज़ोर हैं, शोषित हैं, दुर्बल हैं और कष्ट में भी हैं अर्थात् समाज के एक वर्ग विशेष के प्रति ही करुणा का भाव मानववाद के केन्द्र में निहित रहता है। सम्पूर्ण लोक के कल्याण का भाव इसमें नहीं होता। इसके विपरीत 'मानवतावाद' एक ऐसी अवधारणा है, जो पूरी तरह ग़ैर राजनीतिक और सम्पूर्ण लोक के प्रति करुणा से ओत–प्रोत है। इसका एक मात्र लक्ष्य सम्पूर्ण मानवता के प्रति सहानुभूति और करुणा के भाव को प्रकट करना है। इसमें देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय या वर्ग–विशेष के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह किसी भी तरह के भेदभाव को पूरी तरह से नकारता है और उस हर बुराई और कलुष को धिक्कारता है जिसमें मानवीय गरिमा की क्षति दिखाई देती है। इसलिए यह सदाचरण पर बल देता है, सम्पूर्ण लोक को श्रेष्ठ आचरण के लिए प्रेरित करता है। हिंसा, परपीड़न, मनुष्य में विभेदीकरण के उत्तरदायी धर्म, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग आदि के विरुद्ध तन कर खड़ा होता है।

मानवतावादी चिंतन न तो भारतीय धर्म और दर्शन के लिए नया है और न ही पाश्चात्य धर्म और दर्शन के लिए। वैदिक दर्शन उपनिषदों तक आते–आते मनुष्य मात्र की कल्याण कामना से लबालब हो गया था। ऋग्वेद में सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी माता माना गया है।[1] वैदिक साहित्य में मानवतावादी दृष्टि का नियामक तत्त्व केवल 'सत्य' या 'दृत' है और इसीलिए सत्य को देवता कहा गया है।[2] और असत्य को दुर्गन्धयुक्त माना गया है। मानव की श्रेष्ठता का बखान करते हुए उसे प्रजापति के सबसे निकट घोषित किया गया है।[3] 'ऐतरेय उपनिषद्' पुरुष को बहुत सुन्दर रचना मानता है और यह पुरुष शीर्ष है, सहस्रराज है अर्थात् वह पुरुष हम सब में विद्यमान है।[4] वेद पुरुष को ब्रह्म रूप मानता है और यह घोषित करता है कि सारा विश्व ब्रह्ममय है, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्य उपनिषद्, 3.14.1) महाभारत तक आते–आते धर्म मानवतावादी दिशा में मुड़ जाता है। महाभारत के 'शान्ति पर्व' में कहा गया है कि धर्म के तत्त्व को वास्तव में उसी व्यक्ति ने जाना है, जो सदैव सबका मित्र रहता है, जो सबके हित में मन, कर्म और वचन से लगा रहता है।[5] यह भी कहा गया है कि केवल मनुष्य ही है, जो दूसरे मनुष्य को दास बना कर सुख भोगना चाहता है। पुराणों में भी स्थान–स्थान पर दया, समता, स्नेह व सहृदयता का भाव अभिव्यक्त हुआ है। अवतारवाद के मूल में अन्याय का विरोध और भू–भाग हरण का भाव विद्यमान है। देवताओं और असुरों का संघर्ष भी प्रतीकात्मक रूप में उन बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की घोषणा करता है जो मानव को पीड़ित करती है। महर्षि दधीचि मानवता के प्रति करुणाई के कारण अपने शरीर की सम्पूर्ण अस्थियाँ

* प्रोफ़ेसर (हिन्दी), यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ़ ओपन लर्निंग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

तक दान कर देते हैं। भारतीय धर्म और दर्शन में ऐसे कई संकेत हैं जो अपनी सम्पूर्णता में मानवतावादी हैं।

वेदों, पुराणों में अभिव्यक्त यह मानवतावाद बौद्ध व जैन दर्शन का भी केन्द्रीय बिन्दु बना तथा कालान्तर में मध्ययुगीन संतों की वाणी का अंग बना। मध्ययुग में भक्त कबीर, श्री गुरु नानक देव, संत रविदास, कवि जायसी, कवि सूरदास, कवि तुलसी व कवि रहीम के काव्य में इसे विस्तृत फलक प्राप्त हुआ। पश्चिमी जगत् में मानवतावादी विचारधारा का उदय 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध से माना जाता है। इसका मूल आधार भी विश्व कल्याण की भावना है। विभिन्न विद्वानों ने मानवतावाद को पारिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में –

''समष्टि मानव को सर्वाधिक शोषणों से मुक्त करने की गंभीरतम विचारधारा... सामाजिक मानवता ही उत्तम साधक है। मनुष्य को, व्यक्ति मनुष्य को नहीं, अपितु समष्टि मनुष्य को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक शोषण से मुक्त करना होगा।''[6] डॉ॰ उमेश मिश्र के अनुसार –''मानवता वह धर्म है, जो एक मात्र मनुष्य में रहता है और जिसके विद्यमान रहने से मनुष्य, मनुष्य कहलाता है।''[7] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पुण्य एवं विश्वबंधुत्व पर आश्रित मनुष्यत्व एवं उदार मानव प्रेम की भाव विद्या को मनुष्यत्ववाद की संज्ञा दी है, जो दुर्बलता से सहानुभूति रखे।''[8] डॉ॰ गुलाबराय ने मानवता के दस उपकरणों – सत्य, अहिंसा, दूसरे के दृष्टिकोण को महत्त्व देना, पर स्वाभिमान रखना, शिष्टता, सहिष्णुता, आलोच्यमय दृष्टि, निर्बल पर बल प्रदर्शित न करना, अधिकार भावना का त्याग तथा परगुण ग्राहकता का उल्लेख किया है। मानवतावाद को 'डिक्शनरी ऑफ़ फ़िलासफी' में इस तरह पारिभाषित किया गया है –''मानवतावाद वह दृष्टिकोण है, जिसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा का भाव केन्द्रित है। इसमें समाज सुधार के प्रति गहरी संवेदना, मानवेतर प्राणियों के प्रति कठोरता के निराकरण की चेष्टा तथा उनके परोपकार की भावना निहित होती है।''[9] कान्ट के अनुसार –''ईश्वर या प्रकृति की पूजा के स्थान पर मानवता की पूजा अधिक श्रेष्ठ है।''[10] एच॰ जे॰ मूलर के अनुसार – ''मानवतावाद विचार और प्रकृति के क्षेत्र में मानव के स्थान को सर्वोच्च मानने की भाव–विद्या है।''[11] वास्तव में समस्त मानवतावादी विचारकों ने मानवतावाद के केन्द्र में मानव को रखा है।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल मानवीय सरोकारों से जुड़ा है। तत्कालीन परिस्थितियों के फलस्वरूप भक्ति से प्रेरित कवियों की वाणी में सर्वहित तथा लोकमंगल की कामना व्याप्त है। यह वह समय था, जब देश में नाना प्रकार की भक्ति धाराएँ अस्तित्व में थीं, जिन्होंने विभिन्न साधना पद्धतियों को जन्म दिया। हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, शैव तथा शाक्त सभी धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु तत्पर थे। मुगलों के निरन्तर आक्रमण, अत्याचार तथा अराजकता से त्रस्त तथा हारी हुई मनोवृत्ति वाली भारतीय जनता के लिए धर्म ही मात्र रास्ता था, जिस पर चलकर वे मोक्ष प्राप्ति कर जीवन के एक मात्र लक्ष्य को पाना चाहते थे। ऐसे में सभी धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा अपना–अपना वर्चस्व स्थापित करने की होड़ ने समाज में बाह्यडम्बरों व कर्मकाण्डों को जन्म दिया। धर्म के नाम पर सम्पूर्ण समाज आडम्बरों, कुरीतियों तथा रुढ़ियों की चपेट में आ गया था। अज्ञान व भ्रम में भटका मानव धार्मिक आडम्बरों को ही सतकार्य समझ दिगभ्रमित जीवन के लिए शापित था। विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों के मध्य पारस्परिक भेद बढ़ते जा रहे थे। हिंदू जातियों में भी कालान्तर में कई मतभेद बढ़ते जा रहे थे। जातियों

उपजातियों के बीच बढ़ता भेदभाव इस सीमा तक बढ़ गया था कि कुछ छोटी जातियों का कइयों ने स्पर्श करने से इन्कार कर दिया था। मानव द्वारा मानव के तिरस्कार की अत्यधिक दुखद स्थिति थी। मुसलमानों में भी बहुत–से वर्ग चल पड़े थे, जो परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझते थे।

समाज के हर क्षेत्र में अराजकता का बोलबाला था। आपसी भेदभाव व वैमनस्य के कारण मानवता का निरन्तर ह्रास हो रहा था। न तो इस पर कोई गंभीरता से विचार कर रहा था और न ही किसी में इस समस्या से जूझने का साहस ही था। ऐसी विपरीत सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर गुरु नानक ने अपने काव्य के माध्यम से मानव जाति का उत्थान करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने काव्य को माध्यम बनाकर मानव जीवन के उन सभी पक्षों को छुआ, जो सामाजिक कुरीतियों और आडम्बरों से प्रभावित थे। गुरु नानक का काव्य सच्चे अर्थों में मानव कल्याण की भावना से ओत–प्रोत है। गुरु नानक के काव्य के प्रमुख विषय समाज सुधार के प्रति गहरी संवेदना, परोपकार की भावना, प्रेम, समता, सहानुभूति, सहृदयता, स्वाभिमान की प्रतिष्ठा, त्याग, दया, क्षमाशीलता, दानशीलता, साधु–संगति तथा अहिंसा है। एक मायने में मानवतावाद ही गुरु नानक के काव्य की आधारभूमि है।

मानव जाति के कल्याण के लिए गुरु नानक ने मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया। उन्होंने व्यक्ति, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को मानव जीवन के विकास व समाज कल्याण के लिए अति आवश्यक माना है। समाज के विकास के लिए मूल्यों तथा नैतिक मूल्यों का विकास परमावश्यक है। मूल्य–बोध से संचालित समाज ही आदर्श समाज कहला सकता है। गुरु नानक ने ब्राह्मण–शूद्र तथा हिन्दु–मुस्लिम के बीच ऊँच–नीच व छुआछूत की ऊँची दीवारों को तोड़ डाला तथा मानवतावादी दृष्टि के फलस्वरूप मानव–कल्याण को ही केन्द्रीय विषय बनाया। उन्होंने मनुष्य को सत्य, सदाचार, अहिंसा व प्रेम का पाठ पढ़ा कर लोगों में सौहार्द की भावना फैलाई। कर्म का महत्त्व समझाते हुए लोगों को कर्म करने का संदेश दिया। समाज को सुधारने के उनके समस्त प्रयास, उनके मूल्यबोध व मानवतावादी दृष्टि के परिणाम हैं।

मध्यकालीन समाज में अनेक धर्मों एवं सम्प्रदायों का बोलबाला था। विदेशी शासकों ने इस्लाम की संकीर्ण धार्मिकता व सामूहिक साम्प्रदायिकता के माध्यम से भारतीय समाज में स्थापित धार्मिक मूल्यों को ध्वस्त कर दिया था। धर्म के नाम पर अवतारवाद, कर्मकाण्ड व आडम्बरों के पाश में जकड़े मानव को संत कवियों ने मुक्ति दिला समाजिक उन्नयन का बीड़ा उठाया ताकि मानवता का उत्थान हो सके। कबीर ने

दशरथ सुत तिंहु लोक बखाना।
राय नाम का मर्म है आना।

कहकर अवतारवाद का खण्डन करते हुए राम नाम के वास्तविक मर्म को रेखांकित किया, तो गुरुनानक ने रामावतार के संबंध में प्रतिष्ठित लोकमान्यताओं को अस्वीकार करते हुए परमात्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया क्योंकि राम भी भाग्यरेखा नहीं मिटा सके।

मन महिं झूरे, रामचंद्र सीता लछमनु जोग।
हणवंत नू अराधिया, आइआ करि संजोगु।
भूला देतु न समझई, तिनि प्रभु करि काम।

नानक बेपरवाह सो किरतु न मिटई राम।।

गुरुनानक ने बहुदेववाद का खण्डन करते हुए ईश्वर के निर्गुण व निराकार स्वरूप का समर्थन करते हुए ईश्वर की एकछत्र सत्ता का संदेश दिया। उन्होंने माना कि ईश्वर एक है–

साहिब मेरा एकु है अवरु नहीं आई।

एक अन्य स्थान पर गुरु नानक अपनी इस बात पर बल देते हए कहते हैं–

साहिब मेरा एको हैं, एको है, एको है भाई।

आडम्बरों एवं बाह्यचारों का प्रबल खण्डन करते हुए गुरु नानक ने समाज में हर स्तर पर व्याप्त पाखण्ड का प्रबल स्वर में विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि बाहरी वेशभूषा व छाया तिलक–भस्म लगाने वाले लोग अहम्, क्रोध, अनैतिकता एवं माया के मद से लिप्त है ऐसे लोग ईश्वर से सच्चे स्वरूप को नहीं जानते। अंतः पूर्णतः पाखण्डी है। फलस्वरूप उन्हें कभी ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरुनानक के शब्दों में –

पाखंडि भगति न होवई
परब्रह्म न पाइआ जाई।

संत कवि तत्कालीन समाज में व्याप्त समाज धार्मिक आडम्बरों व कर्मकाण्डों से मानव को मुक्त करना चाहते थे। कबीर ने हिंदू मुसलमान दोनों को धर्म के नाम पर पथभ्रष्ट होने के कारण खूब फटकारा एवं व्यंग्यात्मक एवं प्रहारात्मक स्वर में दोनों धर्मों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया। कबीर ने एक ओर हिंदुओं के छापा तिलक लगाने की निंदा की तो, मुसलमानों के रोजा रखने पर विरोध किया क्योंकि उनकी दृष्टि में झूठे आडम्बरों व कर्मकाण्डों के माध्यम से ईश्वरीय सत्ता से एकाकार होना असंभव है।

गुरु नानक देव ने भी हिंदू व मुसलमान दोनों के कर्म–काण्डों, बाह्यडम्बरों एवं मिथ्याचारों का कड़ा विरोध किया है। वे दोनों धर्मों में फैले पाखण्डों की आलोचना कर मानव जाति को ईश्वर के सच्चे एवं निराकार स्वरूप से अवगत करवाने के लिए प्रतिबद्ध थे। वे जानते थे कि ऊपर से आडम्बर करने वाले हिंदू व मुसलमान वास्तव में धर्म से विमुख हैं। गुरुनानक ने समाज कल्याण व मानव जाति का उत्थान करने के लिए बेबाक एवं निडर होकर पाखंडी हिंदू व मुस्लिम दोनों का विरोध किया–

माणस खाणे करहिं निवाज। छुरि बगाइन तिन गलि ताग।

गुरु नानक ने योगियों एवं धर्म के ठेकेदारों को उचित मार्ग दिखाते हुए उन्हें तन की बजाय माथे पर टीका, गले में माला धारण करने की बजाय आत्मशुचिता के बल पर संतोष धारण करने की सीख दी। नानक के अनुसार प्रतीति की मुक्ति का डंडा ही साधक का असली सम्बल है–

मुद्रा संतोषु सरभु पत झोली,
धिमान की करहि विभूति।।
खिंथा कालु कुवारी काइआ,
जुमति डंडा परतीति।।

गुरु नानक ने धर्म निर्वाह के लिए दो महत्त्वपूर्ण अंगों को स्वीकार किया– निर्भयता और सचियारता। उन्होंने 'सचियार' की वह अवधारणा लोक को दी, जो समस्त मानव जाति के लिए हितकर थी। उनकी चिंता थी कि मनुष्य सत्य परायण कैसे बने तथा

असत्य के विकार को कैसे त्यागे क्योंकि असत्य के विकार में डूबकर ही मनुष्य लोभी, पापी, अपराधी एवं हिंसक बनता है। सचियारता को पूर्णतया अपनाए बिना न तो व्यक्ति निर्भय हो सकता है और न ही ईश्वर से उसका साक्षात्कार हो सकता है। सत्यपरायण मनुष्य की राह सरल एवं दुविधा रहित होती है। यह मनुष्य को सच्ची आस्था की राह की ओर प्रेरित करती है और इसी से मानव ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के भाव से नतमस्तक होता है। उसकी करनी को सहज स्वीकार कर शांति एवं संतोष का अनुभव करता है।

सोचे सोचि न होबई जे सोची लखवार।
चुपै चुपि न होबई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होईए इक न चलै नालि।
किव सचिआरा होईए किब कूड़े तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। 1 ।।

तत्कालीन समाज में फैली जातीय भेदभाव की भावना से समाज को मुक्त करना भी संत कवियों ने परमावश्यक समझा। जातिगत द्वेष के कारण मनुष्यों के बीच बढ़ती खाई समाज की एकता एवं आपसी सद्भावना के लिए निरंतर चुनौती बनती जा रही थी। कबीर ने जाति–पाति के महत्त्व को अस्वीकारते हुए ईश्वरीय भक्ति को ही सर्वोत्तम महत्त्व दिया। कबीर ने, 'जाति–पाति पूछै नहिं कोई, हरि का भजै सो हरि का होई' कहकर प्रभु भक्ति को श्रेष्ठता का प्रतीक माना, तो गुरु नानक देव ने कबीर से आगे बढ़कर जाति के तमाम बन्धनों को अस्वीकार करते हुए समस्त सृष्टि के मनुष्यों को एक ही जाति 'मानव जाति' के सूत्र में बांध कर समाज को एक दृष्टि, एक नई चेतना से अनुप्राणित किया। यह सर्वविदित है कि जन्म से जातीय भेद रखने वाला मरदाना गुरु नानक देव का आजीवन प्रिय मित्र रहा। उनकी यह मित्रता स्वयं उनकी ऊंची सोच का प्रमाण है। नानक के शब्दों में–

जाणहु जोति न पूछहु जाति अगै जाति नहे।।

गुरु नानक द्वारा बिना किसी के जातिगत, अन्यान्य जातियों एवं वर्गों के संत एवं कवियों शेख फरीद, कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सधना इत्यादि की वाणियों में व्याप्त मानव कल्याण की भावना का समर्थन करते हुए आजीवन जन–जन तक मानवता का संदेश पहुंचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने जाति को महत्त्व न देकर मनुष्य के कर्म से उसके महत्त्व को स्वीकारा।

सो ब्राह्मणु जो ब्रहमु बीचारै।
आधि तरै सगलैं कुल तारै।।

गुरु नानक का मानना था कि व्यक्ति का महत्व जाति से न होकर कर्म से होता है।

तत्कालीन समाज आर्थिक विषमताओं से जूझ रहा था। फलस्वरूप समाज में समता का स्थान नगण्य था। सभी संत कवि कर्म को महत्त्व देते हुए ईश्वरीय भक्ति को जीवनाधार मानने के साथ जीवकोपार्जन के लिए कर्म करते रहे। कबीर कपड़ा बुनते थे, नामदेव कपड़ा सिलने का काम करते थे। रैदास जूतियां गांठते थे। इसी प्रकार गुरु नानक भी मोदीखाने में तोलने का काम करते थे। संत कवियों ने गृहस्थ होने के कारण पारिवारिक उत्तरदायित्वों से कभी मुंह नहीं मोड़ा। वे सच्चाई व ईमानदारी के पथ पर

चलते हुए आजीवन सच्ची निष्ठा से जीवकोपार्जन करने के साथ समाज को मानवता एवं ईश्वरीय भक्ति का संदेश देते रहे। गुरुनानक ने अर्थ को कभी महत्त्व न दिया न कभी किसी धनी व्यक्ति को सामने झुके और न ही अपने नैतिक, धार्मिक मूल्यों के लिए अर्थ का त्याग करने से झिझके। गुरुनानक के संबंध में सच्चे सौदे की कहानी सर्वविदित है। पिता द्वारा दिए पैसों से व्यापार करने घर से निकले गुरु नानक ने सारा धन गरीबों, ज़रूरतमंदों एवं साधु–संतो में बांट दिया और खाली हाथ घर लौट आए। पिता द्वारा पूछने पर गुरु नानक ने अपने किए को 'सच्चे सौदे की संज्ञा दी और यह प्रमाणित कर दिया कि अर्थ की सत्ता मानवता की सेवा से बड़ी नहीं है। गुरु नानक के अनुसार व्यक्ति कितना भी धन कमा ले, कितना भी बचाकर, जोड़कर रख ले, अंत में कुछ काम नहीं आता क्योंकि जीवन में सबसे अमूल्य वस्तु तो ईश्वर की भक्ति एवं उसकी कृपा ही है।

बणजु करहू बणजारिहो बखरु लेहु समालि।।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निवहै नालि।।
अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि।।
भाई रे रामु कहहु चितु लाइ।।
हरिजसु बखरु लै चलहु सहु देखे पतीआई।। रहाउ।।

गुरुनानक मानते हैं कि सांसारिक ऐश्वर्य एवं भोग–विलास की वस्तुओं का मोह निरर्थक है। कोई कितना भी धन अर्जित कर ले, कितने भी सांसारिक सुख साधन जुटा ले, सब नश्वर है। क्योंकि सांसारिक मोह एवं सुख साधना की लालसा एवं भोग से परम ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। वास्तविक सुख एवं परम उपलब्धि तो ईश्वर से एकाकार होने में है। ईश्वर भक्ति ही जीवन की सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठ उपलब्धि है। नानक के शब्दों में सच्चा मेल तो ईश्वर से ही होता है।

हम घरि साजन आए।
साचै मेलि मिलाए।।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ।।
साई वस्तु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ।।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए।।
पंच सबद धुनि अनहद बाजै हम घरि साजन आए।।

गुरुनानक देव में सांसारिक सुख–भोग के प्रति गहरी अनासक्ति थी और यही अनासक्ति ही उनकी निर्भयता का आधार बनी। भारतीय समाज में मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचारों से दलित भारतवासियों के प्रति गुरुनानक का सरोकार उनकी अपने समाज की त्रस्त निर्दोष जनता के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति को रेखांकित करता है। गुरुनानक मध्यकाल के वे पहले कवि हैं जिन्हें आक्रमणकारी बाबर की हिंसा व अराजकता भी भयभीत न कर सकी थी। उन्होंने अभय मुद्रा में बाबर की बर्बरता को ललकारते हुए कहा है–

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइआ।।
एती मार पई करलाणे तै की दरदु न आइआ।।
करता तूं सभना का सोई।।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।।(आसा रागु)

राजसत्ता के विरुद्ध गुरुनानक की यह ललकार अध्यात्म से उपजी निर्भयता की भारतीय पहचान बनी थी। यह भोग के ख़िलाफ़ योग का तेवर था। डॉ. धर्मपाल मैनी के अनुसार, ''गुरुनानक की अन्य महत्वपूर्ण देन है–समाज में गृहस्थ जीवन का सम्मान्य स्थान एवं नारी का महत्त्व। सिद्धों, नाथों एवं योगियों की गुह्य तांत्रिक साधनाओं के कारण समाज में जो विकार उत्पन्न हुए थे, उनके कारण नारी अपना महत्त्व खो चुकी थी। नारी को वासना पूर्ति का साधन मात्र समझने वाले विदेशी आक्रमणकारियों को भी संतों और गुरु नानक ने सतर्क किया था। गुरु नानक ने स्वाभाविक गृहस्थ–जीवन व्यतीत करके समाज में नारी के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है।''[12]

'जिन सिर सोहन परीआ मांगी पाइ संधूर।
से सिर काती मुनीअहिं गल विचि आवै धूड़।
महला अंदर होदीआ हुण बहणु न मिले हदूर।

नारी के महत्त्व एवं महिमा का स्वीकार करते हुए गुरुनानक उसके प्रति पाई जाने वाली कटुता एवं तिरष्कार की घोर निंदा करते हैं और उसे समाज में उचित स्थान दिलाने का स्पष्ट शब्दों में समर्थन करते हैं–

भंडि जमीअै, भंडि निमीअे भण्ड मंगण वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।
भंड मुआ भंड भालीअे भंड होवे बंधान।
सो किउ मन्दा आखीअहि जिन जंमै राजान।

अन्य संत कवियों की तरह गुरुनानक ने भी गुरु की महिमा को स्वीकारा है। गुरु नानक की दृष्टि में धार्मिक साधना में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने अपनी वाणी में कई बार गुरु की महिमा का बखान करते हुए उसके प्रति पूर्ण आस्था एवं समर्पण की भावना को अभिव्यक्त किया है। गुरु नानक के शब्दों में–

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ।
एहु जीउ बहुते जनम भरंमिया ता सतिगुरि सबदु सुणाइया।।
सतिगुरु जेवडु दाता को नहीं सभि सुणिअहु लोक सवाइया।
सतिगुरु मिलिऐ सचु पाइया जिन्हीं विचहु आप गवाइया।।
जिनि सथा सचु बुझाइया।

गुरुनानक देव ने कर्म मार्ग, योग मार्ग, भक्ति मार्ग तथा ज्ञान मार्ग सभी में गुरु का महत्त्व स्वीकार किया है। उन्होंने ईश्वर एवं गुरु में अभिन्नता दिखाई है। गुरु नानक ने यह भी स्वीकार किया है कि गुरु की प्राप्ति तभी संभव है, जब मनुष्य रत्ती भर भी अहंकार के वश में न हो। वे अहंकार को एक प्रकार का रोग मानते हैं।

नानक हउमै रोग बुरे।
रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका।।
हउ विचि आइया हउ विचि मइआ।
हउयै करि करि जंत उपाइया।।

अहम् का त्याग ही मनुष्य को पूर्णतया ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से प्रेरित करता है। जिससे मनुष्य में सद्गुणों का निरंतर विकास होता है। गुरु नानक देव का परम उद्देश्य मानवता का उद्धार एवं उन्नयन करना था। मानवता को बंधनों में जकड़ने वाले पांचों बंधनों अज्ञान, राग, द्वेष, अस्मिता तथा 'भय का उच्छेद करने के लिए उन्होंने

अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया। अपनी वाणी से विश्व बंधुत्व का प्रचार व प्रसार करने के लिए उन्होंने भारत तथा अनेक देशों की लम्बी यात्राएं कीं तथा दुखी एवं शोषित जन के प्रति असीम प्रेम एवं सहानुभूति प्रदर्शित की। गुरुनानक एक दृढ़ संकल्पी एवं कर्मठ व्यक्ति थे, जिन्होंने लोगों को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर ऊंचा उठाने का महान कार्य किया। गुरुनानक का काव्य सच्चे अर्थों में मानव कल्याण की भावना से ओत–प्रोत है। सच्चे अर्थों में मानवतावाद ही गुरुनानक के काव्य की आधारभूमि है।

संदर्भ

1. ''माता पृथिवी नहीपम्'', 'ऋग्वेद', 1.164.33
2. 'सत्यमेव देवा' – 'शतपथ ब्रह्मणम्', 1.1.14
3. 'पुरुषों वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्' – 2.2.11
4. 'पुरुषों वाव सृकृतम' 'एतरेय उपनिषद्', 2.3
5. 'वेद व्यास, महाभारत, शांतिपर्व, 26.1.9
6. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास', पृ. 35
7. डॉ. उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन' पृ. 183
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 23
9. डॉ. राजेश कुमार, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य में मानवतावाद, पृ. 23
10. वही, पृ. 375
11. वही, पृ. 276
12. डॉ. धर्मपाल मैनी, मध्ययुगीन निर्गुण चेतना पृ. 112

साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सद्भाव के अग्रदूत : श्री गुरु नानक देव जी

प्रो॰ अशोक कुमार*

भारतीय इतिहास में जो स्वतंत्रता–संघर्ष, कर्तव्य–भाव, समानता–बंधुत्व मध्यकाल में देखने को मिलती है वह उसे बाद के समय में एक प्रेरणा के रूप में लिया जाता रहा। यह काल इसलिए भी प्रेरणा का माध्यम बना क्योंकि यह काल संतों और गुरूओं का रहा जिनके लिए शिक्षा और संस्कार पहली आवश्यकता थी। गुरु नानक देव, कबीरदास, तुलसीदास जैसे संतों और भक्तों के सान्निध्य में रहते हुए इस युग ने अपना गौरवपूर्ण इतिहास रचा जिसके माध्यम से आज भी हम समृद्ध है और अनवरत हो रहे हैं। समाज किस तरह का हो, किस तरह की व्यवस्था हो हमारी, परिवार क्या होते है और उनके दायित्व क्या हाते है इन सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर गंभीर विमर्श, जिनसे मनुष्यता का निर्माण होता है, हम मध्यकालीन संतों एवं गुरुओं के माध्यम से प्राप्त करते हैं।

गुरु नानक देव ऐसे ही संत थे जिनका प्रादुर्भाव हमें सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न बनाने के लिए हुआ था। गुरु घर के वेदव्यास भाई गुरदास जी ने गुरु जी के आगमन संबंधी उद्देश्य को इस प्रकार बताया :

''कलिजुग बाबे तारिआ सतिनामु पढ़ि मंत्र सुणाइआ।
कलि तारणि गुरु नानक आइआ।।''[1]

कलियुग के घोर समय में जब चारों ओर अज्ञानता व भेद–भाव का अंधकार छाया हुआ था। सामाजिक अवस्था दीन हीन थी, ऐसे घोर अंधकारमय युग में जन–जन का कल्याण करने हेतु गुरु नानक का जगत् में आगमन हुआ। गुरु जी को यह मालूम था कि समाज कल्याण व सुधार तभी संभव है जब हम सामाजिकता के भाव को आत्मसात करेंगे। सामाजिकता का भाव व्यक्ति तब आत्मसात करता है जब अपने परिवेश में रहने वाले सभी जातियों और सम्प्रदायों को एक दृष्टि से देखता है और सभी को महत्व देता है। गुरु जी ने समाज में जाति भेद मिटाने के लिए नीचो के साथ रहने की बात की उनके अनुसार परमात्मा उनमें निवास करता व अपनी कृपा करता है उनके अनुसार समाज जिन्हें नीच समझकर तिरस्कार करता है।

''नीचा अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।
नानकु तिन कै संगि साथ
वडिया सिऊ किआ रीस
जिथै नीच समालोअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।''[2]

इसकी मिसाल गुरु जी ने खुद भाई मरदाना जो कि बहुत नीच जाति के थे अपना साथी बनाकर पेश की। उन्होंने करतारपुर की धरती पर लंगर प्रथा शुरू कर सबको एक जगह एक पंगत में बैठकर खाना खाने से ऊँच–नीच के भेद को खत्म किया।

* हिंदी–विभाग, पंजाब–विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

गुरु नानक देव जी अपने संपूर्ण जीवन में यह बराबर कोशिश करते हैं कि हम सांप्रदायिक सद्भाव को बनाए रखने का प्रयास करें। हिन्दू–मुस्लिम के बीच किस प्रकार का भेदभाव न करें। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वेई नदी में गुरु जी के अलोप होने और प्रकट होकर सबको एक ही उपदेश देने 'न को हिन्दू', न को मुसलमान' है। काजियों पंडितों द्वारा पूछने पर बताना कि इसका अर्थ है हम सब भाई–भाई है और एक पिता की संतान है न कोई बड़ा है न कोई छोटा। सभी बराबर हैं यथा :

''एकु पिता एकसु के हम बारिक।''

उनके अनुसार लोगों को जातियों में न बाँटे सभी वर्ण और वर्ग को समान अधिकार प्राप्त हों। कोई इसलिए न बड़ा हो कि वह सवर्ण है और न ही तो कोई इसलिए छोटा हो कि वह शूद्र है।

गुरु नानक युग व इससे पहले भी औरत की दयनीय दशा उसकी गिरी हुई सामाजिक स्थिति किसी से छिपी हुई नहीं है। इसका ग्वाह इतिहास है। आरंभ से पुरुष प्रधान समाज में नारी की दुर्दशा ही हुई। नानक से पहले हुए संतों, पैगंबरों ने भी नारी जाति के प्रति हो रही हिंसा के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाई। गुरु नानक ही वो पहले शख्स थे जिन्होंने समाज में नारी को पुरुष के बराबर दर्जा देने के लिए आवाज़ उठाई। आज जब समाज नारी–पुरुष की बराबरी को प्रवान करने लगा है तो कहीं न कहीं इस नये विचार के मूल में हमें गुरु नानक के उच्चारण किये महावाक्य दिखाई देते हैं :

''सो क्यूँ मंदा आखिऔ, जितु जंमै राजान।''[3]

गुरु नानक की सबसे बड़ी देन यह रही कि उन्होंने अपने समय की संपूर्ण मानवता को नवीनता से जोड़ा और प्राचीन भ्रमों, रूढ़ियों और जड़ परंपराओं को तोड़कर उन्नति और समृद्धि के मार्ग पर चलने का अवसर उपलब्ध कराया। गुरु नानक ने मानव मात्र को केवल मध्यकालीन अंधेरे में से ही नहीं निकाला बल्कि उसे आधुनिक समय के दरवाजे पर लाकर खड़ा किया। उनकी सोच सर्वकल्याणकारी थी। उनकी वाणी सर्वसांझी थी और इसी सब द्वारा आप जी ने मानवता को ऊँचे उठने का राह दिखाया। उन्होंने 'सरबत दा भला' की अरदास केवल एक जाति और धर्म के लिए नहीं बल्कि पूरे विश्व के कल्याण हेतु की।

गुरु जी ने अपनी वाणी द्वारा भाईचारे, राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया। उनका फलसफा उनका मार्ग प्रत्येक देश और सम्प्रदाय के लिए है। जो सत्य मार्ग का पथिक शांति व मानवीय एकता का चाहवान हो। गुरु जी का केवल अपने देश या धर्म के साथ ही प्यार नहीं था बल्कि उन्होंने तो पूरी सृष्टि के कल्याण हेतु परमात्मा के आगे विनती की।

'' जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।''[4]

आज जब हम नानक की शिक्षाओं को पढ़ते हैं तो स्वयं को आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण महसूस करते हैं। क्योंकि गुरु जी अपने युग के सबसे बड़े सामाजिक कार्यकर्त्ता, अर्थव्यवस्था के ज्ञाता, राजनीतिज्ञ व धार्मिक नेता थे। मध्यकालीन युग में वे पहले ऐसे युग पुरुष थे जिनका नजरिया पूर्णतः वैज्ञानिक था। आधुनिक शोधों से जो कुछ वैज्ञानिक जान पाए वहीं कुछ आज से 500 वर्ष पूर्व गुरु नानक जी ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बता दिया था। जिसका वर्णन उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से किया है :

''धरति होर परै होर होर।''[5]

''पाताला पाताल लख आगासा आगास।''[6]

इस दृष्टि से नये युग की देन गुरु नानक की सोच है। गुरु नानक ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार हिंदू–मुसलमान सबको रद्द करके सबको एक जाति, धर्म, एक पिता के बच्चे मानकर किया। गुरु जी ने एकेश्वरवाद का उपदेश देकर समूह मानव जाति को एक धागे में पिरो दिया। सबसे बड़ी बात गुरु जी ने यह की है कि हज़ारो वर्षों पुरानी चली आ रही वर्ण व्यवस्था को उन्होंने आदि से नकार दिया। मानव एकता का संदेश दिया। इसका प्रमाण यह कि जब उनसे मुसलमानों ने पूछा कि हिन्दू बड़े हैं कि मुसलमान? आप जी ने उनको यही उत्तर दिया कि बड़ा वही है जिसके कर्म अच्छे हों।

''पुछनि फोलि किताब नो हिंदू वड्डा कि मुसलमानोई।
बाबा आखे हाजीआं सुभि अमला बाझहु दोनो रोई।
हिंदू मुसलमान दुइ दरगह अंदरि लहनि न ढोई।''[7]

गुरु साहिब का सिद्धान्त भारत की ओर अंतिम रूप में सूर्पण मानवता की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रांति का आधार बन गया।

गुरु नानक का जगत में आगमन बुराइयों, पाप के गहन अंधकार को नष्ट करने में कारगार साबित हुआ। समाज की अधोगति की हालत से जनमानस को छुटकारा दिलाने के लिए नानक के रूप में परमेश्वर ने आप अवतार धारण किया। सवैये महले तीजे के में दर्ज है कि :

''आपि नराइणु कला धारि जगि महि परवरियउ।''[8]

गुरु नानक फलसफे में परमात्मा के हुक्म और कृपा की सार्थकता के मूल को जानना मानव कल्याण का अहम् हिस्सा बना।

''हुकमे अंदरि सभ को, बाहरि हुक्म न कोय।''[9]

विश्वास, दृढ़ता और निर्भयता गुरु जी के मुख्य असूल (सिद्धान्त) थे। उन्होंने बाबर वाणी में अपने देश के महान् बादशाह को बिना भयभीत हुए उसके मुँह पर बाबर की जगह जाबर तक कह डाला। समय के अहलकारों को खरी–खरी सुनाई। तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था का आप ने खुल कर विरोध किया। हिन्दूस्तान पर राज करते लोधी सुल्तानों को भी आपने

''राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन्हि बैठे सुते।
चाकर नहदा पाइन्हि धाइ। रतु पिंतु कुति हो चटि जाहु।''[10]

कहने से संकोच नहीं किया।

गुरु नानक साहिब के जीवन का प्रमुख उद्देश्य था

''सचु सुणाइसी सच की बेला'[11]

आप जी ने इसी की नींव डाली। चाहे कुछ भी हो लेकिन सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। पाखण्डों, वहमो, भ्रमों व कुरीतियों से लोगों को मुक्ति दिलाई। सत्य के प्रचार हेतु बाबा नानक ने सारे भारत व देशों विदेशों की 24वर्ष पैदल यात्रा की जिन्हें चार उदासियों के नाम से जाना जाता है। इस दौरान आप जी ने सभी धर्मों, तीर्थों, योगियों और पीरों से ज्ञान की चर्चा की। अपनी जिम्मेदारियों का त्याग करके गृहस्थी छोड़ तन पर भस्म लगा कर समाधिया लगाने वाले सिद्धो–नाथो को ज्ञान करा कर जिम्मेदारियाँ निभाते प्रभु प्राप्ति के मार्ग से अवगत करवाया।

''विचे ग्रिह सदा रहै उदासी जिउ कमलु रहै विचि पाणी हे।''[12]

का आदेश देते हुए स्वयं भी गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों का पालन किया।

गुरु जी अपने विचारों के द्वारा समाज में क्रांति लेकर आए। आत्मिक और सदाचारक क्षेत्र में, उन्होंने लाखों लोगों के जीवन, उनकी सोच और उनके आचरण को प्रभावित किया है। भारत खास तौर पर पंजाब जो इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि इस परम पुरुख ने इस धरती पर जन्म लिया था। पर उस महान हस्ती ने अपने आदर्शों को इस देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने तो देश–प्रदेश, समूची मानवता को जगाने के लिए और उसे प्रेम, शांति, प्रेमा भक्ति, सामाजिक न्याय, विनम्रता और सर्व व्यापक बन्धुत्व का संदेश दिया। गुरु नानक देव जी के लिए न कोई देश–विदेश था और न ही कोई मनुष्य बेगाना। समाज की प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध खड़ा होकर उसमें परिवर्तन लाने वाला कोई मसीहा सदियों में एक बार आता है। जो संतुलित जीवन जीने का ढंग सिखाता है, गुरु नानक ऐसे ही मसीहा थे। उनकी सोच थी कि समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी काम करे और बाँट कर उसे खाये ताकि समाज में फैली हुई दरिद्रता दूर हो जाए, आर्थिक असमानता खत्म हो जाए। वे अपने समय और समाज से प्रभावित होकर सामाजिक कीमतों से टकराए। उन्होंने राजा और प्रजा के संबंधों को समझा, धर्म और पाखंड में बँटवारा किया, ब्राह्मण और शूद्र की संस्था को देखा, पुरुष और स्त्री के रिश्तों का अहसास किया। स्वयं क्षत्रिय हो शूद्र लालों के घर जा रोटी खाकर जाति–पाति के पाखंड को तोड़ा, औरत के सम्मान की रचना की, हिंदू मुस्लिम एकता का संदेश दिया, लंगर प्रथा चलायी, खुद परिश्रम कर दूसरों के लिए प्रेरणास्त्रोत बने, मानवतावाद का नारा लगाया। लोक बोली में रचना कर लोगों को लोक बोलों से प्रेम करने की परंपरा चलाई।

गुरु जी के जीवन और उनकी रचनाओं को ध्यान से पढने पर पता चलता है कि समाज में वे अपने चौगिरदे से असंतुष्ट थे और परिवर्तन के इच्छुक थे। वे कर्मयोगी थे, ज्ञानयोगी, शायर, पैगंबर और इससे भी बहुत कुछ ज्यादा। उनका एक ही विचार था कि व्यक्ति स्वयं का सुधार कर ले पूरा समाज अपने आप ही सुधर जाएगा। उनका आदर्श था :

'मानव की जात सबै एक ही पहिचानवो'[13]

इस प्रकार मध्यकालीन सोच और करनी कथनी में गुरु नानक देव जी महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आये।

तत्कालीन समाज में हो रहे गरीब, मासूम वर्ग के शोषण के विरुद्ध सबसे पहले गुरु नानक देव जी ने अपनी आवाज़ बुलंद की। अमीर लोग राजाओं और वज़ीरों की तरह ही लोगों का खून चूसते थे, उनकी मेहनत का श्रमफल उन्हें नहीं देते थे। जिस कारण गरीब दिन प्रति दिन गरीब होता जा रहा था। आप जी ने इसका विरोध ज़ोरदार शब्दों में किया। मलिक भागों का निमंत्रण न मानना, उसके बुलाने पर न जाना, मजबूर करने पर जाना पर जाकर उसकी रोटी से खून निकालकर दिखाना यह बात स्पष्ट करती है कि वे अपने समय के आर्थिक ढाँचे से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने बड़े कठोर शब्दों में कहा है कि :

''हकु पराइआ नानका उस सूअर उस गाइ।''[14]

उनका पूरा जीवन और रचनाएँ हर प्रकार के शोषण के खिलाफ थे। जाति–पाति को समाज में से पूरी तरह खत्म करने के लिए ही उन्होंने लंगर प्रथा शुरू की। लंगर के साथ–साथ पंगत की शुरूआत की ताकि सबके मन से ये भेदभाव मिट जाए। उन्होंने इन्सान द्वारा इन्सान के लिए किए जा रहे बँटवारे को नाज़ायज़ ठहराया। कुछ लोगों के कहने पर कुछ लोगों को उनके अधिकारों से वंचित कर देने की निखेधी भी की।

''सभ महि जोति जोति है सोई।
तिसकै चानणि सभि महि चानणु होइ।''[15]

का संदेश सुनाकर उन्होंने मानववाद की संकल्पना की। वे मानवतावादी लहर से जुड़े हुए महान नेता थे।

''फकडु जाती फकडु नाउ।
सभना जीआ इका छाउ।''[16]

गुरु जी ने केवल ऊँच–नीच की, बल्कि हर प्रकार के भेद, निंदा, छल–कपट को नंगा किया।

गुरु जी ने एक अच्छे समाज के निर्माण हेतु दुनिया के सामने तीन सिद्धान्त रखे। किरत करो, नाम जपो, वंड छको।

किरत करने का सिद्धान्त शारीरिक स्वास्थ्य व परिश्रम से जुड़ा है। अपने हाथों मेहनत कर अपनी शुद्ध कमाई की रोटी खाना और अपने परिवार का भी भरण पोषण करना। इसको आपने खुद भी कमाया अपने जीवन के अंतिम 15 वर्ष करतारपुर की धरती पर रहकर स्वयं खेती की अपना और परिवार के साथ–साथ वहाँ लंगर प्रथा चला मिल बाँट कर खाने अर्थात् वंड छको के सिद्धान्त को भी खुद कमा कर दिखाया।

''घालि खाइ किछु हथहु देइ।
नानक राहु पछाणहि सेइ।''[17]

हम कह सकते हैं कि आज के समय में चल रही एन.एस.एस. पर आप जी के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

नाम जपो सिद्धान्त द्वारा आप जी ने मानवता को अपने मन से जुड़ने उसको खोजने पहचानने अर्थात बाहरी कर्मकाण्ड छोड़ केवल अपने आप से जुड़ने की बात कहीं

''मनु मंदर तनु वेसु कलंदरू।
घट ही तीरिथ नावां।
एक शब्द मेरे प्राण बसत है,
बहुडि जनम न आवां।''[18]

गुरु जी को अपने आप पर पूर्ण भरोसा था। उन्होंने सज्जन ठग, मलिक भागो, कोडे जैसे राक्षस को सुधारा। उन्हें विश्वास था कि यदि सज्जन ठग सुधर गया तो उसकी मिसाल से पता नहीं कितने ओर ठग सुधर जाएंगे।

गुरु जी समाज में एक नयी क्रांति लेकर आए वास्तव में वे युग पुरुष थे।[19] ''डॉ. मुहम्मद इकबाल ने गुरु साहिब को 'मर्द–ऐ–कामिल' इसलिए कहा क्योंकि गुरु नानक जी ने सदियों से गुलामी की नींद में सोए पड़े हिन्दुस्तान को ऐकश्वरवाद का सुनेहा देकर जगाया।

''फिर उठी आख़र सदाअ तौहीद की पंजाब से।
हिंद को इक मरद–ऐ–कामल ने जगाइआ ख़ाअब से।''[19]

गुरु नानक मार्ग का प्रत्येक राही उस कमल पुष्प की तरह है जो कीचड़ में रहने के बावजूद भी उससे निर्लेप रहता है बिलकुल उसी तरह जैसे पानी पर तैरने वाले पक्षी उसमें डूबने के बावजूद भी अपने पंखों को पानी से भीगने नहीं देते।

''जैसे जल महि कमलु निरालमु, मुरगाई नै साणे।''[20]

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. वारां भाई गुरदास सटीक, भाई वीर सिंह साहित साहिब सदन, वार १ पउड़ी 23, पृष्ठ
2. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 15
3. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 473
4. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 083, बिलावलु महला 3
5. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, जपुजी साहिब, पृ. सं. 03
6. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, जपुजी साहिब, पृ. सं. 5
7. वारां भाई गुरदास, वार १ पउड़ी 33
8. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 1395
9. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, जपुजी साहिब, पृ. सं.1
10. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 1288, महला २
11. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग महला १, पृ. सं. 722–23
12.
13. अकाल उसतति पातशाही 10
14. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला, पृ. सं. 141
15. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. सं. 663
16. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला १, पृ. सं. 83
17. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला १, पृ. सं. 1245
18. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, बिलावलु महला १, पृ. 795
19. अजीत, धर्म ते विरसा, 27 अगस्त 2019, सिक्ख इन्कलाब, निरंजन सिंह साथी, पृ. सं. 11
20. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, महला १, पृ. 938

श्री गुरु नानक के संदेश और वाणी का भाषाई विश्लेषण

डॉ. गुरमीत सिंह*

श्री गुरु नानक के जीवन और संदेश ने समाज में एक बहुआयामी योगदान दिया है। सामाजिक सुधारों, साहित्यिक योगदान और आध्यात्मिक जागृति के संदर्भ में उनका योगदान अद्वितीय है। उनके जीवन और शिक्षाओं का न केवल सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव पड़ा, उनकी रचनाएँ भक्ति साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गईं। जब हम साहित्य में उनके योगदान को करीब से देखते हैं तोयह स्पष्ट हो जाता है कि उनके संदेश रचना के तरीके में एक अद्वितीय विशिष्टता थी। उनके संदेश को विशिष्ट बनाने वाले कारक उनकी भाषा, अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिएराग और संगीत का प्रयोगऔर साहित्यिक उपकरणों का प्रभावी उपयोग था।श्री गुरु नानक ने उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था और राजनीतिक परिदृश्यों के अलावा रोजमर्रा की सामान्य वस्तुओं से उपमाओं और रूपकों का उपयोग किया, ताकि उनके संदेश के अर्थ प्रभावी ढंग से लोगों तक पहुंच सके। राग के उपयोग ने उनके संदेश और प्रभावी बनाया । इस प्रकार, श्री गुरु नानक द्वारा प्रयुक्त भाषा और साहित्यिक उपकरणों के प्रयोग को समझना उनके संदेश और शिक्षाओं को समझने और उनका विश्लेषण करने में मददगार सिद्ध होता है ।

'Guru Nanak's images, symbols, analogies and metaphors draw upon this cosmic universe of ours with its solar system, galaxies and outer space, and upon our planet Earth with its rich flora and fauna and its agrarian rhythymes- They draw upon domestic, economic and political spheres- SimpleSimiles from Punjabi Landscape endow familiar sights and sounds of enchantment-[1]

वर्तमान शोध पत्र गुरु नानक की बानी में संदेश रचना पर केंद्रित है। यह विश्लेषण करता है कि कैसे गुरु नानक ने अपनी बानी में सादृश्य, रूपकों, उपमाओं, अनुप्रास, मानवीकरण और अन्य साहित्यिक उपकरणों का उपयोग किया जिससे उनके संदेश का अधिक प्रभाव पड़ा। यह भाषा की पसंद, कई भाषाओं के शब्दों और वाक्यांशों के समावेश को भी देखता है जो उनके संदेश को समझने में आसान बनाते हैं। यह शोध पत्र उनकी कहानी कहने की तकनीक को भी देखता है जो उनके संचार को दूरगामी और प्रभावी बनाते हैं।

श्री गुरु नानक का साहित्यिक शैली में योगदान बहुआयामी है। उनके पाठ में विभिन्न विषयों को देखा जा सकता है, जिनमें बाबर वाणी से लेकर जपजी साहिब तक कई प्रमुख प्रसंग हैं, जो उनके ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। श्री गुरु नानक देव की वाणी के मुख्य स्वरों को चिन्हित करना हो या उनकी वर्गीकरण करना हो तो मोटे तौर पर निम्न प्रकार से किया जा सकता है। यह ठीक है कि इस वर्गीकरण में नानक देव जी के

* अध्यक्ष, हिंदी–विभाग, पंजाब–विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

विशाल काव्य को समेटा नहीं जा सकता लेकिन फिर भी इससे उनके मुख्य स्वर की पहचान की जा सकती है। बाबर वाणी, तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को लेकर श्री गुरु नानक देव जी के चिंतन और लेखन में प्रमुख तौर से सामने आती है। "भक्तिकाल के कवियों ने पराजय की निराशा में डूबे भारतीय समाज को पुनःजागृत करने का प्रयास किया लेकिन इसके लिए उन्होंने परोक्ष पद्धति का आश्रय ही लिया। तत्कालीन विदेशी शासकों को उन्होंने कहीं भी प्रत्यक्ष चुनौती नहीं दी लेकिन गुरु नानक देव जी ने बाबर के आक्रमण, उसके सैनिकों द्वाराभारतीयों पर किए गएअत्याचारों का मार्मिक वर्णनअपनी वाणी में किया है। इतना ही नहीं उन्होंने मुगल वंश के भारत से अवसान की भविष्यवाणी भी कर दी थी।"[2] राजनीतिक चिंतन के साथ ही श्री गुरु नानक देव जी का सामाजिक, सांस्कृतिक चिंतन में भीविशेष योगदान है। जब हिंदुस्तान का एक विशाल प्रदेश इस्लामी आक्रमणकारियों से लड़रहा था तो साथ ही साथ वह एक अंदरूनी दीमक से भी लड़ रहा था। वह दीमक था जाति के आधार पर लोगों में विभाजन। श्री गुरु नानक देव जीइस समय पर देश में व्याप्त निराशा को दूर करने के लिए सारे देश का भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने इस समय पर अपनी वाणी में जाति के आधार पर हो रहे भेदभाव की चर्चा की और जन्म साखी में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जहां वे जाति के आधार पर हो रहे भेदभाव के खिलाफ आवाज़ उठाते है।

राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन के अलावा श्री गुरु नानक ने साधना के क्षेत्र को अपनी वाणी के केंद्र में रखा है। श्री गुरु नानक देव जी की वाणी में व्यक्त होने वाले साधना के स्वरूप का मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में विलक्षण स्थान है। भक्ति काल में और उससे पूर्व भी जितने संप्रदाय प्रचलित हुए उनके प्रवक्ताओं ने प्रस्थानत्रयी के किसी न किसी ग्रन्थ के आधार पर अपना सम्प्रदाय प्रचलित किया और उस ग्रन्थ की प्रचलित लोकभाषा मे व्याख्या भी की। प्रस्थानत्रयी में तीन ग्रंथो का समावेश किया जाता है – उपनिषद्, भगवद् गीता और वादरायण के वेदांत सूत्र। इनमें से किसी के आधार पर भी संप्रदाय स्थापित करने से आमजन में मान्यता मिलना आसान था। विदेशी इसलामी शासकों के लंबे राज्य में बहुत बड़ी जनसंख्या को इसलाम में मतांतरित कर लिया गया था। वहाँ केवल दार्शनिक टोटकों से काम चलने वाला नहीं था, दार्शनिक गुत्थियों से सप्त सिंधु पंजाव के सम्मुख उपस्थित समस्याएँ सुलझने वाली नही थीं। वहाँ व्यावहारिक प्रयोग की जरूरत थी और गुरु नानक देवजी का आंदोलन वही प्रयोग था। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदीबहुत सटीक टिप्पणी करते हैं, "इस पृष्ठभूमि में गुरु नानक की स्वाधीन वृत्ति का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। जिन दिनों सारा भारत अपनी बात को आप्त वाक्यों द्वारा समर्थित सिद्ध करने का प्रयास कर रहा था, व्याकरण और मीमांसा शास्त्र की बताई विधियों का सहारा लेकर हर प्रतिकूल बात का अर्थ बदलने में व्यस्त था, गुरु नानक और उनके अनुयायियों ने इस बंधन को अस्वीकार कर दिया। वे सीधी बात को सीधी भाषा में कहते थे। यह आवश्यक नहीं कि कि वह परंपरा से एकदम विछिन्न हो, पर यह भी आवश्यक नहीं कि पद–पद पर वह उसके समर्थन की मोहताज हो।"[3] श्री गुरु नानक ने ईवर के अस्तित्व की व्याख्या बहुत ही सीधे और स्पष्ट शब्दों में कर दी ताकि आम जनता किसी प्रकार की भूल भुलैया में न रहे। यही पूरे पश्चिमोत्तर भारत का नया मूल मंत्र बन गया। इसी आधार को ध्यान में रखकर नानक देव जी की प्रतिनिधि रचना और वाणी का विवेचन करना होगा।

धार्मिक संचार में भाषा और साहित्यिक उपकरणों की संकल्पना

इससे पहले कि श्री गुरु नानक की बानी में प्रयुक्त भाषा और साहित्यिक उपकरणों का विश्लेषण किया जाए, भाषा की अवधारणा, इसके विकास, इसकी भूमिका को समझना आवश्यक हो जाता है। धार्मिक संचार में भाषा की अवधारणा को समझना भी महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में जहां कई भाषाएँ और बोलियाँ हैं जो संचार के लिए एक विशिष्ट अर्थ और सार को मुहैया करा देती हैं।

सरल शब्दों में भाषा को किसी विशेष देश, लोगों या समुदाय द्वारा लिखित या बोली जाने वाली संचार प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह माना जाता है कि एक भाषा में ऐसे शब्द शामिल होते हैं, जिनका इस्तेमाल एक व्याकरणिक संरचना के भीतर किया जाता है। भाषा को मानव संचार के एक रूप में भी जानाजाता है, जो बोली या लिखी जाती है जिसमें संरचित और पारंपरिक तरीके से शब्द शामिल होते हैं। हालाँकि कई परिभाषाएँ भाषा को केवल शब्द संरचनाओं की एक प्रणाली के रूप में देखती हैं लेकिन वास्तव में भाषा की अवधारणा बहुत गहरी है। भाषा, संचार से निकटता से जुड़ी हुई है। संचार को एक अभिव्यक्ति के हस्तांतरण के रूप में समझा जाता है और भाषा को दो लोगों के बीच एक connector के रूप में समझी गयी है। संचार के मूल तत्व प्रेषक, संदेश, चैनल और रिसीवर हैं।संदेश का एक उप तत्व 'कोड' है। भाषा 'कोड' के अंतर्गत आती है यानी संचार की अवधारणा के भीतर, भाषा एक तरह का कोड है जो दो लोगों के बीच संदेशों को समझने में मदद करती है। इस प्रकार, प्रभावी संचार में भाषा एक महत्वपूर्ण तत्व बन जाती है।

धार्मिक संचार में भाषा की विशेष प्रासंगिकता है। पाठ की व्याख्या करने वाले धर्म के इतिहासकार आवश्यक रूप से भाषा उस भूमिका को समझते हैं जिसमें भाषा, धार्मिक विचारों और अनुभवों को बनाने, व्यक्त करने और संवाद करने में मददगार होती है। विशेष रूप से यूरोप में हाल के वर्षों में धार्मिक अध्ययनों के अन्तर्गत प्रवचन विश्लेषण में रुचि देखी गई है। अनुष्ठानों की भाषा की विशिष्ट विशेषताओं में से एक कविता में लय के प्रसार और शब्दों की पुनरावृत्ति के द्वारा उसकी पहुंच बढ़ाना भी है।[4]

पुनरावृत्ति के अलावा, धार्मिक संचार ने कई और साहित्यिक उपकरणों का उपयोग किया ताकि संचार अधिक प्रभावी हो सके। साहित्यिक उपकरण एक कथा के कहने में उपयोग की जाने वाली तकनीक है। साहित्यिक उपकरणों को काल्पनिक उपकरणों के रूप में भी जाना जाता है और यह कई विशिष्ट तरीकों में से एक है जो कथा के निर्माता विचारों को, शब्दों को और कथा को नाटकीय ढंग से व्यक्त करने के लिए उपयोग करते हैं। इन उपकरणों का एक और उपयोग विशेष रूप से कथा को विकसित करने के लिए, इसे और अधिक पूर्ण, जटिल या दिलचस्प बनाने के लिए है। साहित्यिक उपकरणों का उपयोग कवि द्वारा अपनी रचनाओं को विशेष रूप से सुशोभित करने के लिए भी किया जाता है। साहित्यिक उपकरणों में अलंकारिक भाषा भी शामिल होती है जिसके उपयोग से लेखक भावनाओं को व्यक्त करते हैं। जिस तरह से हम शब्दों को कहते हैं, वही पाठक या श्रोता के लिए लय, संगीत और कविता बना सकती है। कविता विशेष रूप से शब्दांशों की संख्या, रेखाओं की व्यवस्था, कुछ कठिन या नरम

ध्वनियों के उपयोग और अन्य उपकरणों के साथ पैटर्न बनाने पर काम करती है। शीतल ध्वनियाँ शांत और सुगमता पैदा कर सकती हैं, जबकि कठोर ध्वनियाँ अराजकता और दोष पैदा करती हैं। श्री गुरु नानक की वाणी में भी हम कविता, संगीत और राग की एक संगति देखते हैं। सादृश्य, उपमा और रूपक जैसे अलंकार श्री गुरु नानक की वाणी में ऐसे उपयोग हुए हैं, कि उन्हें समझने और याद रखने में मदद हो।

गुरु नानक की भाषा और साहित्यिक शैली

पंजाब एक सीमावर्ती क्षेत्र होने के नाते, न केवल दक्षिण एशिया से, बल्कि तुर्की, फारसी और मध्य एशियाई सांस्कृतिक परंपराओं से भी दो चार होता रहा है। भजनों की भाषा को अक्सर "संत भाषा" कहा जाता है, जो उत्तर भारत के मध्यकालीन संत–कवियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा है। लेकिन पाठ में योगदान करने वालों की व्यापक वर्ग ने क्षेत्रीय बोलियों का एक जटिल मिश्रण तैयार किया। सिख गुरुओं ने स्वयं अपने कई भजनों में पंजाबी का इस्तेमाल किया, लेकिन अन्य संतों की तरह वे भी अपभ्रंश, ब्रजभाषा , हिंदुई (दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा) और फारसी का उपयोग करते हैं।[5] जपजी साहिब की शुरुआत में इस्तेमाल किए गए दो प्रमुख शब्द फारसी और अरबी से आते हैं। ये हैं 'रज़ा' और 'हुकुम'। (The word 'Raza' is a Persian word which means 'Will' and the work 'Hukum is a Arabic word which means 'Edict& Fiat' or the operative part of divine Will-6)

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥(गुरु ग्रन्थ साहिब 1)

शुरुआत से, सिख पांडुलिपियों को एक अलग लिपि गुरुमुखी में दर्ज किया गया जिसमें 35 वर्ण हैं। गुरुमुखी लिपि अपने प्रारंभिक रूप में मौजूद थी। सिखों द्वारा इसके इस्तेमाल प्रक्रिया में कई वर्णों के आकार को संशोधित हुए। सिख गुरुमुखी को पवित्रता का एक उच्च स्तर प्रदान करते हैं। गुरु नानक के लिए और सिखों के लिए गुरुमुखी का स्थान, मुसलमानों के लिए अरबी और हिंदुओं के लिए देवनागरी के समान है।

श्री गुरु नानक की बहुसांस्कृतिक कथा और रचना एक समृद्ध साहित्यिक कला है। श्री गुरु नानक के संदेश को उनके काम की साहित्यिक प्रशंसा के बिना पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है। उनकी विचारधारा पूरी तरह से उनके काव्यात्मक वाक्य–विन्यास में बुनी गई है। गुरु नानक की भाषा और साहित्य के अध्ययन के विशेषज्ञ प्रोफेसर क्रिस्टोफर शेकले कहते हैं, 'गुरु नानक सबसे आश्चर्यजनक साहित्यिक गुणवत्ता की एक अद्भुत कविता उत्पन्न करते हैं, जो उन्हें उनके भक्तिमय और स्पष्ट रूप से चलती अभिव्यक्ति के समान रूप से एक गुरु होने का संकेत देती है।[7] गुरु नानक की रचनाएँ अलग–अलग मीटर, छंद और रचना शैली में उभरती हैं। उनकी रचनाओं के भवन खंड अनिवार्य रूप से आधे आधे–तीन या चार शब्दों के हैं। ये संक्षिप्त इकाइयाँ चार– छंद रचनाओं, आठ छंदों (अष्टपदी), छह छंदों के चार छंदों और यहाँ तक कि सोलह छंदों की रचनाओं के रूप में आकार लेती हैं। श्री गुरु नानक का पाठ न केवल विभिन्न बोलियों से शब्दों और वाक्यांशों का एक समृद्ध भंडार है, बल्कि आध्यात्मिक, भावनात्मक और राजनीतिक प्रतिध्वनि का भी एक समूह है। एक अन्य विशेषता यह है कि

श्री गुरु नानक के लेखन में समय के साथ उनका आकर्षण है, और सूर्य और चंद्रमा के खगोलीय पिंडों की गतियों के साथ इसका संबंध है। श्री गुरु नानक का पाठ सामाजिक संदेशों और साहित्यिक प्रतिभा का एक समृद्ध संयोजन बन जाता है। यहाँ एक उदाहरण है जहाँ वह निरर्थक अनुष्ठानों और अपनी रचना में निंदा करने का संदेश देता है और तुकांत विलोम और समानार्थक शब्द का प्रयोग करता है जो एक सशक्त अभिव्यक्ति का निर्माण करता है।

एकादसी इकु रिदै वसावै।।
हिंसा ममता मोहु चुकावै।।
फलु पावै ब्रतु आतम चीनै।।
पाखंडि राचि ततु नही बीनै।।

(गुरु ग्रन्थ साहिबः 840)

गुरु नानक के पाठ में अलंकारों का उपयोग

जपजी को 'सबसे बड़ी रचना' और 'गुरु नानक को प्राप्त दृष्टि और कला की सर्वोत्कृष्टता' के रूप में माना जाता है।[8] अड़तीस श्लोक (मूल में पौड़ी का अर्थ है एक सीढ़ी का चरण') अलग–अलग मीटर में रचना का क्रम बनाते हैं। अनुप्रास, प्रतिध्वनि और संगति में समृद्ध, अड़तीस श्लोक गुरु नानक जी की साहित्यिक प्रतिभा के प्रतीक हैं। जैसा कि शीर्षक का अर्थ है, जपजी एक लिटनी (पुनरावर्तक या दोहरावदार श्रृंखला) के रूप में गायन के लिए बना है और यह इस प्रकार आदि ग्रंथ के अन्य हिस्सों के चरित्र में भिन्न है जो मुख्य रूप से गायन के लिए बनाये जाते हैं और विभिन्न रागों के तहत व्यवस्थित होते हैं। यह अपनी भाषा में गुरु नानक की कई अन्य रचनाओं के समान है, जो कि पुरानी पंजाबी और पुरानी हिंदी का मिश्रण है, जिसमें संस्कृत और फारसी से कई तकनीकी शब्द हैं।

जपजी साहिब में पुनुरुक्ति का उपयोग

अधिकांश धार्मिक मंत्रों की तरह, जपजी में पुनुरुक्ति का उपयोग करते हैं जो कई क्रमिक लाइनों की शुरुआत में एक ही शब्द या वाक्यांश का दोहराव है। पुनुरुक्तिएक शाब्दिक उपकरण है जिसका इस्तेमाल किसी वाक्यांश को लय में जोड़ने के लिए किया जाता है। इस तकनीक में एक पंक्ति या मार्ग की शुरुआत में एक विशिष्ट शब्द या वाक्यांश को दोहराना शामिल है। एक शब्द की पुनरावृत्ति टुकड़ा के समग्र अर्थ को तेज कर सकती है। लेखक और सार्वजनिक वक्ता एक विशिष्ट विचार पर जोर देने के लिए, या एक कलात्मक तत्व के रूप में अनुनय के रूप मेंपुनुरुक्तिका उपयोग करते हैं।

जपजी साहिब में पुनुरुक्तिका उपयोग धार्मिक संचार सिद्धांतों के साथ तालमेल में है, जहां दोहराव का उपयोग पृष्ठभूमि की विकृतियों से विचलित करने और बेहतर समझ और याद में जोड़ने के लिए किया जाता है। जपजी साहिब में पुनुरुक्ति के उदाहरण इस प्रकार हैं

जोरु न मंगणि देणि न जोरु।।

जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु ।।

जोरु न राजि मालि मनि सोरु।।

(गुरु ग्रन्थ साहिबः 7)

श्री गुरु नानक जी की 'आरती' में उपमा और रूपकों का उपयोग

रागु धनासरी महला १

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।।

धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ।।१।।

कैसी आरती होइ।।

भव खंडना तेरी आरती।।

अनहता सबद वाजंत भेरी ।।१।।रहाउ ।।

(गुरु ग्रन्थ साहिबः 13)

आरती श्री गुरु नानक द्वारा रूपक के विस्तृत उपयोग का एक उदाहरण है। यहाँ गुरु नानक ने आरती के हिंदू अनुष्ठान के बीच एक तुलना की है जिसमें तेल के दीपक सजाए गए थाली में रखे जाते हैं और फिर पूजा के दौरान थाली को झूला झुलाकर एक देवता के सामने आरती की जाती है। गुरु नानक एक सुंदर सादृश्य का प्रयोग करते हैं, वे कहते हैं कि सारा आकाश (जैसे कि) थाल है। सूरज और चाँद (उस थाल में) दिये बने हुए हैं। तारों के समूह, जैसे, थाल में मोती रखे हुए हैं। मलय पर्वत से आने वाली हवा, जैसे धूप (धूणे की सुगंध) है। हवा चौर कर रही है। सारी बनस्पति जोति–रूप (प्रभू की आरती) वास्ते फूल दे रही है।

गुरु नानक की बाणी मे सादृश्य का उपयोग

सादृश्यएक अन्य साहित्यिक उपकरण है, जिसका उपयोग अक्सर गुरु नानक के पाठ में किया जाता है। गुरु नानक रोजमर्रा की वस्तुओं और रोजमर्रा की घटना के साथ आध्यात्मिक पाठों की तुलना करके सरल लेकिन प्रभावी उपमाएँ बनाते हैं ताकि एक आम आदमी गहरे निहित अर्थों को समझ सके।

रागु सूही महला१ चउपदे घरु १

भांडा धोइ बैसि धूपु देवहु तउ दूधै कउ जावहु।।

दूधु करम फुनि सुरति समाइणु होइ निरास जमावहु।।१।।

जपहु त एको नामा।।

अवरि निराफल कामा।।१।।रहाउ।।

इहु मनु ईटी हाथि करहु फुनि नेत्रउ नीद न आवै।।

रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अमृतु पावहु।।२।।

(गुरु ग्रन्थ साहिबः 728)

इस शब्द में दूध मथने की उपमा दी गई हैं । बर्तन धो के माँज के उसमें दूध डालते हैं और जाग लगाई जाती है। मथानी की डोर के सिरे कोहाथ में पकड़ के दूध बर्तन में मथते हैं और मक्खन निकाला जाता है। गुरु नानक कहते है (मक्खन हासिल करने के लिए हे भाई!) आप पहले बर्तन धो के उस बर्तन को धूप लगवाकर दूध लेने जाते हो ।फिर जाग लगा के उसको जमाते हो। इसी तरह यदि नाम रूपी अमृत की प्राप्ति करनी है तो हृदय को पवित्र करके , मन को स्थिर करके, हृदय रूपी बर्तन को धूप देना है। गुरुनानक देव जी ने रोज के परिश्रम को दूध की संज्ञा दी है । प्रभु के चरणों में ध्यान लगाना यह दूध में जाग लगाने के समान है दुनियाँ की आशाओं, इच्छाओं से ऊपर उठ कर इस प्रकार दूध को जमाओ।जीभ से परमात्मा का नाम जपो (ज्यों–ज्यों नाम जपोगे) त्यों–त्यों (ये रोजाना काम–काज रूपी दूध) मथता रहेगा, इन विधियों से रोजाना काम–काज करते हुए ही नाम–अमृत प्राप्त कर लोगे।

निष्कर्ष

श्री गुरु नानक का संदेश काल और समय की सीमाओं को पार करने में सक्षम है, क्योंकि इसे विलक्षण साहित्यिक प्रतिभा के साथ व्यक्त किया गया है। श्री गुरु नानक की वाणी के अंशों के भाषाई विश्लेषण से पता चलता है कि वह आध्यात्मिक विचारों के सबसे जटिल पक्ष को सरल उदाहरणों और उपमाओं के उपयोग के साथ आसानी और प्रभाव के साथ व्यक्त करने में सक्षम है। वह उस समय प्रचलित विभिन्न भाषाओं और बोलियों के शब्दों और वाक्यांशों का उपयोग करते हैं जो उनके संदेश को आम लोगों द्वारा समझे जाने के लिए आसान बनाते हैं। बोलचाल के वाक्यांशों का उपयोग, दैनिक जीवन से उठाई गई उपमा आदि उनके संदेश को आम आदमी के लिए आसान और विश्वसनीय बनाते हैं जिससे उनके संदेशों का दूरगामी प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा उनके द्वारा अलंकारों और अन्य साहित्यिक उपकरणों का उपयोग उनकी वाणी को काव्यात्मक और साहित्यिक रूप प्रदान करते हैं।

संदर्भ

1. एन.जी कौर सिंह, द फर्स्ट सिखः द लाइफ एंड लिगेसी ऑफ गुरु नानक, पेंगुइनरैंडम हाउस इंडियाप्रीयर लिमिटेड, 2019
2. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, लोकचेतना और अध्यात्म साधना के वाहक श्री गुरु नानक देवजी, प्रभात पेपरबैक्स, 2019
3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सिख गुरुओं का पुण्य स्मरण
4. आर. येल, भाषा और धर्म, वाल्टरड ग्रुइटर, 2019
5. जीएस मान, द मेकिंग ऑफ सिख स्क्रिप्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001
6. एसएस भट्टी, गुरु नानक देवः डिस्पेंसर ऑफ लव एंड लाइट, व्हाइट फाल्क0न पब्लिशिंग, 2019

7. एन.जी कौर सिंह, द फर्स्ट सिखः द लाइफ एंड लिगेसी ऑफ गुरु नानक, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडियाप्रीयर लिमिटेड, 2019
8. एन.जी कौर सिंह, द फर्स्ट सिखः द लाइफ एंड लिगेसी ऑफ गुरु नानक, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडियाप्रीयर लिमिटेड, 2019
9. सी. शेकले और ए. मंडैर, सिख गुरुओं का शिक्षणः सिख धर्मग्रंथ से चयन, 2013

श्री गुरु नानक काव्य में सामाजिक अवधारणा : एक विश्लेषण

डॉ. आदित्य आंगिरस*

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्य काल (संवत १३७५ से ले कर संवत १७०० तक) भक्तिकाल के नाम से जाना जाता हैं। इस काल के भक्त कवियों ने जहां उस परम तत्त्व को सृष्टिकर्ता के रूप मे जानने का श्रद्धापूर्वक प्रयास कर उस ईश्व्वर को संपूर्ण संसार का उद्गम स्रोत माना वहीं दूसरी ओर उन्होंने ईश्वर भक्ति के माध्यम से सामाजिक समानता एवं समरसता को भी तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जो प्रचलित लिङ्ग भेद, धर्म भेद, जातिगत भेद से रहित थी। अतः पूर्व मध्यकालीन निर्गुण सन्त एवं सूफ़ी कवियों की धर्मगत साधना की भाव–भूमि सभी के लिये समान–धर्मा थी क्योंकि उनकी आस्था ईश्वर के उस करुणामय स्वरूप पर रही जो इस सृष्टि की उत्पति स्थिति एवं संहार का आधार है एवं ये कवि मानते थे उसने इस सृष्टि का निर्माण किसी विशेष कारणवश किया। अतः सम्पूर्ण सन्त काव्य की यह स्वयं में विशेषता है कि वह अपने उपदेश के माध्यम से उस परम सत्य का साक्षात्कार करने का प्रयास करता है जो इस सृष्टि का न केवल आधार है अपितु वह तत्त्व स्वयं इस सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। अतः वे एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जो धर्मगत, जातिगत रूढियों एवं बंधनों से मुक्त है और जो मानव को मानव मानने के लिये बाध्य हो कर उस परम सत्य का अनुभव करने में अग्रसरित हो।

इन्हीं संदर्भों में यदि हम पूर्व मध्यकालीन भारतीय धर्म साधनाओं का स्वरूप देखने का प्रयास करें तो हम भारतीय इतिहास में यह देखते हैं कि तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार की धर्म साधनाऐं प्रचलित थीं जिनमें एक ओर तो सिद्ध, नाथ, शाक्त, वैष्णव धर्म साधनाऐं प्रमुख रहीं हैं और वहीं दूसरी ओर भारतीय जनमानस पर मुसलमानों के प्रचलित एकेश्वरवाद का प्रभाव प्रमुख रहा। इसके अतिरिक्त लोक मानस में पूर्व युगों से प्रचलित वैदिक एवं औपनिषदिक अवधारणाओं का भी तत्कालीन समाज पर व्यापक प्रभाव रहा। इसी के परिणामस्वरूप धर्म के नाम पर जो आडम्बरपूर्ण पाखण्ड की रचना की गई उसी के कारण मध्यकालीन सन्त साहित्य ने एक ऐसा जन आन्दोलन खडा करने का प्रयास किया जिसका धरातल सभी के लिये समान हो। यह ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहा जिसने भारतीय जन मानस में प्रचलित विभिन्न धार्मिक साधनओं पर व्यापक प्रभाव डाला और इस का प्रभाव लोक मानस पर बहुत गहरा रहा।

नानक का नाम यद्यपि सिख सम्प्रदाय के पहले गुरु में लिया जाता है परन्तु यहां स्पष्ट करना आवश्यक है पूर्व मध्यकालीन सन्त काव्य ने संपूर्ण भारतवर्ष के साहित्य पर अपना विशेष प्रभाव डाला जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन संयुक्त पंजाब प्रान्त में

* हिन्दी प्रवक्ता, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस., साधु आश्रम,ऊना रोड, होशियारपुर

प्रचलित विभिन्न धर्म साधनाएं अछूती न रह सकी एवं उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप पंजाब में भी भक्ति साहित्य की रचना की गई। अतः संयुक्त पंजाब में प्रचलित सन्त परम्परा के चिन्तकों एवं कवियों में नानक का नाम अग्रगण्य माना जाता है क्योंकि इनके काव्य में जहां औपनिषदिक सत्य की बात जहां आती है वहीं दूसरी ओर राम के निर्गुण रूप की उपासना पर इन्होंने विशेष बल देकर मनुष्य को श्रद्धावान बनाने का अधिक प्रयास किया। इसका संभव कारण यह हो सकता है कि नानक ने न केवल तत्कालीन सामाजिक चरम सत्य को न केवल भावात्मक रूप में देखा, समझा और स्वीकार किया अपितु उसको अनुभव करने में प्रचलित रूढियों में समयानुसार आवश्यक बदलाव करने का भी प्रयास किया ताकि तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न धर्म साधनओं में सौमनस्य की भावना हो सके।

इन्हीं संदर्भों में वे अपना विश्वास सहज रूप में प्रकट करते हुए कहते हैं कि "साहिब मेरा एको है। एको है भाई एको है। आसा राग सबद ५ अर्थात इस सृष्टि का रचयिता वह परम तत्त्व केवल एक ही है एवं मनुष्य को श्रद्धावान होकर उसकी उपासना करनी चाहिये।वे इन्ही संदर्भों मे अपने इसी विश्वास को पुनः प्रस्थापित करते हुए उस ईश्वर के अतिरिक्त किसी दूसरे के अस्तित्व को मानने से इन्कार कर देते है जो इस संसार का पालनकर्ता एवं नियामक तत्त्व है तुधु बिनु दूजी नाही जाई। जो किछु वरतै सभ तेरी रजाई। नानक वाणी गउडी सबद २। उनका मानना है कि इस संसार में जो कुछ भी विद्यमान है उस सभी का नियामक तत्त्व केवल वही ईश्वर है। कह कर उस परम तत्त्व के प्रति जहां अपनी आस्था प्रकट करते हैं अतः वे प्रत्येक जीव को एक ही बात समझाने का प्रयत्न करते है कि कि "मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि। जिनखिनु पलु नामु नवोसरै ते जन बिरले संसारि। नानक वाणी सिरो रागु सबद २०"। अतः कहना उचित न होगा कि वे अपनी भक्ति के माध्यम से जिस निर्गुण निराकार राम की उपासना करने की बात करते हैं वह वास्तविक रूप में तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित सभी धर्म साधनाओं का निचोड है। वे भाव रूप में राम की सत्ता को स्वीकार करने के पक्षपाती है एवं राम की भाव सत्ता तभी बोधगम्य हो सकती है जब जीव माया को अपावृत्त कर अपने सत्य स्वरूप को जानने का प्रयास करना आरंभ करता है। अतः राम की अनन्य भक्ति से ही जीव को अपने शुद्ध चैतन्य के दर्शन संभव हो सकते है और उसी की भक्ति के परिणामस्वरूप माया का प्रभाव नष्ट हो सकता है। नानक का इस विषय में अपना एक निश्चित मत है कि यदि मनुष्य को आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक दुखों से निवृत्ति चाहिये तो उसे हरि भजन अवश्य करना चाहिये एवं बिना हरि भक्ति के मनुष्य की कभी दुखों से मुक्ति नहीं हो सकती है "बिनु हरि भगति न मुक्ति होइ, इउ कहि रमें नानक "। परंतु नानक की दृष्टि के अनुसार भक्ति पूर्णतः निष्काम होनी चाहिए। वे हरि से धन, संतान कोई अन्य सांसारिक सुख माँगने के विरुद्ध हैं, वे तो भक्ति के द्वारा स्वर्ग भी नहीं माँगना चाहते हैं। नानक ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। नानक की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये नानक किसी विशिष्ट सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। नानक पहले साधक हैं फिर कवि। वे अपनी भक्ति साधना में जिस जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। वे विचार और आत्म साधना

के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि नानक का राम कभी किसी रूप में तो कभी किसी अन्य रूप में हमारे सामने आता है। यह तर्क और किसी दार्शनिक आधार के बाहर होता हुआ अनुभव गम्य है, जिसमें ईश्वर एवं जीव का एकात्म बोध निश्चित है। नानक की ऐसी भक्ति में निष्काम भाव का हमारे सामने वह स्वरूप आता है जिसमें वे बदले में किसी कामना को पूर्ण करने अथवा सिद्धि को प्राप्त की अपेक्षा नहीं करते अपितु उनकी भक्ति अहैतुकी है ।क्योंकि नानक श्रेयस मार्ग के अनुगामी है क्योंकि वे मानते हैं कि सांसारिक मार्ग मनुष्य को श्रेयस के मार्ग पर अग्रसरित नहीं कर सकता है" न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।। २७।। अतः उनका चुनाव जीवन में उस श्रेष्ठता का है जो मनुष्य को एक आर्द्र हृदय व्यक्ति के रूप में मनुष्य समाज के सामने लाती है।

स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामान्

अभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।

नैता सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो

यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः।।३।।

वस्तुतः नानक एक ऐसे प्रेम के स्वरूप की बात करता है जो मनुष्य को मनुष्य से जोडे. रखने में विश्वास रखता है वह चाहे वह प्रेम भाई भाई, माता पुत्र, पिता पुत्र,भाई बहन का हो अथवा प्रेम का कोई भी अन्य रूप। इसका स्पष्ट कारण यह है कि नानक सभी जीवों में उस चेतना को देखते हैं जो सृष्टि का रचनाकार एवं पालनकर्ता है। नानक के ऐसे प्रेम में ऐन्द्रिय वासना का कोई स्थान नहीं है और यहां प्रेम का अर्थ है प्रेमी के प्रति संपूर्ण रूपेण आत्म समर्पण बिल्कुल नवजात शिशु का जैसे समर्पण अपनी माता के लिये होता है। नानक बिना लाग लपेट के हर धर्म के उस पक्ष से प्रभावित हुए जो मनुष्य मात्र को जीवन के श्रेष्ठतम मार्ग की ओर अग्रसर करने का प्रयास करते हैं और धर्म के उस पक्ष पर उन्होंने प्रहार किया जो मनुष्यता के मार्ग में विघ्न उपस्थित करता है और अपने काव्य के माध्यम से उन्हें जनचेतना से दूर करने का प्रयास करता है जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करने का प्रयास करता है। इन्हीं संदर्भों में मनुष्य को एक ही पिता की संतान मानते हुए सभी को उसी की उपासना करने के लिये कहते हैं "साहिब मेरा एकु है अवरु नहीं भाई आसा काफ़ी असटपदीआं १८"। उनके लिये उस परम तत्त्व के इस स्वरूप के साक्षात्कार करने में जाति, धर्म, लिंगभेद अथवा वर्ण व्यवस्था व्यर्थ की रूढियां हैं क्योंकि सत्य के साक्षात्कार करने में किसी जाति, व्यक्ति अथवा लिंग अथवा धर्म विशेष का महत्त्व और अधिकार नहीं है। वह परम तत्त्व का साक्षात्कार सभी के लिये समान रूप से उपलब्ध है। वह परम तत्त्व केवल अनुभव गम्य है एवं उ्से अनुभूत करने के लिये केवल श्रेष्ठतम आचरण की आवश्यकता है जो अनुभूत सत्य के समान हो। वे मानते हैं कि उस ईश्वर के दर्शन करने के लिये किसी जाति या लिङ्ग विशेष की आवश्यकता नहीं है और वह सर्वव्यापी होने के कारण प्रत्येक मनुष्य देह में चैतन्य रूप में अवस्थित है–अंदरि नामु निवासि। आपै करता है अविनासी। ना जिउ मरे न मारिआ जाई करि देखे सबदि रजाई। नानक वाणी मारू ६"। अतः प्रत्येक मनुष्य का वास्तविक धर्म यही है कि वह उस ईश्वर के स्वयं में दर्शन करे। वास्तविक रूप में नानक जिस ईश्वर

के विषय में बात करते है वह प्राचीन औपनिषदिक विचार परम्परा के विरुद्ध नहीं है।। जब बृहदारण्यकोपनिषद ईश्वर के विषय में चिंतन करते हुए अपना मत प्रस्तुत करता है तो वह इसी तथ्य को प्रतिपादित करता हुआ कहता है कि यह आत्मा ही परमेश्वर स्वरूप है जिसे सभी को अनुभूत करना चाहिये अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः बृहदारण्यकोपनिषद२.५.१६ नृसिंहतापनीयोपनिषद भी इन्हीं संदर्भों में अपना मत स्पष्ट करता हुआ प्रत्येक जीव को अपने में उस ईश्वर के दर्शन करने चाहिये क्योंकि अयमात्मा ब्रह्म १.२ यह आत्मा ही सृष्टि का आदि पुरुष है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक उस परम तत्त्व का साक्षात्कार करने के लिये सदा ही उद्यत रह कर यत्न करना चाहिये क्योंकि यह आत्मा सृष्टि का अनश्वर तत्त्व है । इन्हीं संदर्भो उनका मानना था कि राह दोवै इकु जाणै सोई सिमझी । नानक वाणी वार माझ की ५वी पउडी। इसी लिये वे सभी व्यक्तियों को मन को वश में करने को कहते है। संभवतः नानक उस औपनिषदिक रहस्य को जानते थे जो मन ही सभी इच्छाओं का आधार मानता है एवं जो मनुष्य को कर्म करने में प्रवृत्त करता है। मनुष्य के श्रेष्ठतम् आचरण की कल्पना केवल मन के सात्विक होने पर ही कर सकता है जो उसके अभ्युदय एवं निश्रेयस का मार्ग प्रशस्त करता है। मन की यह सात्विक पृष्ठभूमि किसी जाति व्यक्ति अथवा लिङ्ग विशेष का अधिकार ने हो कर यह सर्वसामान्य के लिये सुलभ है।

यद्यपि नानक की भक्तिभावना पर वैष्णव विचारधारा का आंशिक प्रभाव पडा, नानक पर सिद्ध और नाथ पंथी योगियों का भी प्रभाव पडा, नानक पर सूफी मत का भी काफी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है फ़िर भी नानक औपनिषदिक एवं वैदिक दर्शन का भी प्रभाव देखने को मिलता है। वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम रोम और सृष्टि के कण कण में बसा है। वह मनुष्य के अन्तर्तम में विराजमान हैं। इन्हीं संदर्भों में वे खते हैं "देही अंदरि नामु निवारी । आपे करता है अविनासी। न जीउ मरै न मारिया जाई करि देखै सबदि रजाई हे।१२/६ नानक वाणी मारू, सोलहे, ६। यह तो बात निश्चित है नानक का काव्य अन्तर्मुखिता का एक ऐसा काव्य है जिसे ह्रदयंगम करने के लिये मनुष्य को अन्तर्मुखी होना आवश्यक है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें बुद्धि की स्थिति नगण्य है और यदि मनुष्य अन्तर्मुखिता की उस स्थिति को प्राप्त कर आत्म से जुडता है तो वह मनुष्य समाज में रहते हुऐ भी वह एक ऐसी स्थिति को प्राप्त कर सकता है नानक के अपने शब्दों में केवल ऐसी स्थिति में ही वह उस ईश्वर अथवा आत्मा का दर्शन करता है "अनहदो अन्हदु बाजै रुणझुण कारे राम। मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पियारे राम। नानक वाणी आसा महला १ छंद २। वे उस परम सत्य के स्वरूप वर्णन के विषय में कहते है जीव एवं ईश्वर वास्तविक रूप में केवल एक ही तत्त्व है। यह बात हम इस प्रकार कह सकते हैं कि घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि विलाप्याखण्डभावे न तूष्णीं हव सदा मुने अर्थात जैसे घडे एवं घडे के बाहर के आकाश में कोई अन्तर नही है तःइक उसी प्रकार ईश्वर एवं जीव में कोई अन्तर नही है। जहां भिन्नता अथवा सीमा आती है वह केवल मनुष्य देह की ही सीमा है। तभी तो वे उस परम तत्त्व को अपने में अनुभूत कर कह उठते है "सहस तव नैन, नन नैन है तोहि कउ... कह कर अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हैः नानक वाणी धनासरी आरती सबद ६ अर्थात" वह ईश्वर अनन्त रूपों नाम, गुणों एवं वर्णों वाला है। गीता के १० एवं ११ अध्याय में अर्जुन भी इसी बात को कहते हुए दिखाई देते हैं।

अतः यह आत्मा अध्यक्षर है; अक्षर का आश्रय लेकर जिसका अभिधान(वाचक) की प्रधानता से वर्णन किया जाय उसे अध्यक्षर कहते हैं। जिस प्रकार अकार नामक अक्षर अदिमान् है उसी प्रकार वैश्वानर भी है। उसी समानता के कारण वैश्वानर की अकार रूपता है। अकार निश्चय ही सम्पूर्ण वाणी है श्रुति के अनुसार अकार से समस्त वाणी व्याप्त है। ओङ्कार की दूसरी मात्रा ऊकार है उत्कर्ष के कारण जिस प्रकार अकार से उकार उत्कृष्ट–सा है उसी प्रकार विश्व से तैजस उत्कृष्ट है। जिस प्रकार उकार अकार और मकार के मध्य स्थित है उसी प्रकार विश्व और प्राज्ञ के मध्य तैजस है। सुषुप्ति जिसका स्थान है वह प्राज्ञ मान और लय के कारण ओङ्कार की तीसरी मात्रा मकार है। जिस प्रकार ओङ्कार का उच्चारण करने पर अकार और उकार अन्तिम अक्षर में एकीभूत हो जाते हैं उसी प्रकार सुषुप्ति के समय विश्व और तैजस प्राज्ञ में लीन हो जाते हैं। अमात्र–जिसकी मात्रा नहीं है वह अमात्र ओङ्कार चौथा अर्थात तुरीय केवल अत्मा ही है। इस प्रकार अकार विश्व को प्राप्त करादेता हैतथा उकार तैजस को और मकार प्राज्ञ को; किन्तु अमात्र में किसी की गति नहीं है। अतः प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है।प्रणव को इस प्रकार जानने के अनन्तर तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है। प्रणव को ही सबके ह्रदय में स्थिति ईश्वर जाने। इस प्रकार सर्वव्यापी ओङ्कार को जानकर बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता। तैतरीयोपनिषद में कहा है कि जिस प्रकार शंकुओं(पत्तों की नसों) से संपूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार ओंकार से सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है–ओंकार ही यह सब कुछ है। अतः जब भी वे संसार सागर को पार करने की बात करते है तो वे केवल एक ऊंकार को ही शब्दगुरु मानते हुए सभी को इसी का ध्यान करने का संदेश देते है। इहु भव जलु जगतु सबद गुर तरीए। नानक वाणी मारू सोलहे २१

नानक अन्ध भक्ति में विश्वास नहीं करते जो मनुष्य को अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित न कर सके क्योंकि वे कठोपनिषद के वाक्य से भली भान्ति परिचित थे कि अन्धंतमःप्रविशन्तियेऽसंभूतिमुपासते। ततोभूयइवतेतमोय उसंभूत्यारताः।।१२।। से सम्भवतः अच्छे रूप में परिचित थे। अतः वे धर्म के नाम पर चल रही रूढियों के पक्षपाती नहीं कहे जा सकते क्यों कि वे रूढियां मनुष्य के आत्म दर्शन में बाधा प्रस्तुत करती है। अतः वे आस्था को सामाजिक तर्क की कसौटी पर कसते है एवं केवल उसी को अपनाते हैं जो सामाजिक नियमों के अनुरूप है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।५।।

महत्वपूर्ण अबात इन्हीं संदर्भों में यह है कि यदि तत्कालीन प्रचलित सामाजिक अथवा वैयक्तिक रूढियां मनुष्य मात्र के लिये श्रेयस का मार्ग प्रतिपादित कर सकती तो उनका अस्तित्व सार्थक होता। परन्तु लोक विश्वास को रूढार्थ में ले कर जीवन यापन करना उनके अनुसार पाखण्ड है। यहां यह स्पष्ट कर देना अधिक सार्थक होगा कि नानक, सर्वप्रथम, मानव को मानव के रूप में देखने में अधिक विश्वास करते हैं जिसमें आवश्यक श्रद्धा आस्था आदि मानवीय गुण विद्यमान है। अतः जब वे छोडीले पाखण्डा (नानक वाणी आसा की वार सलोक ३३) कहते है तो उनका मन्तव्य मनुष्य की उस की जड चेतना पर प्रहार कर उसे उस परम तत्त्व के प्रति जागरूक बना कर साधना में प्रवृत

करना मात्र है। कठोपनिषद का एक महावाक्य इन्हीं संदर्भों में द्रष्टव्य है जहां श्रद्धावान मनुष्य उस परम तत्त्व को सत्य धर्म का निर्देश करने के लिये प्रार्थना करता है। क्योंकि उन्हों ने यह अनुभव किया कि सत्य के नाम प्रचलित साधनाओं का स्वरूप बिगड चुका है एवं विकृत धर्म साधनाऐं मनुष्य के लिये श्रेयस का मार्ग प्रतिपादित करने में अक्षम है। क्योंकि सत्य के सही स्वरूप के विषय केनोपनिषद में कहा जाता है

हिरमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।१५।।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह तेजो

यत्ते रुपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि

यो ऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।१६।।

अर्थात ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण सत्य को जानने के पश्चात व्यक्ति को जानने के लिये कुछ भी अन्य नहीं रह जाता। अतः जब नानक जे मन जाणहि सुलीआ काहे मिठा खाहि। नानक वाणि सोरठि सबद १ कहते है तो उन का संभव अर्थ यह हो सकता है कि मनुष्य को विषयों का रस त्याग कर आत्म को खोजने का प्रयास करना चाहिये। क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में मनुष्य कर्म करते हुए कर्म फ़ल आसक्ति से दूर रह कर न केवल आत्मश्रेयस का पथ निर्मित करता है अपितु मनुष्य समाज में दूसरों के लिए एक उदाहरण के रूप में अपने आप को प्रस्तुत करता है। इन्हीं संदर्भों में वे एक शब्द विशेष "कूड" का प्रयोग अपने काव्य में बहुधा में करते है उदाहरणार्थ "कूडु बोलि बोलि भऊकणा चूका धरम विचारु" नानक वाणी सारंग की वार अथवा "कूडु राजा कूडु परजा कूडु सबु संसारु" नानक वाणी आसा की वार जिसका अर्थ नश्वरता, झूठ अनित्यता आदि के संदर्भों मे समझा जा सकता है। कठोपनिषद इन्हीं संदर्भों में उद्धरित करना यहां एक आवश्यकता जान पडती है

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः

तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते

प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते।।२।।

अर्थात जीवन यापन करने के केवल दो ही मार्ग है पहला श्रेयस का मार्ग अर्थात आत्मप्राप्ति का मार्ग एवं द्वितीय प्रेयस का मार्ग अथवा सांसारिक मार्ग। धीर अथवा स्थितप्रज्ञ व्यक्ति दोनो पर विचार करता हुआ श्रेयस के मार्ग को चुन कर उसके अनुसार जीवन यापन करता है। नानक जब "हुकुमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ..... हुकमे अंदरि सभु को बाहरि न कोइ' नानक वाणी जपुजी पौडी २ कह कर हुकमे सिध साधिक बीचारे। नानक वाणी मारू सोलहे १६ कहते है तो उन का कहने का मन्तव्य यही है कि आत्मप्राप्ति वाले मार्ग पर चलता हुआ व्यक्ति उस ईश्वर को प्रसन्न करने वाले ही कर्म करता हुआ जीवन यापन कर्ता हुआ उस अनन्त को प्राप्त होता है। क्योंकि वे मानते

हैं "तुझ ते उपजहि तुझ माहि समावहि" नानक वाणी मारु सोलहे १४ अर्थात वह ईश्वर ही जीवन का अन्तिम सत्य है जिससे संपूर्ण संसार की उत्पत्ति एवं विलय होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित कर्म है कि वह उस ईश्वर को अपने में खोजने का प्रयास करे। अतः नानक मनुष्य मात्र को विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयम् सह। अविद्यया मृत्युंतीर्त्वाविद्ययामृतमश्नुते।।११।। संदेश देते हुए यही बात समझाते हुए कहते हैं कि जो साधना मनुष्य को निश्रेयस के मार्ग पर अग्रसरित करने में अक्षम हो मनुष्य को वह मार्ग त्याज्य है। एवं यह विद्या सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। आवश्यकता केवल मनुष्य के श्रद्धावान हो कर आचरण की है क्योंकि कठोपनिषद के अनुसार "नैषा तर्केण मतिरापनेया, प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।"

संदर्भ ग्रन्थ सूची

कठोपनिषद

केनोपनिषद

मिश्र, जयरामः नानक वाणी, इलाहाबाद, मित्र प्रकाशन

मनुष्य भक्षक (मुसलमान) नमाज पढते है और जुल्म की छुरी चलाने वाले जनेऊ धारण करते हैं। नानक वाणी आसा दी वार सलोक ३४

विश्व ज्योति, वी वी आर आई, साधु आश्रम होशियारपुर

श्री गुरु नानक वाणी में मन जीतै जग जीत का संकल्प

डॉ. मलकीत सिंह*

बलियो चराग अंधार महि सभ कलि उधारी उधारी एक नाम धरम ।
प्रगट सगल हरि भवन महि जनु नानक गुर पार ब्रह्म।[1]

गुरु नानक ने मानवता की श्रेष्ठता का चित्रण करते हुए उसके सात कारण निर्धारित किए हैं। यही सात कारण हैं जिसने गुरु नानक धर्म और दर्शन का संकल्प दृढ किया है। यही गुरु जी के प्रमात्मा का स्वरूप है। दरअसल प्रमात्मा का यह स्वरूप मानवता की गहन आकांक्षाओं और श्रद्धा का ही रूप है। मानवता के यह साथ स्वप्न, आदर्श, संकल्प, विश्वास हैं कि किसी दिन मानवता इस सत्ता तक पहुँच जाएगी तथा सम्पूर्ण मानवता प्रमात्मा का स्वरूप हो जाएगी। मानवता की यात्रा प्रमात्मा होना है। यह तभी संभव है जब प्रमात्मा के सभी गुण अपने अन्दर धारण करे। ये सात कारण हैं, "ੴ–एकता, सतिनामु–सत्य, करता पुरुखु–श्रम, निरभऊ–निरवैर–समानता, अकाल मूरति–सौन्दर्य, अजोनि सैभं–स्वाधीनता, गुरुप्रसादि–शील। इन सातों की व्याख्या सम्पूर्ण नानक वाणी में विद्यमान है। इन सातों को मूल मंत्र कहते हैं, जो कि गुरु नानक की प्रथम वाणी "जपु" का सार तत्व है। मूल मंत्र की व्याख्या जपु, आसा दी वार, सिद्ध–गोष्टी, ओंकार आदि वाणियों में है।

सिद्धों को उपदेश देते हुए गुरु नानक देव जी ने संसार को जीतने का रहस्य अपनी वाणी में इस तरह बताया हैः–

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति।।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति।।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु।।[2]

पर उन्होंने यह समझाया तब, पहले स्वयं इस उपदेश को अपनाया, गुरु जी ने अपने मन को जीता, अपने आप को जीता, इस तरह सम्पूर्ण संसार को जीता।

संसार को जीतना क्या है? संसार को जीतना से भाव संग्राम करके जीतना नहीं है, बल्कि यह आत्मिक जीत है, सिद्धांतों की जीत है, भाव है कि गुरु जी ने आप अपने को जीता, इस तरह सारे संसार के विश्वास, प्यार और विचार को जीता। यही सही मायने में जीत है। यही जीत सुकरात, महात्मा बुद्ध, यीशु–मसीह, मुहम्मद साहिब तथा सभी गुरु साहिबान को प्राप्त हुई। सचमुच यही महान पुरुष संसार के असली विजेता हैं, जिनकी जीत सारा संसार मानता है। संसार इन महान पुरुषों के नाम पर न्योछावर होता है। इनके वचनों से अमृत को चखता है और आत्मिक आनंद प्राप्त करता है। इन्हीं महान पुरुषों के सिद्धांतों, विचारों, उद्देश्यों का सम्मान है, क्योंकि इनके अन्तः चेतना में श्रम, लगन तथा प्यार व्याप्त है।

* अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, श्री आनंदपुर साहिब

'मन जीते जग जीत' को गुरु नानक तथा अन्य महापुरुषों ने जिस तरह प्राप्त किया है? गुरु नानक जी कहते है कि इन महान पुरुषों ने अपना मन मार कर संसार को प्यार तथा मानवता की भलाई के लिए अपना आप न्योछावर कर दिया। बदले में संसार ने इनको प्यार और सम्मान दिया, यही जीत है। मन को जीतने का रहस्य गुरु नानक जी समझाते हुए कहते हैं :– मनुष्य के अंदर संतोष आ जाना तथा अपनी जरूरतों, कामनाओं को त्यागना, स्वार्थ से दूर रहकर, अपनी वासनाओं को काबू कर लेना, मानवता की सेवा में कर्मशील हो जाना, यही गुरु जी ने अपने जीवन में स्वयं किया ।

मन को जीतने के लिए मनुष्य को मेहनत तथा इज्जत कमानी चाहिए जिसका भाव यह है कि उसके अंदर लोक लाज्जा हो, मर्यादा, कर्तव्य–पालन करना, सत्य विचारों का सम्मान करना ही इन गुणों को झोली में डालना है। अतः लोक लाज का भाव है– धर्म की पालना करना। गुरु नानक ने लाज तथा धर्म दोनों को इकट्ठा रखा है, क्योंकि जिसे लोक लाज नहीं वह धर्म भी नहीं निभा सकता। गुरु का सिद्धांत है :–

सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै प्रधानु वे लालो ।।[3]

जो लोक–लाज को बचाएगा, वही धर्म को बचाएगा और जो धर्म को बचाएगा वही संसार को जीतेगा।

मन को जीतने के लिए प्रभु ध्यान, सत्य को ध्यान में रखकर अपना आप न्योछावर करना। साधुओं की तरह राख मल कर अपना आप बिगड़ लेता है इस तरह नहीं अगर विभूति लगानी है तो प्रभु ध्यान की विभूति लगानी है, गुरु नानक ने यही किया। अपने सुख, आराम गँवाकर हजारों मील चलकर मानवता की भलाई के लिए ज्ञान का प्रकाश किया गुरु नानक ने संसार को प्यार किया।

मन जीतने के लिए काल को खिंथा समझे, मौत को सहारा समझे। भावार्थ है कि मनुष्य अगर मौत को याद रखेगा उसके अन्दर संतोष पैदा होगा, इस तरह वह मानवता की सेवा में अपने आप को लिप्त करेगा।

मन को वह जीतता है, जिसकी जीवन–शैली है– 'कुंवारी काया' – भावार्थ है मन को पाप मुक्त रखना। जो मानसिक और शारीरिक तौर से अपने आप को पाप मुक्त रखता है, वही सभी के ह्रदय को जीत सकता है।

मन को वही जीतता है जो 'परतीति'– लोक विश्वास, प्रभु विश्वास, सच पर विश्ववास तथा मानव सेवा के विश्ववास को जीवित रखता है।

मन को जीतने के लिए उपरोक्त सभी तत्वों के सार तत्व को सातवें गुण में चित्रित कर दिया गया है कि "आई पंथी सगल जमाती" – सारी मानवता को अपना साथी, अपना भाई मानता है। अपना जीवन साथी तथा भाई के लिए कुर्बान करता है, वही सभी का मन जीत सकता है और परम पिता परमेश्वर को आदेश देता हुआ गुरु नानक के साथ गाता है :–

आदेसु तिसै आदेसु
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु।।[4]

मन को जीतने वाला मनुष्य सेवा परायण होता है, मानवता के भले के लिए अपना आप त्यागता है। यह तभी संभव होता है जब प्रमात्मा की कृपा होती है। जिसके घटघट में अनहद नाद बजता सुनाई देता है, अगर मन को 'नाथ–नाथी' समझता है, जो कोई "आसणु–लोइ–लोइ भंडार" प्रत्यक्ष देखता हो।

गुरु नानक के मन को जीता तथा मानवता की सेवा में लग गए, उन्होंने इतनी सेवा की कि सम्पूर्ण मानवता को जीत लिया। मानवता ने उन्हें प्यार किया, उनकी वाणी को माना, मानवता ने उनके सिद्धांतो को अपनाया, मानवता उनके दिखाए मार्ग पर चली, उनका अनुसरण किया, यही 'जग–जीत' है।

गुरु नानक पाठशाला, मदरसे गए तथा पूछा कि शिक्षा कैसी है, जिससे सच्चाई का पता लगता है, जीवन शैली का पता चलता है तथा मनुष्य प्रभु दर्शन में अपने आप को लगा लेता है, गुरु नानक देव जी ने बताया कि असली शिक्षा ही यही है। सारी मानवता ने उनके विचारों को धारण किया, यही 'जग–जीत' है।

गुरु नानक देव जी अनुसार पढने योग्य यह हैः–

ससै सोइ सिरसटि जिनि साजी सभना साहिबु एकु भइआ।।
सेवत रहे चितु जिन्ह का लागा आइआ तिन्ह का सफलु भइआ।।[5]
ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करमा आपणिआ।।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना।।[6]

पिता जी से व्यापर करने के लिए मिले 20 रुपयों को भूखे साधुओं को लंगर छकाने में लगा दिए। खुद पिता की मार खाई, यही गुरु नानक देव जी की जग को जीतने की विधि थी।

गुरु नानक देव जी ने कहा मुझे ऐसा जनेऊ पहना दो जो कभी ना टूटे तथा सदैव मेरे अंग संग रहे। ऐसे जनेऊ का रूप रंग स्वयं बताया हैः–

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गण्डी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई से पाडे घतु।।
ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ।।
धनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ।।[7]

लोगों को भरोसा हो गया कि गुरु नानक ने मानवता का दिल जीत लिया। गुरु जी ने ऐसे ही कई नैतिक मूल्यों का सुमेल करते हुए युग परिवर्तन करते गए, उन्होंने नया धर्म लोगों के सामने रखा तथा श्लोक गायाः–

सभो सूतकु भरमु है दूजै लगै जाइ।।
जमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ।।
खाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु स्मबाहि।।[8]
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ।।[9]

इसके साथ ही गुरु नानक जी ने स्त्री जाति का कल्याण कर दिया।

सज्जन ठग ने लोगों को ठग ठग कर दुखी कर रखा था। मानवता के कल्याण के लिए गुरु नानक ने अपनी जान खतरे में डालकर, उस सज्जन ठग के घर चले गये और रात वहीं बिताई, पर जीत तो सच की होनी थी गुरु जी के पास मौजूद थी। गुरु नानक जी के एक बोल ने ही उस ठग का हृदय परिवर्तन का दियाः–

ऊजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालडी मसु।।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सऊ धोवा तिसु।।
सजण सेई नालि मै चलदियां नालि चलन्हि।।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंनि।।[10]

सज्जन गुरु जी के बोल सुन कर उनके पैरों पर गिर गया। भले मनुष्य में परिवर्तित हो गया। कितने ही लोग लुटने से, क़त्ल होने से बच गए। गुरु बाबा की रहमत ने जगत को जीत लिया।

बाबा गुरु नानक हरिद्वार के मेले में पहुंचे। लोगों को अज्ञानता से निकल कर बताया कि हमारा कल्याण खेतों को पानी देने में है, परिश्रम करके फसल पैदा करने में है, सोच विचार कर रस्मों रिवाजों को परखना है। लोक हैरान हुए, लोगों ने गुरु नानक की बात को माना और साथ चल पड़े। गुरु नानक ने अपनी जान खतरे में डालकर नाटक खेला ऐसे ही उन्होंने कुरुक्षेत्र के मेले में मांस चर्चा करके बताया कि सत्य, धर्म, न्याय के लिए हिंसा–अहिंसा की बहस निर्मूल है। मांस हिंसा का सूचक है परन्तु धर्म न्याय के लिए अगर हिंसा करनी पड़े तो कोई नुकसान नहीं। कुरुक्षेत्र में ही श्री कृष्ण जी ने गीता का गायन करते हुए यही उपदेश दिया था।

गुरु नानक सम्पूर्ण जीवन लोगों को सुचेत करते हुए कहते हैं कि प्रभु–प्रेम, सिर हथेली पर रख कर मानवता की सेवा करना है। प्रभु–प्रेम मानवता को उलझनों एवं समस्याओं से निकालना है, जहाँ भय, जबरन धर्म और सभ्यता को त्यागने के लिए मजबूर हो गए। तब गुरु नानक जी ने फ़रमाया :–

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।।
धोती टिक्का तै जपमाली धानु मलेछां खाई।।
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरकां भाई।।[11]

गुरु नानक जी जादूगरों से जा मिले, उन्हें झूठा जादू छोड़कर सच्चा जादू सिखाने लगे। मानवता के कल्याण के लिए गुरु नानक सुमेरु पर्वत जा चढ़े तथा सिद्धों–योगियों को ललकारा और कहा,

"सिध छपि बैठे परबती कऊण जगति को पारि ऊतारा।"[12]

गुरु नानक देव जी ने सिद्धों को कहा कि आओ मिलकर सृष्टि के कल्याण का कार्य करें,

"बाबे आखिया नाथ जी। सचु चन्द्रमा कूडु अंधारा ।
कूडु अमावसि वरतिया हौं भालणि चढ़िया संसारा।"[13]

गुरु नानक मक्के, मदीना तथा बगदाद पहुँचे। कई तरह के कौतुक दिखाए, जिनको दिखाना खतरे से खली नहीं था। वहाँ पहुंचना भी बड़ा कठिन कार्य था– सच्ची नमाज पढ़ने का ढंग बताया, सच्चा मुसलमान कैसे बना जाता है, समझाया, सच्ची मस्जिद के बारे में बताया तथा कहा कि इस्लाम ने सच को सुना और माना। गुरु नानक ने पीर और फकीर बन कर समझाया,

"पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाऊ।।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा ख़ैर खुदाइ।।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवीं सिफति सनाइ।
करणी कलमां आखि कै ता मुसलमानु सदाइ।।[14]

तथा

मिहर मसीति, सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु ।।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु।।
करणी काबा सचु पीर कलमा करम निवाज।।

तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज।।[15]

बाबर को पाप की बारात लेकर भारत पर हल्ला बोलने, जुल्म तथा जबरदस्ती करने के खिलाफ गुरु नानक देव जी उसके सामने चट्टान की तरह खड़े होकर बाबर को जाकर बोले, मजलूमों की बात सुनने के लिए मजबूर किया। गुरु नानक बाबर के सामने शेर की तरह गरजते हुए बोले :–

"जैसी में आवै खसम की बाणी तैसडा करी गिआनु वे लालो।।
पाप की जंझ लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो।।
सरमु–धरमु दुई छपि खलोई कूडु फिरै परधानु वे लालो।।[16]

इन विचारों, सिद्धांतों के साथ गुरु नानक देव जी ने सम्पूर्ण मानवता का दिल जीत लिया, यही उनका जगत् को जीतना था। परन्तु इस सब के वास्ते गुरु नानक ने अपना सुख त्यागकर दुखों को गले लगाया। जीवन में बहुत सी मुश्किलों का सामना किया, विरोध सहे यह कोई तपस्या से कम नहीं था। यही था अपना आप गँवा कर कुल मानवता का दिल जीतना। इसके बाद गुरु नानक देव जी ने अपना स्थायी ठिकाना करतारपुर बसा लिया। सभी उनके पास आने लगे, हिन्दु, मुसलमान दोनों ही गुरु जी से शिक्षा लेते रहे। गुरु नानक देव जी के अंतिम समय तक दोनों ही धर्म के लोग उनके मुरीद बने रहे, क्योंकि गुरु नानक देव जी उनके लिए उनके गुरु थे, पीर थे, यही गुरु नानक देव जी की दिग्विजय थी।

अंत में भाई लहना जी ने गुरु जी का दिल जीत कर गुरु नानक का रूप हो गए, गुरु नानक की जोत बनकर सारी मानवता को उनका सन्देश देने के लिए तख्त दे गए और गुरुवाणी का फुरमान है,

"अवलि अलह नूर उपाइआ कुदरति के सब बंदे।।
एक नूर ते सभु जगु ऊपजिआ कअना भले को मंदे।।[17]

<u>सन्दर्भ सूची</u> :–

1. वारां, भाई गुरुदास, 1387
2. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, धर्म प्रचार कमेटी, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर साहिब, अंग 6
3. वही, अंग 722
4. वही, अंग 06
5. वही, अंग 432
6. वही, अंग 433
7. वही, अंग 471
8. वही, अंग 472
9. वही, अंग 473
10. वही, अंग 729
11. वही, अंग 471
12. वही, अंग 145
13. वही, अंग 145

14. वही, अंग 141
15. वही, अंग 140
16. वही, अंग 722
17. वही, अंग 1349

हिन्दी सन्त साहित्य में श्री गुरु नानक देव का योगदान

डॉ. राम बाबू*

भारत एक ऐसी पुण्यभूमि रही है जिसमें अनेक ऋषियों–मुनियों, भक्तों एवं सन्तों ने जन्म लिया है। वैसे तो 'सन्त' का सामान्य अर्थ साधु, सज्जन, सदाचारी या सत्य का ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है, किन्तु मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में सन्त शब्द निर्गुण साधकों या भक्त कवियों के लिए प्रयुक्त होता है। इन्हीं निर्गुण साधकों में गुरुनानक देव एक ऐसे महान सन्त हुए हैं जिन्होंने न केवल देश के विशाल जनसमुदाय का सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन किया अपितु सम्पूर्ण विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस लोक कल्याण हेतु उन्होंने 28 वर्ष की अवस्था में ही अपने व्यक्तिगत व सांसारिक सुखों को त्यागकर चतुर्दिक यात्राएँ की। उन्होने हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, प्रयाग, अयोध्या, वाराणसी, गया, पटना, कलकत्ता, चित्रकूट, ग्वालियर, झाँसी, मथुरा, दिल्ली, कुरुक्षेत्र, द्वारिकापुरी, सिंहलद्वीप, आसाम, मुल्तान, मक्का, मदीना, काबुल, कंधार, बगदाद, मिस्र एवं तुर्की इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया। जहाँ पर उनकी भेंट लगभग सभी धर्मों के पंड़ितों–पुरोहितों, सन्तों–महात्माओं एवं योगियों से हुई, जिनके विचारों एवं व्यवहारों को उन्होंने करीब से देखा। इसी दौरान उन्हें आम जन–जीवन में व्याप्त निराशा एवं जड़ता को देखने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। इसलिए उनके निराकरण हेतु उन्होंने अपने अमूल्य सुझाव दिये तथा उन्हें अपने अधिकार एवं कर्त्तव्यों हेतु सचेत किया। साथ ही लोगों के मन–मस्तिष्क में प्रेम, सद्भाव, करुणा, त्याग, परोपकार, सत्य एवं अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों का बीजवपन किया। जिसको रेखांकित करते हुए कुँवरपाल सिंह ने लिखा है– "गुरुनानक ने देश–विदेश की जितनी यात्राएँ कीं, शायद ही किसी सन्त अथवा भक्त कवि ने की हो। वे देश के हर तीर्थ–स्थल पर गये। उन्होंने स्वयं सब कुछ अपनी आँखों से देखा। संन्यासियों, वैरागियों, सूफियों, योगियों, पंडितों, मुल्ला और मौलवियों से बात की। श्रेष्ठ मानव समाज के लिए जो भी सूत्र उन्हें मिले, वे ग्रहण किए। उन्होंने भाईचारा, जनकल्याण, सत्य की खोज को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। धर्म के नाम पर फैले पाखण्ड़ों, बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया। द्वेष और घृणा के स्थान पर प्रेम और बन्धुत्व का संदेश दिया।"[1]

उन्होंने मनुष्य एवं समाज की सुन्दर छवि गढने हेतु अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग किया तथा अपने जीवनकाल में जो भी विचार अभिव्यक्त किये उनकी बानियों का संग्रह गुरु अर्जुनदेव ने 1604 ई० में 'ग्रन्थ साहिब' में किया। जिसका पूरा नाम 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' भी है। इसमें 19 भाग व 1430 पृष्ठ हैं। सिक्ख धर्म के लोग इस ग्रन्थ को इसलिए पूजनीय मानते हैं क्योंकि इसमें केवल सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों का ही नहीं अपितु समग्र जीवन दर्शन को विविध आयामों में उद्घाटित किया गया है। इसके अलावा उनकी प्रसिद्ध रचनाएं– जपुजी, रहिरास, आसादीवार, सोहिला भी मानी जाती जिनके

* हिन्दी विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

वर्ण्य विषय– परमात्मा, गुरु, ब्रह्म, माया, जीव, जगत, मन, भक्ति, ज्ञान, कर्म एवं योग की अवधारणा है। उनकी इन रचनाओं का मूल उद्देश्य जनता को सिर्फ उपदेश देना नहीं है बल्कि सही–गलत का रास्ता दिखाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु उन्होंने अपनी बानियों को माध्यम बनाया है। सचमुच उनकी बानियाँ उनके सच्चे हृदय का उद्‌गार हैं, उनमें लोक कल्याण की भावना निहित है।

उन्होंने समाजोद्धार हेतु समाज में व्याप्त कुरीतियों, मूर्तिपूजा एवं जातिप्रथा का ध्रुव विरोध किया है। तथा स्पष्ट शब्दों में कहा है–

"जाणहु जोति न पूछहु जाती आगे जाति न हे।"[2]

अर्थात् परमात्मा की ज्योति सभी प्राणियों में समझो, किसी से किसी की जाति मत पूछो क्योंकि पहले कोई जाति नहीं थी। काफी हद तक उनकी यह बात सच भी है क्योंकि इस जाति व्यवस्था के कारण ही आज हमारा सारा समाज विखंडित व ध्वस्त हो रहा है। वस्तुतः व्यक्ति जन्मना नहीं बल्कि कर्मणा श्रेष्ठ होता है। इसलिए नानक ने कहा है–

खसमु बिसारहि ते कम जाति, नानक नावै बाझु सनाती।"[3]

अर्थात् जातिगत श्रेष्ठता का अहंकार बेकार है। वास्तव में कोई व्यक्ति अपनी जाति के आधार पर श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी नहीं है। बल्कि वह भला तभी समझा जाता है, जब अच्छे कर्म करता है और परमात्मा के लेखे की प्रतिष्ठा करता है।

गुरुनानक ने तत्कालीन समाज में यह भी देखा कि हिन्दू एवं मुस्लिम अपने धर्म की उदार और सार्वभौमिक मान्यताओं को भुलाकर साम्प्रदायिकता के गड्‌ढे में धँसते जा रहे हैं तथा अपने को श्रेष्ठ बताकर आपस में लड़–झगड़ रहे हैं। इसलिए उन दोनों के बाह्याडम्बरों एवं पाखण्डों पर प्रहार करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

"गऊ बिराहमणा कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछा खाई।
अंतरि पूजा पडहि कतेबा संजमु तुरका भाई।
छोडिले पाखंडा।।"[4]

अर्थात् मुस्लिम लोग गाय और ब्राह्मणों पर कर लगाकर अपने राज्य को सुदृढ कर रहे हैं। दूसरी तरफ हिन्दू गाय के गोबर (गौरी–गणेश की मूर्ति बनाकर) के बल पर मुक्ति पाना चाहते हैं। भला यह बात कैसे संभव हो सकती है कि वे धोती पहनते हैं, तिलक लगाते हैं, माला जपते हैं, किन्तु धान तो म्लेछों के घर का ही खाते हैं। वे भीतर–भीतर तो पूजा करते हैं, किन्तु (मुसलमानों को खुश रखने के लिए) बाहर कुरान पढ़ते हैं और सारे आचरण तुरकों जैसे करते हैं। इसलिए व्यक्ति इन पाखंड़ों को छोडें, इनसे कोई लाभ होने वाला नहीं है।

इसी प्रकार उन्होंने उनकी मानसिक विकृतियों का पर्दाफाश करते हुए कहा है–

"माणस खाणे करहिं निवाज।
छुरी बगाइन तिन गलि ताग।"[5]

अर्थात् मनुष्य भक्षी (मुसलमान) नमाज पढ़ते हैं और जुल्म की छूरी चलाने वाले (हिन्दू) गले में यज्ञोपवीत धारण करते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि दोनों धर्म के वास्तविक रहस्य को नहीं जानते, बल्कि भ्रम के वशीभूत होकर तमाम तरह के ढोंग का आवरण किए रहते हैं। इसलिए वे इन दोनों को संकीर्ण भावना त्यागकर समन्वय,

सरलता, उदारता, विनम्रता एवं आड़म्बरहीन जीवन जीने का संदेश देते हैं। उनकी इस समन्वयकारी भावना को रेखांकित करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है– "नानकदेव समन्वयशील और उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनमें अद्‌भुत संगठन शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विद्यमान थी।"[6]

उन्होंने अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर यह बखूबी जान लिया था कि आड़म्बर करने या मंदिर–मस्जिद जाने से दुखों से मुक्ति नहीं मिलती, बल्कि वास्तविक शांति तो सच्चे मन से परमात्मा का स्मरण करने से ही प्राप्त होती है। इसलिए वे कहते हैं कि इस नश्वर शरीर को व्यर्थ में मत गँवाओ बल्कि ईश्वर में चित्त लगाओ–

"जिह घट सिमरन राम को सो नरु मुकता जानु।
तिहि नरु हरि अंतरु नहीं, नानक सची मानु।।"[7]

गुरुनानक देव व्यक्तियों की तामसिक वृत्तियों के नाश हेतु एवं उनमें श्रेष्ठ मानवीय गुणों के विकास हेतु सद्‌गुरु की अनिवार्यता सिद्ध की है। उनका मानना था कि बिना गुरु कृपा के मन कहीं टिकता नहीं, बल्कि बार–बार विचलित होता रहता है–

"बिन गुरु मनुआ न टिकै फिर–फिर जूनी पाई।"[8]

वस्तुतः कोई भी व्यक्ति भवसागर से तभी पार उतर पाता है, जब उसके पास गुरु का सहारा होता है, बिना गुरु की कृपा के लाख जतन करने के बावजूद भी उसे परमात्मा का साक्षात्कार संभव नहीं होता। इसलिए उन्होंने लोगों से कहा–

"बिनु गुर दाते कोई न पाए।
लख कोटि जे करम कमाए।"[9]

उनका मानना था कि गुरु का अनुग्रह तभी होता है, जब व्यक्ति का मन उनकी आज्ञा मानने हेतु तत्पर व आत्मसमर्पित होता है। इसलिए वे मन को समझाते हुए कहते हैं–

"नाचु रे मन गुरु कै आगै
गुरु के माणे नाचै ता सुख पावहि अन्तै।।[10]

अर्थात् ऐ मन तुम गुरु की आज्ञा मानकर उसके सामने नाचो, इससे तुम्हें परमानन्द की प्राप्ति होगी।

सचमुच नानक जी को गुरु के वचनों में अगाध श्रद्धा ही नहीं थी, अपितु इस बात का पूर्ण विश्वास भी था कि गुरु की महिमा अपरिमित व अपरम्पार है। उसके बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता। जिसका बखान करते हुए वे कहते हैं–

"गुरु की महिमा वेद न जाणहि।
तुछ मात सुणि सुणि बखाणहि।"[11]

इस प्रकार उन्होंने व्यक्ति के जीवन में सदगुरु की महत्ता सर्वोपरि माना है तथा उसे ईश्वर के समकक्ष स्थान देते हैं। उनकी इस गुरुभक्ति को रेखांकित करते हुए डॉ० विष्णुदत्त राकेश ने लिखा है– "वे पथप्रदर्शक गुरु को ही मानते हैं तथा कहते हैं कि वही जुगति बताते हैं, जिससे व्यक्ति का उद्धार हो। गुरु अपने आचरण एवं व्यवहार से शिष्य का शोधन करता है। शिष्य के लिए ऐसा महापुरुष परमात्मा से कम महत्व का नहीं है।"[12]

गुरुनानक के समय नारी की स्थिति बड़ी दयनीय व दुःखद थी। उसे विवशता, आत्मदमन, बलिदान एवं दासतापूर्वक जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। तत्कालीन शासक अपनी वासना तृप्ति हेतु स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करते थे चाहे वह स्त्री जिस

जाति या धर्म की हो। ऐसे दुष्कर्मी व पापी राजाओं की कुत्सित प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है–

"जिन सिर सोहनि पतिआ मांगी पाइ संधूर।
ते सिर काती मुंनी अन्हि गल बिचि आवै धूडि।
महला अन्दरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरी।
जदहु सीआ वी आहीआ लाडे सोहनि पासि।
तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोत सरीआ।।"[13]

अर्थात् जिन स्त्रियों के सिर पर पट्टियाँ सुशोभित थीं और उनकी माँग पर सिन्दूर सजाया जाता था। अब उनके बालों को कैंची से काट दिया गया तथा धूल उड़–उड़कर उनके गले में पहुँच रही थी। अब उन्हें घर के अन्दर या बाहर बैठने की अनुमति नहीं मिल पा रही थी। जब उनका विवाह हुआ था, तब तो उनके पति पास थे, परन्तु अब उनके गले से मोतियों की माला की लडियाँ टूट गयी हैं और गले में रस्सी पड़ी हुई है।

कहने का आशय है कि भारतीय समाज में स्त्रियाँ पूरी तरह से परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुयीं थीं। ऐसी पशुओं से भी बदतर ज़िंदगी जीने वाली व दुश्वारियों से परिपूर्ण नारी के प्रति गुरुनानक देव की पूरी संवेदना व सहानुभूति है। वे उसे समाज में आदर व सम्मान की हकदार मानते हैं, तथा कहते हैं–

"भंड जमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु बीआहु।
भंडहु हौवे दोसती भंडहु चलै राहु।
भंडु मुआ भंडु मालिए भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मन्दा आखीऐ जितु जंभहि राजानु।"[14]

अर्थात् स्त्री के द्वारा ही हम गर्भ में धारण किये जाते हैं, उसी से जन्म लेते हैं। उसी से हमारी सगाई और विवाह भी होता है। स्त्री के द्वारा ही हमारा अन्य लोगों से सम्बन्ध जुड़ता है और उससे ही इस जगत सृष्टि के उत्पत्ति का क्रम चलता है। एक स्त्री के मर जाने पर हम दूसरी स्त्री को खोजते हैं। भला बताओ ऐसी पवित्र स्त्री को हम बुरा क्यों कहते हैं, जिससे बड़े–बड़े राजा एवं महापुरुष पैदा होते हैं।

इस प्रकार उन्होंने लोगों को सदियों से उपेक्षित नारी के प्रति सत्कार करने की शिक्षा दी तथा उन्हें गौरवपूर्ण स्थान दिलाया। जिसकी प्रशंसा करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है– "जहाँ स्त्री के सम्मान का प्रश्न है, नानक समूची भक्ति–परम्परा से अलग हैं। शायद ही कोई संत या सगुणोपासक रहा हो, जिसने स्त्री की निन्दा न की हो। पर नानक कहते हैं कि जन्म देने वाली भी नारी है, पत्नी के रूप में भी नारी है, फिर उसकी अवमानना क्यों?।"[15]

गुरुनानक का समय राजनैतिक दृष्टि से काफी उथल–पुथल व लुंज–पुंज अवस्था में था। तत्कालीन आततायी शासक एवं सामन्त असहिष्णु होकर सामान्य जन के साथ अत्याचार कर रहे थे। जिनकी निर्ममता की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा है–

"राजे सिंह मुकदम कुत्ते।
जाई जगाइन बैठे सुते।।"[16]

अर्थात् राजा आराम से बैठे या सोये हुए व्यक्तियों को जगा देते हैं और शेर की भाँति उनका रक्त चूसते हैं तथा सामन्त कुत्तों की भाँति उन्हें नोच–नोच कर खाते हैं।

भला बताओ? जो राजा इस प्रकार का कसाई हो और सामन्त नीच कुत्ता हो, उनसे राज्य एवं प्रजा के उद्धार की आशा कैसे की जा सकती है। इसलिए नानक जी उनके इस कुत्सित प्रवृत्ति की घोर निंदा करते हैं और कहते हैं–

"जो रत लगै कपड़े जामा होई पलीतु
जो रत पीवहि माणसा, तिन किउ निरमल चीत।।"[17]

अर्थात् वस्त्रों पर रक्त के छीटे पड़ने पर वे गन्दे हो जाते हैं। पर जो लोग मनुष्यों का खून पीते हैं, वे भला निर्मल कैसे हो सकते हैं।

इस प्रकार उनकी दृष्टि में वही व्यक्ति मनुष्य कहलाने का अधिकारी है जिसके हृदय में ममता, दया, प्रेम, करुणा, सद्भाव, सदाचार, सत्य, अहिंसा एवं मानवता हो। किन्तु जिसके मन में दानवता है और जो दूसरों का हक छीनता है, उसे तो सुअर मारने एवं गौ हत्या का दोष लगता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट घोषण की है–

"हक पराइया नानका, उस सुअर उस गाइ।
गुरु पीर हामा ता भरे जा मुरदार न खाइ।।"[18]

अर्थात् दूसरों का हक छीनने वाले मुसलमान को सुअर मारने का तथा हिन्दू को गोवध का पाप लगता है। गुरु का सच्चा मित्र तो वही होता है, जो दूसरों को उनके अधिकारों से वंचित न करे।

इस प्रकार नानक समाज में शोषित एवं पीडित के साथ हो रहे अन्याय व अत्याचार का मुखर विरोध करते हैं। तथा घृणा एवं नफरत के स्थान पर प्रेम की ऐसी बेल बोते हैं, जिसमें आपसी सद्भाव व मानव–मानव एक समान का भाव है। उनके इस सामाजिक सत्कार्य को रेखांकित करते हुए कुँवरपाल सिंह ने लिखा है– "नानक सभी पीडितों के साथ हैं। वे ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसमें ऊँच–नीच, पाखण्ड़, धार्मिक द्वेष और भेदभाव न हो।"[19]

वस्तुतः यह बात काफी हद तक सच भी है कि जिस समाज में भय, आतंक, ईर्ष्या–द्वेष एवं ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं होता उसका विकास अवश्य संभावी होता है।

उनके काव्य एवं जीवन की सफलता का मूलमंत्र भी यही है कि उन्होंने जिस सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व आदर्शात्मक मार्ग को चुना है, वैसा ही आचरण आजीवन करते रहें हैं। हमें उनकी कथनी और करनी में अन्तर देखने को नहीं मिलता। वे कर्म त्याग करने को नहीं, बल्कि कर्मों के विधिवत्–सम्पादन पर बल देते हैं। उनका मानना था– 'मन से राम हाथ से काम।' इसलिए वे कहते हैं–

"मनमहि चितवउ चितबनी उदय करहु उठि नीत।"[20]

अर्थात् हे प्राणी तू मन में परमात्मा का ध्यान तो कर, परन्तु परिश्रम करके कुछ अर्जित कर और सुख भोग। वैसे भी कहा जाता है कि बिना कर्म किए कुछ उपलब्ध नहीं होता है।

गुरुनानक देव का संत साहित्य में योगदान इस बात के लिए भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उसकी भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध तथा सुरुचिपूर्ण है। उन्होंने भाषा एवं शैली के माध्यम से विचारों का ऐसा संगुंफन किया है, जो देखते ही बनता है, जिसे पढ़कर पाठक यह कह उठता है कि वाह क्या बात लिखी है। चूँकि उन्हें हिन्दी, संस्कृत, फारसी एवं पंजाबी का अच्छा ज्ञान था, इसलिए उनकी रचनाओं में भाषा वैविध्य दृष्टव्य होता है, फिर भी उनकी वाणियों में ऐसी कथन शैली व संदेश विद्यमान है जिससे सन्तों

की मूल प्रवृत्तियों को आसानी से समझा जा सकता है। यही उनके काव्य की महत्ता और प्रभावशीलता का गुण है।

सारतः हम कह सकते हैं कि उनके काव्य की सन्त साहित्य में छवि वैविध्यपूर्ण है। उनका सृजन प्रजातांत्रिक और लोकचेतना से अनुप्रमाणित है। वे लोक से शक्ति ग्रहण कर व्यक्ति को मानवतावादी विकल्प थमा देते हैं। उन्होंने लोगों को मानव कल्याण से विश्व कल्याण की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की है। उन्होंने जिस तरह से समाज को गर्त में ले जानी वाली अंधभक्ति, अंधश्रद्धा, रूढ़ियों एवं पाखण्ड़ों का खण्ड़न किया है, वह स्तुत्य है। वे लोगों को सत्यासत्य जाँचने–परखने का विवेक प्रदान करते हैं। सचमुच उनका उद्देश्य न तो कविता करना था और न ही ख्याति प्राप्त करना था, बल्कि विशुद्ध आचरण द्वारा जनजीवन में चेतना लाना तथा विकृतियों को दूर करना था। ताकि स्वस्थ व कल्याणकारी समाज की स्थापना संभव हो सके। वाकई उन्होंने जिन मानवीय व उदात्त गुणों द्वारा समाज को समुन्नत बनाने का प्रयास किया था, वह आज भी प्रासंगिक है। शायद यही कारण है कि आज भी हम उन्हें महान क्रान्तिदर्शी, प्रचण्ड रूढ़िविरोधी एवं अद्‌भुत युगपुरुष के नाम से जानते हैं। सन्त साहित्य में उनका योगदान अक्षुण्ण है और उनकी वाणी अब भी लोगों के लिए प्रेरणास्रोत व अमृत सदृश है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह कुँवरपाल – सम्पादक, भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 203
2. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 662–63
3. मिश्र डॉ० जयराम, नानक वाणी, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1988, पृष्ठ संख्या 231
4. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 471
5. वही, पृष्ठ संख्या 471
6. डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली, मयूर पेपरबैक्स, इकत्तीसवाँ संस्करण 2005, पृष्ठ 130
7. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 1428
8. वही, पृष्ठ संख्या 313
9. वही, पृष्ठ संख्या 1057
10. वही, पृष्ठ संख्या 506
11. वही, पृष्ठ संख्या 1078
12. शर्मा डॉ० नित्यानन्द एवं राकेश डॉ० विष्णुदत्त, हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, अलीगढ़, भारत प्रकाशन मन्दिर, संस्करण 1985, पृष्ठ संख्या 61–62
13. मिश्र डॉ० जयराम, नानकवाणी, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1988, पृष्ठ संख्या 292
14. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 473

15. सिंह बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, सातवीं आवृत्ति 2014, पृष्ठ संख्या 94
16. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 1288
17. वही, पृष्ठ संख्या 402
18. सिंह रतन जग्गी – सम्पादक, गुरुनानक रचनावली, पटियाला, भाषा विभाग, पृष्ठ संख्या 110
19. सिंह कुँवरपाल – सम्पादक, भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 202
20. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तरन तारण संस्करण 1927, पृष्ठ संख्या 519

श्री गुरु नानक देव की प्रगतिशील विचारधारा और आधुनिक हिंदी कविता

डॉ. सुनीता शर्मा *

किसी भी समाज के विकास एवं उन्नयन में सुदृढ़ एवं प्रगतिशील विचारधारा तथा उदात्त जीवन मूल्यों की महत्ती भूमिका होती है। प्रगतिशील विचारधारा से प्रेरित समाज अर्थात् ऐसा समाज जहाँ किसी प्रकार की रूढ़ीवादी मान्यताओं, परंपराओं तथा धर्म और जाति के बंधनों का घेरा न हो, समानता और न्याय का परिवेश हो तथा मानवता की सत्ता बनी रहे। यह प्रगतिशीलता मानव विवेक को जागरुक बनाती है तथा उसके भीतर हित और अहितकारी परिस्थितियों को जानने व समझने की सामर्थ्यता उत्पन्न करती है। यह विचारधारा उदात्त जीवन मूल्यों का विकास कर समाज और संस्कृति को नवचेतना की ओर अग्रसर करती है, जिससे सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ और समृद्ध बनती है। जब कभी विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सामाजिक व्यवस्था को हानि पहुँचाती है तथा समाज से सत्य, अहिंसा और न्यायिक मूल्यों का अपघटन होने लगता है तब मानव धर्म की स्थापना एवं जीवनमूल्यों के उत्थान हेतु एक ऐसे युगपुरुष का अवतरण होता है, जो समाज और संस्कृति में एक नवीन चेतना जागृत कर मानव धर्म की स्थापना करता है। श्री गुरु नानक देव का आविर्भाव इसी उद्देश्य के साथ हुआ। गुरु नानक देव ने वैश्विक समाज में सत्य, न्याय और अहिंसा की पृष्ठभूमि पर आधारित एक ऐसी नवीन प्रगतिशील विचारधारा का प्रतिपादन किया जो विश्वमानवता का संदेश धारण किए थी। विश्व के इतिहास में गुरु नानक देव युगनिर्माता एवं क्रांतिद्रष्टा के रूप में विख्यात हैं। वे सही मायनों में मानवता के पक्षधर, समाज सुधारक एवं वैश्विक संवाद के प्रणेता थे। उनकी प्रगतिशील विचारधारा ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश में व्याप्त विकृतियों एवं विद्रूपताओं का विरोध किया तथा व्यक्ति को मानसिक सुख, शांति, न्याय, सत्य, समृद्धि एवं स्वतंत्रता पूर्ण जीवनयापन हेतु प्रेरित किया। जिस समय गुरु नानक देव जी का जन्म हुआ उस समय भारतीय परिवेश गहरी उथल–पुथल के दौर से गुजर रहा था। यह धरती विदेशी आक्रमणकारियों के आतंक से त्रस्त थी। विश्वगुरु कहलाने वाला देश स्वयं अपने ही मार्ग से विचलित होता जा रहा था। समस्त देशवासी आपसी फूट व वैमनस्य का शिकार हो रहे थे। वह भारतीय संस्कृति, जहाँ मानव धर्म को सबसे ऊपर माना जाता था, अधर्म और कर्मकांडों के गर्त में धंसती जा रही थी। पूरा समाज जाति, वर्ण और सांप्रदायिक भेदभाव की बेदि पर स्वाह होने की कगार पर था। हिंदू सभ्यता और संस्कृति भावात्मक और कलात्मक दोनों पक्षों से विश्रृंखलित हो रही थी। ऐसे संकट के समय में समाज और संस्कृति की सुप्त चेतना को जागृत करने तथा उसके अवघटित हो रहे मूल्यों के संरक्षण में गुरु नानक देव जी ने अद्वितीय भूमिका अदा की। उन्होंने समता और क्रांति के अग्रदूत बनकर समाज का मार्गदर्शन किया तथा समाज को पतन की ओर ले जाने वाली रुढ़िवादी मान्यताओं को निर्भीक स्वर से नकारा। अपनी बाल्यावस्था से ही उन्होंने संपूर्ण मानव जाति को विवेकयुक्त प्रगतिशीलता के मार्ग की

* सहायक प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, दिग्गल

ओर अग्रसर किया तथा आजीवन इसी लोककल्याण की भावना से जुड़ी विचारधारा को प्रसारित करते रहे। नरेंद्र पाठक गुरु नानक के जन्म के समय पुरोहितों की भविष्यवाणी का उद्धरण देत हुए लिखते हैं कि यह बालक अत्यंत प्रभावशाली है तथा बड़ा होकर यह सारे संसार को नवचेतना की ओर ले जाएगा। "इस बालक के सिर पर छत्र झूलेगा, हिंदू और मुसलमान दोनों ही इसकी पूजा करेंगे। यहाँ तक कि पशु, पक्षी और प्रकृति के जड़ पदार्थ भी इसके नाम का उच्चारण करेंगे।"[1] गुरु नानक के बचपन की यह भविष्यवाणी भविष्य में सही साबित हुई। उन्होंने सही अर्थों में मानव समाज के भीतर एक नवचेतना का विकास किया तथा उन्हें अंधकूप से निकाल कर ज्ञान के सुनहरे प्रकाश में ले आए। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी पहलुओं में विद्यमान शोषण, अन्याय और असमानता का कड़ा विरोध किया तथा समानता, मानव एकता और विश्वबंधुत्व की भावना को सर्वोपरि बताया। सुशील बाला अपने एक लेख में गुरु नानक की मानवधर्मिता एवं प्रगतिशीलता के संदर्भ में लिखती हैं, "कबीर और गुरु नानक की वाणी जर्जर, अनुपयोगी, खंडहर बन चुकी रूढ़ियों, गली–सड़ी मान्यताओं, निरर्थक नियमों, विकृत मूल्यों, अंधविश्वासों, दूषित मनोवृत्तियों, टूटी आस्थाओं पर प्रहार के साथ–साथ सत्य की दृढ़ता पर आधारित है। चाहे वह साधना के क्षेत्र में हो या समाज के क्षेत्र में अर्थात् इन संतों की वाणी आध्यात्मिक प्रतिपाद्य के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों व आदर्शों से सम्पृक्त हैं।"[2] स्पष्टतः कहा जा सकता है कि गुरु नानक देव की विचारधारा समाज में फैली कुरीतियों एवं विद्रूपताओं को दूर करने तथा मानव मात्र के प्रति प्रेम, अंहिंसा, करुणा, दया, सेवाभाव जैसे सार्वभौम जीवन मूल्यों को स्थापित करने की भावना से पोषित थी। गुरु नानक मानव जाति की दुर्दशा को सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने मानवता को क्रूर शासकों के पंजों से छुड़वाने तथा मनुष्य–मनुष्य के बीच बढ़ती दूरी को कम करने का हर संभव प्रयास किया। डॉ. नगेंद्र, गुरु नानक को मानववाद और सर्वधर्म समभाव का नेता मानते हुए लिखते हैं, "लोकनायक रूप में उन्होंने समस्त उत्तर भारत में चेतना जगाकर जन–जागृति का मंत्र फूंका और अन्याय तथा अत्याचार के विरूद्ध जनता को संगठित किया। आध्यात्मिक गुरु के रूप में उन्होंने निराश जनता की चेतना में आत्मविश्वास और ईश्वर विश्वास की भावना की पुनः प्रतिष्ठा की। गुरु नानक व्यक्ति नहीं थे, संस्था शब्द भी उनके संपूर्ण कृतित्व का अर्थ वहन नहीं कर सकता। वे एक समग्र देशकाल की चेतना के प्रतीक थे।"[3] गुरु नानक की महानता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि उन्होंने केवल भारतीय जनमानस ही नहीं अपितु देश–विदेशों की यात्राएँ कर वैश्विक स्तर पर मानव चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। एक ओर वे समस्त प्राणीजगत को आध्यात्मिक उपलब्धि की ओर ले गए तो दूसरी ओर अपने समाज की ज्वलंत समस्याओं और विद्रूपताओं को भी उन्होंने उपेक्षित नहीं किया। उन्होंने सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों को समाज से दूर करने हेतु ज्ञान का ऐसा दीपक प्रज्जवलित किया जिसके प्रकाश में जनमानस सत्य और असत्य में भेद कर एक स्वस्थ और समभाव पूर्ण मानव समाज की स्थापना कर सके। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा साम्प्रदायिकता और मानवताविरोधी शक्तियों को ललकारा, समाज के ठेकेदारों की शोषणकारी मानसिकता को खुली चुनौती दी, जाति और धर्म के बंधनों में बंधे समाज को मुक्त करवाने का प्रयास किया, अर्थ और काम के मोहपाश में जकड़ी स्वार्थी मानसिकताओं को कड़े स्वर में फटकार लगाई तथा वैश्विक समता पर आधारित समाज

के नवनिर्माण की नींव रखी। डॉ. जयराम मिश्र के शब्दों में, "वे क्रांतिकारी और दूरदर्शी समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज के उन रोगों का निदान किया, जो उसे खाए जा रहे थे। निदान मात्र करने से ही संतुष्ट न होकर, उन्होंने उसकी औषधि बना दी। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का जिस प्रकार समाधान किया, वे उन्नत, सभ्य और सुसंस्कृत देशों के आदर्शों की कसौटी पर खरी उतरती है।"[4] स्पष्टतः कहा जा सकता है कि गुरु नानक देव सही अर्थों में शांति और न्याय के दूत थे। उनकी वाणी की महत्ता वर्तमान युग में भी उतनी ही प्रासंगिक व अनुकरणीय है, जितनी उनके युग में थी। उनके व्यक्तित्व और प्रगतिशील चेतना युक्त वाणी की गूंज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र सुनी जा सकती है। डॉ. धर्मेंद्र कुमार के अनुसार, "गुरु नानक देव जी एक विशेष प्रयोजन के लिए संसार में आए थे और वह प्रयोजन था संसार के लोगों को जीवन जीने का सही मार्ग दिखलाना। अतः मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से अछूता नहीं रहा।"[5]

यदि बात की जाए साहित्यिक क्षेत्र की तो साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध रहता है। किसी भी युगनिर्माता के व्यक्तित्व और कृतित्व की अमिट छाप तत्कालीन साहित्य पर ही नहीं अपितु आगे आने वाले कई युगों के साहित्य पर देखी जा सकती है। प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने युग की विघटनकारी परिस्थितियों एवं समस्याओं के मूल को पहचानने तथा उनके निराकरण हेतु अपनी रचनाओं के माध्यम से गुहार लगाता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काव्य में प्रगतिशील चेतना एवं सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य बोध स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रगतिशील विचारधारा से सम्पृक्त इन कावियों ने जिन विषयों को अपना आधार बनाया उनका मूल मंत्र गुरु नानक देव के जीवन दर्शन एवं वाणी में सदियों पहले विद्यमान था। मानव की एकता और समता का जो संदेश गुरु नानक ने दिया उससे तत्कालिक युग में एक नवीन क्रांतिकारी चेतना का उदय हुआ। आधुनिक युग के प्रगतिशील विचारधारा को लेकर चलने वाले कवियों की रचनाओं में भी समाज और संस्कृति में व्याप्त शोषण, हिंसा, अत्याचार, अन्याय, अनाचार और भेदभाव जैसी कुरीतियों के खिलाफ विद्रोह और क्रांति का स्वर देखने को मिलता है। गुरु नानक की भांति इन कवियों ने भी निर्भीक होकर समाज और राजनीति के तथाकथित कर्णधारों को फटकार लगाई है जो निरीह जनता का शोषण करना ही अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। इन कवियों ने भी सत्य, प्रेम, अहिंसा और न्यायिक मूल्यों की स्थापना हेतु विश्वमानवतावाद का संदेश दिया है। गुरु नानक आदि संतों की वाणी की महत्ता प्रतिपादित करते हुए डॉ. नगेंद्र आधुनिक युग के कवियों पर उनके प्रभाव के विषय में लिखते हैं, "अपने युग में परिव्याप्त धार्मिक–सामाजिक अनेकता में एकता का अन्वेषण एवं निरूपण करते हुए उन्होंने सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता आदि पर तीव्र प्रहार किया है और मानव मात्र को भक्ति का अधिकारी बताया है....आज के युग के कवि भी मूल मानवीय चेतना के सर्वधर्म समभाव का आधार मानते हैं और सच्चा मनुष्य बनने का आह्वान करते हैं।"[6] आधुनिक युग का कवि अपने युग की परिस्थितियों एवं परिवेशगत समस्याओं के प्रति पूर्णतः जागरुक है तथा यही जागृति वह जनमानस के भीतर लाना चाहता है। इन कवियों की प्रगतिशील चेतना जीवन के प्रति आस्था, नवीन परिवर्तनों के प्रति सजगता, पुरातन जीर्ण व्यवस्था के उपचार तथा उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना के साथ प्रतिबद्धता रखती है। डॉ. नरेंद्र सिंह के शब्दों में, "प्रगतिशील कवि भारत के मुक्ति संघर्ष

को विश्वव्यापी मुक्ति संघर्ष से जोड़कर देखता है।"[7] अतः प्रगतिशीलता समसामायिक परिस्थितियों के प्रति सजगता का दूसरा नाम कहा जा सकता है। आधुनिक हिंदी काव्य का उद्‌भव भी उसी तरह की संकटपूर्ण एवं संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में हुआ जिस तरह की परिस्थितियाँ गुरु नानक के समय थी। इस समय अंग्रेजी शासन की कुटिलता एवं क्रूर नीतियों से बढ़ती दासता, आर्थिक शोषण की विकरालता, भीषण युद्धों के कारण उपजी विध्वंसता, आंतरिक फूट और वैमनस्य, अंधविश्वासों और कुरीतियों में पिसता हुआ भारतीय समाज न्याय और शांति की मांग कर रहा था। परिणामस्वरूप इस युग के कवि मनुष्य की मुक्ति, स्वतंत्रता और समानता हेतु आवाज उठाने लगे तथा अपनी लेखनी के माध्यम जनमानस के भीतर नवचेतना जागृत करने में जुट गए। गुरु नानक की प्रगतिशील चेतना तथा उनकी वाणी की महत्ता का आधुनिक कवियों की कविताओं के साथ प्रस्तुतीकरण आधुनिक युग में उनकी प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

गुरु नानक देव जी ने अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों एवं राजनेताओं की कुत्सित मानसिकताओं का कड़ा विरोध किया है। उनका समय राजनीतिक दृष्टि से उथल–पुथल का समय था। विदेशी आक्रमणकारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करते जा रहे थे। इन आक्रमणों का सबसे बड़ा कारण देशी राजाओं का आपसी कलह था। बाबर और हुमाँयु जैसे मुगल शासको द्वारा यहाँ सत्ता स्थापित करना तथा देश की निरीह जनता का शोषण करना, यह सभी परिस्थितियाँ गुरु नानक ने अपनी आँखो से देखी। वे स्वयं इन राजनीतिक विषमताओं के सहभोक्ता थे। उन्होंने क्रूर शासकों और दमनकारी राजनेताओं की विद्रूप एवं स्वार्थी नीतियों के प्रति आम जनता में विद्रोह और क्रांति का स्वर फूंका। वे इन क्रूर शासकों को बाघ की तरह हिंसक तथा उनके सामंतों को कुत्तों की भांति लालची एवं स्वार्थी की श्रृंखला मंक रखते हुए कहते हैं,

राजे सिंह मुकद्दम कुत्ते। जाइ लगाइन बैठे सुत्ते।
चाकर नहंदा पाइन्हि घाउ, रघु घ्रितु कुतिहो चटि पाहु।
जिथे जिआं होसी सार, नकीं बडो लाइत बार।[8]

ऐसे शासक शांत जनता का शोषण करते हैं तथा पैरों के नाखूनों से उन्हें घायल कर पागल कुत्तों की तरह उनका लहू चाटते रहते हैं। कहने का भाव है कि आम जनता को खून के आँसू रुलाना ही इनका स्वार्थ साधता है। गुरु नानक तत्कालीन परिवेश की दुर्दशा के प्रति चिंतित हैं। वे कहते हैं इस युग में प्रजा का पालनकर्ता ही कसाई का रूप धारण कर चुका है। धर्म और अधर्म का किसी को कोई बोध नहीं रह गया है। सत्य रुपी चंद्रमा कुत्सित मानसिकताओं की अमावस्या के तले अपना प्रकाश खो रहा है। वे इस बात के प्रति अत्यंत चिंतित हैं कि इस अंधकार युग के गर्त से किस तरह मानव जाति को उबारा जा सकता हैः–

कलि काती राजे कसाई, धरमु पंखु करि उड़रिआ।
कूडू अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाहीं कह चड़िआ।।
हउ भलि बिकुंनी होई। औघेरे राहु न कोई।।
विचि हुमे करि दुखु होई। कहु नानक किनि विधि गति होई।।[9]

आधुनिक हिंदी काव्य के अनेक कवियों ने गुरु नानक की भांति अपने समाज की राजनीतिक विसंगतियों को अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी है। आधुनिक युग भी राजनीतिक दृष्टि से अव्यवस्था और अशांति का युग रहा है। समस्त राजनीतिक दल

सत्ता हासिल करते ही आम जनता के प्रति अपने कर्तव्यों को विस्मृत कर स्वार्थसिद्धि में लीन हो जाते हैं। ऐसे स्वार्थलोलुप सत्ताधारियों को आधुनिक युग के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से फटकार लगाई है। भारतेंदु हरिशचंद्र ने 'भारत–दूर्दशा' नामक रचना में राजनेताओं की स्वार्थपरता तथा अमानवीय शोषणकारी नीतियों पर खुलकर प्रहार किया है। वे लिखते हैः–

अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात है इहै इति ख्वारी[10]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला भी गुरु नानक देव जैसी वाणी में अपनी कविता में राजनेताओं तथा उनके सामंतों की की स्वार्थलोलुप मानसिकता को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं,

राजे ने अपनी रखवाली की, किला बनाकर रहा
बड़ी–बड़ी फौजें तैयार रखी।
चापलूस कितने सामंत आए। मतलब की लकड़ी पकड़े
.....
लौह बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर
खून की नदी बही।[11]

राजनीतिक विकृतियों एवं शासकों की कुटिलता पर निर्भीक स्वर से लिखने वाले प्रगतिशील विचारधारा के कवियों में बाबा नागार्जुन का नाम प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। उनकी कविता वास्तविक अर्थों में राजनीतिज्ञों की कलुषित स्वार्थी मानसिकताओं का यथार्थ उद्घाटन करते हुए जनमानस के भीतर एक नवीन चेतना फूंकने का कार्य करती है। नागार्जुन गुरु नानक की भांति ही शोषण और दमन पर आधारित विकृत राजनीतिक दुरव्यवस्था का यथार्थ वर्णन करते हुए लिखते हैं,

हाँ, हम ढोंगी हैं प्रथम श्रेणी के
आत्मवंचक....पर–प्रतारक....बगुलाधर्मी
यानी धोखबाज
जी हाँ, हम धोखेबाज हैं
जी हाँ, हम ठग हैं...झूठे हैं
न अहिंसा में हमारा विश्वास है
मन वचन कर्म हमारा कुछ भी स्वच्छ नहीं है[12]

उपरोक्त काव्य पंक्तियों से देश से तथाकथित कर्णधारों की मानसिकता की छवि बिल्कुल साफ दिखाई देती है। जब–जब नागार्जुन ने यह महसूस किया कि राजनीतिज्ञ आम जनता के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं तब–तब वे जनता की आवाज बनकर उठ खड़े हुए और इन अव्यवस्थाओं का कड़े स्वर में विरोध किया। वे लिखते हैं,

निश्चय राज बदलना होगा शोषक नेताशाही का
पदलोलुपता दलबंदी का भ्रष्टाचार तबाही का।[13]

नागार्जुन की ही भांति गजानन माधव मुक्तबोध भी राजनीति और उसमें विद्यमान भ्रष्टाचार का अत्यंत प्रभावशाली एवं यथार्थपरक चित्रण करते हैं। वे भूल–गलती नामक कविता में भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र की दमनकारी नीतियों का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि इस भ्रष्ट तंत्र के शाही दरबार में क्रूर तानाशाह सिंहासन पर विराजमान है। वह मानव

की सभी अच्छाईयों को कुचलकर उनका शोषण करने में आनंद का अनुभव कर रहा है। यह तानाशाह अपने स्वार्थों की बेदि पर मानवता की हर ख्वाहिश को स्वाह करने में जुटा है। मुक्तिबोध के शब्दों में,

भूल–गलती
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक
आँखें चिलकती है नुकीले तेज पत्थर सी।
खड़ी है सिर झुकाए, सब कतारें
बेजुंबा बेबस सलाम में।[14]

तानाशाह के आतंक से डरी–सहमी जनता के भीतर जागृति एवं विवेकशीलता का विकास करना ही प्रगतिशील विचारधारा का उद्देश्य रहा। इसी उद्देश्य को केंद्र में रखते हुए केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ भी राजनीतिक परवशता के प्रति जनमानस की चेतना को झकझोरने का कार्य करती हैं। वे राजनीतिक परिवेश की विसंगतियों को जनता के सामने लाते हैं तथा उन्हें एक निर्णायक संघर्ष हेतु जागृत करते है। वे कहते हैं कि इन खद्दरधारी देश के कर्णधारों के अनाचारों से मातृभूमि का हृदय छलनी होता जा रहा है:–

देश की छाती दरकते देखता हूँ
थान खद्दर के लपेटे स्वार्थियों को
पेट पूजा की कमाई में जुता देखता हूँ।[15]

संभवतः कहा जा सकता है कि आधुनिक युग का कवि अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों की विद्रूपताओं के प्रति पूर्णतः सजग है तथा आम जन को सचेत करने का प्रयास कर रहा है। गुरु नानक देव की भाँति इन कवियों का लक्ष्य भी राजनीतिक क्रूरता और दमन का विरोध करते हुए सामान्य जन को इनके फैलाए भ्रमजाल से निकालना है तथा उनके भीतर की सशक्त मानव चेतना को जागृत कर उन्हें जनशक्ति का एहसास दिलाना है।

राजनीतिक व्यवस्था समाज को व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है। गुरु नानक देव के समय सामाजिक व्यवस्था भी पूर्णतः अस्त–व्यस्त थी। समाज जाति और संप्रदायों के बंधनों में जकड़ा हुआ था। सभ्यता और संस्कृति के सार्थक मूल्यों का अवघटन हो चुका था। झूठ और धोखे के व्यापार ने पूर्ण रूप से अपनी पैठ जमा ली थी। हिंदू धर्म में अनुदारता, असहिष्णुता और संकीर्णता की धारणा बढ़ती जा रही थी। लोग वास्तविक कर्म को भुलाकर निंदा और भोग–विलासिता को जीवनमूल्य मान बैठे थे। संकीर्ण मानसिकता और रुढ़िग्रस्ता के कारण समाज में वर्गभेद सबसे बड़ी समस्या बन चुका था। दलित और नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय होती जा रही थी। इन सब सामाजिक विकृतियों की भयावहता को समझते हुए गुरु नानक देव ने समाज के सही मार्गदर्शन का बीड़ा उठाया। उन्होंने जाति–पाति एवं वर्णव्यवस्था का विरोध करते हुए एक ऐसे समाज की नींव रखी जहाँ किसी तरह का भेदभाव न हो तथा मानव धर्म को ही श्रेष्ठ माना जाए। वे मानते थे कि जाति के आधार पर कोई छोटा या बड़ा नहीं होता, व्यक्ति को उसके कर्मों से पहचाना जाना चाहिए:

जाति–पाति नह पुछीऐं सच घरु लेहु बताई।
सा जाति सा पाति है जोहे करम कमाई।[16]

गुरु नानक कहते हैं कि वे सदैव उन लोगों के साथ हैं जिन्हें समाज नीच कहकर पुकारता है क्योंकि ईश्वर की कृपा वहीं होती है जहाँ इनकी देखभाल की जाती है।

नीचा अंदर नीची जाति नीची हूं अति नीचु।
नानकु तिनकै संगि साथी बडिआ सिउ किआ रीस।।
जित्थे नीच समालीअनि तिथे नदरि तेरी बखसीस।[17]

गुरु नानक द्वारा प्रसारित इस वर्गविहीन समाज की धारणा की आधुनिक युग में अत्यधिक प्रासंगिकता है। इस युग के कवियों ने भी जाति और वर्ण के आधार पर भेदभाव को नकारा है तथा एक ऐसे समाज के निर्माण की नींव रखी है जहाँ समानता और न्याय का शासन होगा। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी काव्य रचनाओं में एक ऐसे समाज की छवि उभारी है जो समता और मानवता की पक्षधर है। वे जाति, वर्ण, संप्रदाय के आधार पर किए जाने वाले भेदभावों को स्वस्थ समाज के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा मानते हैः–

जाति धर्म संप्रदाय का
नहीं भेद–व्यवधान यहाँ, सबका स्वागत, सबका आदर
सबका सम सम्मान यहाँ।
राम, रहीम, बुद्ध, ईसा का, सुलभ एक सा ध्यान यहाँ
भिन्न–भिन्न भव संस्कृतियों के गुण का गौरव गान यहाँ।[18]

इसी तरह के सुखद समाज एवं समृद्ध संस्कृति की कामना करते हुए सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी कविताओं में दलित एवं समाज में उपेक्षित मानव के लिए प्रभु करुणा की याचना की हैः–

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आए, प्रभू तुम्हारी शक्ति वरुणा।[19]

सुमित्रानंदन पंत अपनी कविता 'ग्राम दृष्टि' में जाति और वर्गभेद के आगे मानवता को सर्वोपरि सिद्ध करते हुए लिखते हैं,

सोच रहा हूँ जग पर मानव जीवन जन मन से
रूढ़ि नहीं, रीति नहीं, जाति वर्ण केवल भ्रम
जन जन में है जीव, जीव जीवन में सब जन हैं सम।[20]

आधुनिक नवचेतना के कवि कंवल भारती ने भी अपनी कविताओं द्वारा जाति के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाई तथा समतामूलक समाज का संदेश दिया है वे लिखते हैं

आइए, इस नऐ वर्ष में
बहिष्कार करें
ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद का
इससे जन्मे जातिवाद और फासीवाद का।[21]

संभवतः आधुनिक युग की कविता जातिगत भेदभाव के विरूद्ध खड़ी नजर आती है तथा मानमात्र के उन्नयन हेतु कल्याणकारी मूल्यों की स्थापना करती है।

गुरु नानक के समय समाज को खोखला बनाने वाली दूसरी कुरीति थी, मूल्यहीनता। लोग वास्तविक जीवन मूल्यों को भूलाकर स्वार्थलोलुपता, अहंकार, झूठ और निंदा को मूल्यबोध स्वीकारते जा रहे थे। गुरु नानक तत्कालीन समाज की वास्तविक झांकी प्रस्तुत करते हुए कहते हैः–

कला होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु।
कडु बोलि–बोलि भउकणा चूका धरमु वीचारु।
.....
रनां होईयां बोधीआ पुरस होए सईआद।
सीलु संजमु सुच भंनी खाणा खाजु अहाजु।
सरमु गइआ घर आपणै पति उठि चली नालि।[22]

अर्थात् मनुष्य सभी तरह के लिहाज को परे रखकर कुत्ते की भांति लालची होता जा रहा है। पुरुष और स्त्री दोनों ही शील और पवित्रता का त्याग कर चुके हैं। अतः मानव मूल्यों के पथ से विघटित जनमानस को सही राह पर लाने का दायित्व गुरु नानक देव ने बखूबी निभाया। डॉ. महीप सिंह के शब्दों में, "गुरु नानक ऐसे लोगों को क्षमा नहीं करते जिनकी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता और ऐशपरस्ती के कारण देश की ऐसी दुर्दशा हुई।"[23] इसी तरह की धारणा आधुनिक युग में भी परिलक्षित होती है जहाँ जनमानस को स्वार्थलोलुपता के गर्त से उबारने की गुहार लगाई गई है। मैथिलीशरण गुप्त 'मनुष्यता' कविता में लिखते हैः–

यह पशु–प्रवृत्ति है कि आपस में चरे
वही मनुष्य है जो कि मनुष्य के लिए मरे।[24]

निराला की निम्नलिखित काव्यपंक्तियों में स्वार्थ को गहन अंधकार का कारक माना गया हैः–

गहन है यह अंधकारा
स्वार्थ के अवगुंठनों से
हुआ है लुंठन हमारा।[25]

सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के कवि दिनकर मानव जाति को सचेत करते हुए लिखते हैं कि यदि उन्होंने स्वार्थ का यह भाव नहीं त्यागा तो यही उनके विनाश का कारण बन सकता हैः–

आदमी अत्यधिक सुखों के लोभ से ग्रस्त है
यही लोभ उसे मारेगा
मनुष्य और किसी से नहीं
अपने अविष्कार से हारेगा।[26]

जनकवि नागार्जुन स्वार्थ की बेदि पर स्वाह होते सत्य की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैः–

सत्य को लकवा मार गया है
वह लंबे काठ की तरह पड़ा रहता है
सारा दिन, सारी रात।[27]

गुरु नानक देव ने तत्कालीन समाज में नारी की शोचनीय दशा के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उसके महत्व को प्रतिपादित किया है। बाबर के समय स्त्रियों पर होने

वाले अत्याचारों की वे मार्मिक व्याख्या करते हैं साथ ही विधवाओं की सामाजिक स्थिति का भी करुणा पूर्ण चित्रण करते हैं। वे कहते हैं कि जिस नारी से जीवन का हर पहलु जुड़ा होता है उसके बारे में भला–बुरा क्यों कहा जाए। उनके शब्दों मेः–

भंडि जमीए भंडि निमीए भंडि मंगणु वीहाहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलीए राहु।
भंडु मुआ भंडु भालीए भंडि होवै बंधानु।
सो किउं मंदा आखिए जितु जंमहि राजान।
भंडहु ही भंडु उपजै भंडै बाझू न कोई।[28]

नानक की भांति ही आधुनिक युग के कवियों ने नारी की महत्ता को समझते हुए पुरातन रुढ़ियों से उसकी मुक्ति को आवाज दी है। उन्हें समानता और न्याय दिलाने हेतु समाज सुधारक कवियों ने सुविचारित चिंतन किया है। निराला के काव्याभिव्यक्ति मेः–

तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा, पत्थर, की निकालो फिर गोगा जल की धारा
गृह गृह की पार्वती, पुनः सत्य सुंदर शिव को संवारती
उर उर की बनो आरती।[29]

पंत की निम्नलिखित काव्यापंक्तियाँ नारी मुक्ति का घोषणापत्र प्रतीत होती हैः–

मुक्त करो नारी को, चिर बंदिनी नारी को
युग युग की निर्मल धारा से जननी, सखि, प्यारी को।[30]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी मुक्ति का संघर्ष और अधिक व्यापक हो गया तथा नारी के स्वाभिमान और समानिधिकारों को अधिक बल दिया जाने लगा। नागार्जुन 'भूमिजा' कविता में लिखते हैं,

नर–नारी में मर्यादा का बोध
सम–सम होंगे सम–सम होगा न्याय
सम–सम होंगे विद्या–बुद्धि विवेक।[31]

इस तरह मध्यकाल की भांति आधुनिक युग में भी समाज और साहित्य में नारी की महत्ता को पूर्ण अभिव्यक्ति दी गई जिससे उसके भीतर एक नवीन प्रगतिशील चेतना का संचार हुआ।

गुरु नानक के समय धार्मिक परिवेश पूरी तरह रुढ़िग्रस्त और जर्जर हो चुका था। धर्म का वास्तविक स्वरुप समाप्त हो गया था तथा उसके नाम पर पर मिथ्याचार और बाहरी आडंबर ही शेष रह गया था। धार्मिक ठेकेदारों ने धर्म को व्यापार बनाकर भोली–भाली जनता को लूटना प्रारंभ कर दिया। आस्था और विश्वास के नाम पर रुढ़ियाँ और अंधविश्वास को बढ़ावा दिया जा रहा था। गुरु नानक ने धर्म के व्यापारियों को लताड़ते हुए उनके द्वारा किए जाने वाले धार्मिक आडंबरों, मिथ्याचारों और रुढ़िवादी अंधभक्ति का विरोध किया। वे धर्म के नाम पर फैलाई जाने वाली कुप्रथाओं का विरोध करते हुए लिखते हैः–

गउ बिराहमण कउ करु लावहु गोरखि तरणु न जाई।
धोती टिका तैं जपमाली धानु मल्लेछां खाई।
माणस खाने करहि निवाज। छुरि बगाइनि तिन गलि ताग।
तिन धरहि बिराहमण पूरहि नाव। उना भी आवहि मोई साद।
कुड़ी रासी कूड़ा वापारु। कुडू बोलि करहि आहारु।

सरम धरम का डेरा दूरि। नानक कुड रहिआ भरपूरि।
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा। चडके उपरि किसे न जाणा।
देके चउका कडि कार। उपरि आइ बैठे कुडिआर।[32]

हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदायों में धार्मिक अनाचार और कर्मकांडों को बढ़ावा देने वालों की कथनी और करनी का भांडाफोड़ करते हुए नानक कहते हैः–

कादी कुडू बोली मलु खाइ। ब्राहम्णु नावैं जीवा घाइ।[33]

इस तरह गुरु नानक ने समाज में धर्म के विकृत होते स्वरुप को संवारने का कार्य किया तथा मन का शुद्धता और पवित्रता पर बल दिया

प्रत्येक युग में धर्म समाज और राजनीति को व्यापक फलक पर प्रभावित करता है। आधुनिक युग में जब धर्म का स्वरुप कट्टरता और अंधविश्वासों की ओट में विकृत होने लगा तथा धार्मिक आचरण धीरे–धीरे आडंबरों में परिवर्तित होने लगा जब इस युग के प्रगतिशील कवियों ने धार्मिक परिवेश को शुद्ध व निर्मल बनाने हेतु अपनी लेखनी उठाई। मैथिलीशरण गुप्त अंधविश्वास और भाग्यवाद की धारणा के स्थान पर कर्मवाद की महत्ता को स्थापित करते हुए लिखते हैः–

करके विधिवाद न खेद करो।
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो।
बनता बस उद्यम ही विधि है।
मिलती जिससे सुख की निधि है।[34]

सुमित्रानंदन पंत भी ऐसे समाज की बात करते हैं जहाँ किसी प्रकार की अंधभक्ति तथा धार्मिक उत्पात न हो बल्कि जीवनास्था का वातावरण होः–

जिससे जीवन मिले शक्ति
टूटे भय, संशय, अंधभक्ति
मैं वह प्रकाश बन सकूं नाथ[35]

दिनकर भी निराला की भांति कर्म को महत्त्व देते हुए कहते हैः–

स्वर्ग की जो कल्पना है व्यर्थ क्यों कहते उसे तुम?
धर्म बतलाता नहीं संधान इसका, स्वर्ग का तुम आप अविष्कार कर लो।[36]

नानक की भांति ओम प्रकाश वाल्मीकि धार्मिक ठेकेदारों का कड़े शब्दों में विरोध करते हुए लिखते हैः–

नहीं नहाउंगा ऐसी किसी गंगा में
जहाँ पंडे की गिद्ध नजरें गड़ी हों
अस्थियों के बीच रखे सिक्कों और दक्षिणा के रुपयों पर।[37]

केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविता में धार्मिक राजगुरुओं की स्वार्थपरता और पक्षपातपूर्ण मानसिकता का चित्रण करते हुए लिखते हैः–

राजगुरुओं को मुनाफाखोरों को आशीष देते, सौ तरह के कमकरों को दुष्ट कह कह कर शाप देते प्राण लेते देखता हूँ।[38]

कुंवर नारायण का नचिकेता धार्मिक सामग्री तथा आस्था के नाम पर मिथ्याचारों का विरोध करते हुए वैचारिक स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानता है। कुवंर नारायण दिखावे के लिए किए गए धार्मिक अनुष्ठानों तथा जीव हत्या का कड़ा विरोध करते हुए लिखते हैः–

नहीं चाहिए वह विश्वास जिसकी चरम परिणति हत्या हो।

मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ
अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक।[39]

संभवतः नानक की भांति इन कवियों की धारणा थी कि अंधानुगमन व्यक्ति के जीवन के सारतत्त्व को समाप्त कर देता है जिससे वह विसंगतियों का शिकार होता है। जीवन के सारतत्त्व को विवेकशीलता द्वारा ही वचाया जा सकता है।

जिस तरह गुरु नानक ने राजनीति, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण में अद्वितीय भूमिका अदा की उसी तरह उन्होंने आर्थिक रुप से पीड़ित और पददलित लोगों के जीवन सुधार और उनके उत्थान हेतु आजीवन कार्य किया। वे सही अर्थों में मानवता के पोषक थे। डॉ. जयराम मिश्र के अनुसार, "उन्होंने अपनी वाणी में जनता की करुणा, देश के दुर्भाग्य, अत्याचारियों के अत्याचार, नृशंस राजाओं की पाश्विक वृत्ति का निरुपण किया।"[40] गुरु नानक ने लालो की मेहनत की कमाई से दूध की धारें तथा भागों जैसे पूंजीवादी शोषकों की कमाई में से खून की धारें निकालते हुए श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनका स्वर वर्तमान साम्यवादी समाज का बीज मंत्र कहा जा सकता है। गुरमुख निहालसिंह के शब्दों में, "गुरु ने एक ऐसी जातिविहीन तथा वर्गविहीन समाज के निर्माण की चेष्टा की जिसमें कोई शोषण न हो, और सभी समान समझे जाए। उन्होंने आध्यात्मिकता और समाजवाद में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।"[41] नानक की समतामूलक प्रगतिशील विचारधारा से युगों–युगों तक जीवन का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित रहा जिसका उदाहरण आधुनिक हिंदी काव्य के माध्यम से देखा जा सकता है। इस युग के कवियों ने भी मनुष्य को हर तरह के शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न, दासता और उपनिवेशीवादी चंगुलों से मुक्त करवाने का प्रयास किया है। आधुनिक भारत के कवियों की सुधारवादी विचारधारा मध्ययुगीन भक्ति आंदोलनो से ही प्रभावित रही है। संभवतः कहा जा सकता है कि वर्तमान परिवेश में नानक की प्रगतिशील विचारधारा का अनुसरण किया जाए तो एक नवचेतना संपन्न शांतिप्रिय मानव समाज की स्थापना की जा सकती है।

संदर्भ सूचीः–

1. नरेंद्र पाठक, गुरु नानक देव, दिल्लीःसन्मार्ग प्रकाशन, 1970, पृ. 16
2. सुशील बाला, नानक और कबीर का आँखन देखा (लेख), पंचनाद, शमीम शर्मा(सं.), नई दिल्लीःवाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 147
3. उद्धरण, पंचनाद, शमीम शर्मा(सं.), नई दिल्लीःवाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 155
4. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 820
5. डॉ. धर्मेंद्र कुमार, हिंदी काव्य में गुरु नानक : व्यक्तित्व तथा कृतित्व, नई दिल्ली : एडुक्रियशन पब्लिशिंग, 2018, पृ. भूमिका
6. डॉ. नगेंद्र (सं.), भारतीय काव्य में सर्वधर्म समभाव, नई दिल्लीःवाणी प्रकाशन, 2001, पृ. भूमिका
7. डॉ. नरेंद्र सिंह, आधुनिक साहित्य चिंतन और कुछ विशिष्ट साहित्यकार, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 1990, पृ. 34
8. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 766
9. वही, पृ.191

10. www-kavitakosh-org/kk/भारतेंदु–हरिश्चंद्र
11. www-kavitakosh-org/kk/सूर्यकांत–त्रिपाठी–निराला
12. www-kavitakosh-org/kk/नागार्जुन
13. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग–2, नई दिल्लीःराजकमल प्रकाशन, 2003, पृ.56
14. www-kavitakosh-org/kk/गजानन–माधव–मुक्तिबोध
15. www-kavitakosh-org/kk/केदारनाथ–अग्रवाल
16. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 783
17. वही, पृ.102
18. www-kavitakosh-org/kk//मैथिलीशरण–गुप्त
19. www-kavitakosh-org/kk/सूर्यकांत–त्रिपाठी–निराला
20. www-kavitakosh-org/kk/समित्रानंदनपंत
21. वही।
22. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 737
23. डॉ. महीप सिंह, गुरु नानकः साधना मार्ग और विद्रोह की भूमिका (लेख), पंचनाद, शमीम शर्मा(सं.), नई दिल्लीःवाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 24
24. www-kavitakosh-org/kk/मैथिलीशरण–गुप्त
25. www-kavitakosh-org/kk/सूर्यकांत–त्रिपाठी–निराला
26. www-kavitakosh-org/kk/रामधारी–सिंह–दिनकर
27. www-kavitakosh-org/kk/नागार्जुन
28. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 353
29. www-kavitakosh-org/kk/सूर्यकांत–त्रिपाठी–निराला
30. www-kavitakosh-org/kk/समित्रानंदनपंत
31. www-kavitakosh-org/kk/नागार्जुन
32. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 348
33. वही, पृ.414
34. www-kavitakosh-org/kk/मैथिलीशरण–गुप्त
35. www-kavitakosh-org/kk/समित्रानंदनपंत
36. www-kavitakosh-org/kk/रामधारी–सिंह–दिनकर
37. www-kavitakosh-org/kk/ओम–प्रकाश–वाल्मीकि
38. www-kavitakosh-org/kk/कोदारनाथ–अग्रवाल
39. कुवंर नारायण, आत्मजयी, नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1965, पृ.8
40. डॉ. जयराम मिश्र, नानक वाणी, इलाहाबादःमित्र प्रकाशन, पृ. 821
41. गुरमुख निहालसिंह, गुरु नानकःजीवनी, युग एवं शिक्षाएँ, नई दिल्लीःनेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1970, पृ.51

श्री गुरु नानक वाणी में सृष्टि–परिकल्पना

डॉ. नरेन्द्र कुमार*

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'' श्रीमद्भागवत गीता की भाँति अनेक भारतीय धार्मिक ग्रंथ एवं आध्यात्मिक आंदोलन इस विषय में आस्था रखते हैं कि जब विश्व में अधर्म का तांडव होता है तब परमात्मा स्वयं धरती पर अवतरित होते हैं एवं पुनः धर्म की स्थापना करते हैं। बेशक भारतीय आध्यात्मिक चिंतन में कुछ ऐसे भी धर्म अथवा धार्मिक संप्रदाय हुए हैं जो अवतारवाद को नहीं मानते, सिक्ख धर्म उनमें से एक है। परन्तु यह भी सत्य है कि इस प्रकार की आध्यात्मिक विचारधारा भी वे अवश्य स्वीकार करते हैं कि जब मानवीय–मूल्यों में गिरावट आती है और सम्पूर्ण मानवता ही संकट में पड़ जाती है, तब ईश्वर अपनी किसी महान् शख्सियत को मानवता के उद्धार के लिए धरती पर भेजते हैं जो अपने दैवीय संदेश के द्वारा मानव–सभ्यता को पतन के गढ्ढे से निकालता है। सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरु नानक देव जी भी ऐसी ही प्रतिभा के धनी हैं। भाई गुरदास जी गुरु नानक देव जी को मानवता की भलाई के लिए ईश्वर के द्वारा भेजे गए देवदूत ही मानते हैं –

सुणी पुकार दातार प्रभु। गुरु नानक जग माहि पठाइया।[1]

भाई गुरदास जी पुनः लिखते हैं–

सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानण होआ।
जिउँ कर सूरज निकलिआ तारे छपि अंधेर पलोआ।[2]

अर्थात् आहत मानव की पुकार सुनकर ही ईश्वर ने श्री गुरु नानक देव जी को धरती पर अवतरित किया। गुरु नानक देव जी का जन्म 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उस समय भारतीय समाज मुस्लिम शासकों के अधीन था। हिन्दु जाति मुस्लिम हकूमत से अत्यधिक आहत थी। उन्हें धार्मिक रूप से प्रताड़ित किया जाता था। उनका सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन भी पतन की ओर अग्रसर था। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि मुस्लिम संप्रदाय के लोग भी सत्ता से अधिक प्रसन्न नहीं थे। ऐसी परिस्थितियों में गुरु नानक देव जी का जन्म सामाजिक सुधार एवं परिवर्तन की दृष्टि से एक क्रांतिकारी घटना मानी जाती है। परन्तु उनके द्वारा रचित आधार ग्रथों का अध्ययन करने के पश्चात् यह आभासित होता है कि उनकी मूल वृत्ति ईश्वरीय सत्ता की ओर उन्मुख थी। इस विषय में 'नानक वाणी' का गहन अध्ययन करने वाले सुरिन्दर सिंह कोहली लिखते हैं– ''जन्म साखी के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बालावस्था से ही उन्हें परमात्मा की लग्न लगी हुई थी और वे हर समय उसकी तलाश में व्याकुल रहते थे। मालूम होता है कि उन्होंने काफी समय ईश्वर की खोज में लगाया। यही कारण है कि पांधा और मौलवी उन्हें दुनियावी शिक्षा देने में असमर्थ रहे।''[3]

कहने का भाव यह है कि साहित्यिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पर भले ही गुरु नानक देव जी की शिक्षाओं एवं स्थापनाओं को सामाजिक एवं धार्मिक परिवर्तन हेतु एक क्रांतिकारी विचारधारा के रूप में अधिक लिया जाता है परन्तु मूल अवस्था में वे एक गूढ़

*सहायक प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), सांध्याकालीन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

एवं गम्भीर आध्यात्मिक दार्शनिक थे। बेशक उनकी समाज के प्रति जो विचारधारा है वह बहुत उच्चकोटि की एवं अतुलनीय है, परन्तु उन्हें रहस्यवादी एवं आध्यात्मवादी दार्शनिक कहना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। उनकी सम्पूर्ण बाणी में ईश्वर, जीव, माया, सृष्टि, जगत्, प्रकृति आदि से संबंधित अनेक रहस्यवादी विचारों के संसार का प्रसार है। उनके द्वारा अनुभूत रहस्य का वर्णन इतना परिपक्व एवं सूक्ष्म है कि डॉ. मनमोहन सिंह इससे प्रभावित होकर लिखते हैं– ''गुरु नानक काव्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए जहाँ एक तरफ वेदों, उपनिषदों, गीता और सूत्र ग्रंथों– नारद भक्ति सूत्र और शाण्डिल्य भक्ति सूत्र आदि संबंधी जानकारी प्राप्त करने की जरूरत है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेशित शंकराचार्य, उनके अद्वैतवाद और उनकी प्रतिक्रिया में उपजे चार प्रबल भक्ति संप्रदाय और उनके प्रवर्त्तक आचार्य– विशिष्टाद्वैतवादी श्री संप्रदाय और रामानुजाचार्य, द्वैतवादी ब्रह्म संप्रदाय और माध्वाचार्य, द्वैताद्वैतवादी सनकादि संप्रदाय और निंबार्काचार्य, रुद्र संप्रदाय और विष्णु स्वामी–वारकरी संप्रदाय और ज्ञानेश्वर, रामानंद और लगभग गुरु नानक कालीन शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य और अचिंतयभेदाभेदवादी चैत्नय महाप्रभु के विषय में अपेक्षित ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान और साधना के प्रवाह को समझे बिना गुरु नानक काव्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को समझ पाना असंभव है।''[4]

ईश्वर क्या है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? उसकी क्या स्थिति है? जीव क्या है? सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इसका निर्माण किसने किया? माया का सृष्टि में क्या स्थान है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर के विश्लेषण से नानक–बाणी सराबोर है। सृष्टि की परिकल्पना का विषय नानक–बाणी में विशेष रूप से आकर्षण का केन्द्र है, क्योंकि अधिकांश भारतीय दार्शनिक चिंतन परम्परा आध्यात्मिक रूप से सृष्टि (जगत्, कुदरत, प्रकृति) को मिथ्या, अविद्या एवं माया–जन्य मानता है एवं परमसत्ता की प्राप्ति में चराचर जगत् को सबसे बड़ी बाधा स्वीकार करता है। परन्तु गुरु नानक देव जी की बाणी में सृष्टि (कुदरत, प्रकृति) को मिथ्या नहीं माना गया है और न ही इसे भ्रम कहा गया है। अपितु उन्होंने दृष्ट सृष्टि को स्थान–स्थान पर सत्य कहा है। गुरु नानक देव जी ने सृष्टि के लिए माया एवं मिथ्या शब्द भी प्रयुक्त किया है परन्तु वहाँ उनका तात्पर्य यह है कि सृष्टि अनादि अथवा शाश्वत नहीं है। यह नश्वर एवं क्षणभंगुर है। परन्तु यह मिथ्या भी नहीं है अपितु उस सत्य (अकाल पुरुष) की ही भाँति सत्य है। इस विषय में गुरु नानक देव जी लिखते हैं–

सचे तेरे खंड सचे ब्रहमण्ड। सचे तेरे लोअ सच्चे आकार।।
सचे तेरे करणे सरब बीचार। सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु।।
सच तेरा हुकमु सचा फुरमाणु। सचा तेरा करमु सचा नीसाणु।।
सचे तुथु आखहि लख करोड़ि। सचे सभि ताणि सचै सभि जोरि।।
सची तेरी सिफति सची सलाह। सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह।।[5]

श्री गुरु नानक देव जी ने दार्शनिक रूप से चराचर जगत् के माया एवं मिथ्यातत्व पर सूक्ष्म एवं व्यापक दोनों दृष्टियों से विचार किया है। गुरु जी का कथन है कि अकाल पुरुष ने स्वयं माया की रचना की है और उसने स्वयं जीव को इसमें डाल दिया है। परन्तु माया संबंधी धारणा में गुरु नानक देव जी के विचार प्राचीन भारतीय अध्यात्म एवं दार्शनिक विचारधारा से कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। इस विषय में डॉ. जयराम

मिश्र लिखते हैं–''वेदांतियों की भाँति गुरु नानक देव माया का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि माया की रचना भी परमात्मा ने ही की है। उनका मानना है कि निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत् में वही अपना खेल बरत रहा है। तीनों गुण एवं उससे संबंधित माया की रचना भी उसी परमात्मा ने की है। मोह की वृद्धि के साधन भी उसी ने उत्पन्न किए हैं।''[6] माया की उत्पत्ति के विषय में गुरु नानक देव जी लिखते हैं–

तुथु आपे जगतु उपाइकै तुथु आपै धंधे लाइआ।
मोह ठगउली पाइकै तुथु आपहु जगतु खुआइआ।[7]

उन्होंने माया को वह शक्ति घोषित की है जो जीव को उसके मूल (अकाल पुरुष) से विमुख कर देती है। गुरु नानक देव जी ने अपनी रचना 'आसा दी वार' में माया को 'बुरी सास' की संज्ञा दी है। अपनी बाणी में अनेक जगहों पर गुरु नानक देव जी ने मिथ्या एवं माया शब्द को मनुष्य के दुनियावी वस्तुएँ (कुदरत 'प्रकृति' से विमुख), क्रिया–कलापों एवं इन्द्रियों के संदर्भ में प्रयुक्त किया है और इन्द्रियों के वशीभूत मनुष्य एवं वस्तुओं के लिए मिथ्या (कूड़ु) यानी (भ्रम, असत्य) शब्द का प्रयोग किया है। 'नानक बाणी' में इस विषय में अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं जैसे–

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु।।
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु।
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रुपु अपारु।।
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु।
कूड़ु कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु।।[8]

वस्तुतः भारतीय दार्शनिक चिंतन परम्परा में सृष्टि की रचना के संबंध में मुख्यतः दो प्रकार की दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार सृष्टि परम सत्ता चैतन्य अलौकिक तत्व की रचना है। इसे आत्मवादी, आध्यात्मवादी या आदर्शवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है। दूसरा दृष्टिकोण यथार्थ को सष्टि का मूल कारण स्वीकार करता है। इसे हम भौतिकवादी दृष्टिकोण कह सकते हैं। यह भी सत्य है कि प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपरा आध्यात्मवादी एवं आत्मवादी अधिक रही है। ईश्वर एवं जीव की भाँति उन्होंने सृष्टि, जगत् एवं प्रकृति को भी अध्यात्म एवं ब्रह्म तत्व के साकार रूप में स्वीकार किया है। परन्तु इस सुदृढ़ दार्शनिक परंपरा में अनेक सम्प्रदायों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं एवं ईश्वर, जीव, सृष्टि, जगत्, आदि के पक्ष में इनके भिन्न–भिन्न मत प्रचलित हैं। ''ऋग्वेद में प्रजापति, विश्वकर्मा और त्वष्टा सर्वोच्च देवताओं के रूप में वर्णित हुए हैं। ऋग्वेद में प्रजापति को अद्वितीय अधीश्वर एवं अखिल जगत् का स्रष्टा तथा पालक एवं इन्द्रादि देवताओं का निर्माण करने वाला तथा उन्हें तत् तत् पदों पर स्थापित करने वाला कहा है। ऋग्वेद में प्रजापति एवं विश्वकर्मा की ही तरह त्वष्टा को भी सर्वोच्च देवता का रूप दिया गया है। त्वष्टा के संबंध में कहा गया है कि वे द्यावा पृथिवी एवं संसार के समस्त प्राणियों के स्रष्टा हैं।''9 शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के प्रतिपादन के द्वारा केवल आत्मा एवं ब्रह्म की सत्यता तथा जगत् के मिथ्यातत्व का समर्थन किया है।

ब्रह्मसत्यं जगत्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः[10]

जहाँ शंकराचार्य द्वारा अद्वैतवाद में जगत् के स्वरूप का विवेचन करने के लिए मायावाद सिद्धांत की अवधारणा की गई है, वही सृष्टि–परिकल्पना के विषय में योगवासिष्ठ का प्रमुख सिद्धांत 'कल्पनावाद' है। ''कल्पनावाद के सिद्धांत के अनुरूप समस्त जगत् कल्पना मात्र है। जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति काल का त्रिविध जगत् मन–के–मनन से ही निर्मित है।....पदार्थों को कल्पनामात्र सिद्ध करते हुए योगवासिष्ठ में कहा गया है कि जिस प्रकार बालक को प्रेत न होते हुए भी प्रतीत होता है, उसी प्रकार पृथिव्यादि पदार्थ असत् होते हुए सत् के समान प्रतीत होते हैं।.... भौतिक शब्द और अर्थ दोनों ही शशश्रृंग के समान पूर्णतया असत् हैं।''[11] गीता में जगत् की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि ''परमात्मा माया शक्ति के द्वारा जगत् का कारण है। परमात्मा से पथक् जगत् के मिथ्यातत्व का संकेत भी गीता में स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। सप्तम अध्याय में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त जगत् का कारण और कुछ नहीं है। यह जगत् मुझमें उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार कि सूत्र में मणियाँ अनुस्यूत रहती हैं।''[12] जहाँ भारतीय दार्शनिक परंपरा में जगत् को परम सत्ता की रचना मानने वाले सिद्धांत उपस्थित हैं वहीं वे संप्रदाये भी अस्तित्व में हैं जो यह मानते हैं कि जगत्, प्रकृ ति, सृष्टि किसी अज्ञात सत्ता की रचना नहीं अपितु यह अनादि है।

चार्वाक, जैनमत और बुद्धमत अपने–अपने दृष्टिकोण से यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि की रचना किसी अन्य सत्ता ने नहीं की है। ''चार्वाक सृष्टि का कारक किसी दैवीय सत्ता के बजाये निम्नलिखित चार तत्त्वों को मानता है–पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि। ये चार पदार्थ अपने–आप अस्तित्व में आए। इनकी रचना का अन्य कोई आधार नहीं है। यही चार पदार्थ आगे चल कर सृष्टि–रचना के आधार बने। चार्वाक जगत् उसे कहता है जिसका ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अध्ययन हो सके। चार्वाक पाँचवे पदार्थ 'आकाश' के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता क्योंकि 'आकाश' 'कुछ नहीं' है। 'कुछ नहीं' ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ में नहीं आ सकता, क्योंकि विश्लेषण उसी का हो सकता है जो 'कुछ है'। आकाश पदार्थ नहीं इस लिए इसका अस्तित्व नहीं।''[13] ''जैन और बुद्ध मत सृष्टि–रचना का कारण किसी अलौकिक शक्ति को मानने से इंकार करते हैं। जगत् जैसे वर्तमान में है– युगों से ऐसा ही है। न इसका कभी नाश हुआ है और न ही कभी किसी ने इसकी सृजना की है। इसका संसार 'नित्य' है। इस पक्ष से यह बहुत समृद्ध है। इसमें स्वरूप परिवर्तन का आन्तरिक गुण है।''[14] इनका मानना है कि कुदरत अनादि है।

प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में सृष्टि उत्पत्ति, पालनहार एवं संहारक के रूप में त्रि–देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की परिकल्पना भी साकार होती है। ये ऋग्वेद में प्रजापति, विश्वकर्मा और त्वष्टा आदि उच्चकोटि के देवता रूप में विद्यमान् हैं। परन्तु गुरु नानक देव जी सृष्टि का सृजक और कर्ता किसी अज्ञात सत्ता को मानते हैं जिसे वे अकाल–पुरुष कहते हैं। इनका कथन है कि उस अकाल–पुरुष ने इस सृष्टि की रचना की है और वह अपनी इस रचना से अति–प्रसन्न है। वह ही सृष्टि (जो उस सत्य की ही भाँति सत्य है) का सृजन करता है, देख–भाल करता है, परखता है और जब चाहे इसे समेट भी लेता है। –

करि करि वेखै सिरजणहार। नानक सचे की साची कार।।[15]

'नानक बाणी' में सृष्टि–रचना, इसके पालन एवं संहार आदि किसी भी कार्य के लिए देवताओं को विशुद्ध रूप से कारण–कार्य रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। गुरु

नानक देव जी लिखते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं संहार जैसे कार्य में अकाल पुरुष किसी से कोई विचार तक नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि–रचना मूल रूप से परमसत्ता की स्वयं सृजित रचना है।

नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु।[16]
पुछि न साजे पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ।
आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ।।[17]
आपे कुदरति साजि कै आपे करे बीचारु।[18]

परन्तु 'जपुजी साहिब' (जो उनकी बाणी का मूल मंत्र है) में उन्होंने सृष्टि का निर्माता, पोषक एवं संहारक जिन्हें स्वीकार किया है वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश यानी शिव ही हैं। उन्होंने इन तीनों देवताओं को माया की त्रिगुणात्मक शक्ति माना है। परन्तु इन तीनों सत्ताओं की निर्माता शक्ति स्वयं उस अकाल पुरुष के अधीन है। इस लिए ये तीनों दैवीय सत्ताएँ भी उस परमसत्ता के आदेशानुसार ही कार्य करती हैं। इस विषय में 'नानक बाणी' में दर्ज है कि–

एका माई जुगति विआई। तिनि चेले परवाण।।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।[19]

अर्थात् गुरु नानक देव जी ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उत्पत्ति का उद्‌गम उस परमसत्ता को स्वीकार किया है एवं उनका कथन है कि ऐसे अनेक प्रकाशमान् एवं दैवीय सत्ताओं से यह ब्रह्माण्ड भरा हुआ है, जिनकी कोई गिनती नहीं है, उन सबका रचनाकार भी वह एक अकाल पुरुष है।

जब यह कहा गया है कि उस अकाल–पुरुष ने सृष्टि की रचना की है तो यह सिद्ध करने की अवश्यकता शेष नहीं रहती की पहले सृष्टि अथवा जगत् का अस्तित्व नहीं था। यह पूर्व ही सिद्ध है। पहले केवल अकाल पुरुष स्वयं थे।

कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होए लख दरिआउ।।[20]
जो किछु पाइआ सु एका बार।।[21]

अर्थात् उस अकाल पुरुष के एक हुक्म से ही सारी सृष्टि का पसार हो गया और लाखों सागर उमड़ उठे। गुरु नानक देव जी लिखते हैं कि उस असीम सत्ता ने जो कुछ भी प्राप्त करना था वह सभी कुछ एक बार (एक हुक्म) में ही पा लिया। गुरु नानक देव जी ने सृष्टि सृजन क्रम का सूक्ष्मता एवं व्यापकता दोनों दृष्टियों से वर्णन किया है। उनका कथन है कि उस सत्य (अकाल पुरुष) से पहले–पहल वायु अस्तित्व में आई और फिर वायु से जल बना, जल से त्रि–भुवन यानी सारी सृष्टि की रचना हुई जिसके कण–कण में उस सत्य का वास है।

साचे ते पवना भइआ पवनै ते जल होई।
जल ते त्रिभवनु साजिआ घटि घटि जोति समोइ।[22]

गुरु नानक बाणी में यह भी दर्ज है कि ईश्वर (अकाल पुरुष) भी जिन स्थितियों में मौजूद है आरम्भ में वैसा नहीं था। 'नानक बाणी' में परमसत्ता द्वारा स्वयं की सृजना करना एवं सृष्टि–रचना संबंधी एक पंक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसन डिठो चाऊ।[23]

अर्थात् उस अकाल पुरुष ने अपने–आप को निर्मित किया और स्वयं ही अपने नाम की रचना की। उसके पश्चात् उस नाम स्वरूप परमसत्ता ने सृष्टि (कुदरत) की रचना की और उसमें आसन लगाकर चाव से तमाशा देखता है। कहने का भाव है उस परमसत्ता ने व्यापकता से सृष्टि को ग्रहण कर लिया और स्वयं सभी कुछ होते हुए देखता है। इस विषय में गुरु नानक बाणी का गहनता से अध्ययन करने वाले हरपाल सिंह पन्नू लिखते हैं–

''अपने–आप की सृजना करनी एवं अपने नाम की रचना करनी एक ही प्रक्रिया के दो भिन्न रूप हैं। सृजन का अर्थ है विविधता, बहुरूपता। यदि अपने–आप का सृजन करना और अपने नाम की रचना करना दो कार्य होते तो फिर 'दूयी (दूसरी) कुदरत साजिआ' के स्थान पर 'तीयी' (तीसरी) कुदरत का ज़िकर होना था। 'दूयी' का एक अर्थ यह है कि कुदरत दूसरे स्थान पर आती है और ईश्वर पहले दर्जे पर।''[24]

गुरु नानक देव जी की ईश्वरीय एवं सृष्टि–परिकल्पना भारतीय वेद परम्परा, उपनिषदों एवं भारतीय सम्प्रदायों से संबंधित आभाषित होती है। ''ऋग्वेद के कई सूक्तों में सृष्टि उत्पत्ति संबंधी विचार बिखरे हुए हैं। इन सूक्तों में नासदिया सूक्त, हिरण्य गर्भ सूक्त, पुरुष सूक्त विशेष महत्त्व रखते हैं।....नासदिया सूक्त में आदिकालीन मूल तत्व के विषय में लिखा गया है कि वह अकेला एक ही था जो बिना वायु श्वास लेता था। इससे अलग और इससे परे कुछ भी नहीं था।....तपस्या द्वारा उसके मन में काम की उत्पत्ति की इच्छा हुई, जिसकी प्रेरणा स्वरूप सृष्टि का विकास हुआ।''[25] इस प्रकार का विश्लेशण हमें उपनिषदों में भी मिलता है। ''तैत्तरीय उपनिषद् अनुसार उस परब्रह्मा के ह्रदय में अनेक होने की इच्छा हुई और उस इच्छा के फलस्वरूप सृष्टि का विकास हुआ''[26]

ईसाई एवं अनेक हिन्दु धार्मिक ग्रंथों में यह माना गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति को हुए कई युग बीत गए हैं परन्तु वे कोई निर्धारित समय–सीमा बताने में असमर्थ रहे हैं। गुरु नानक देव जी सृष्टि–रचना के संबंध में किसी प्रकार के समय एवं स्थान की सीमा को स्वीकार करने से इंकार करते हैं। उन्होंने ऐसा दावा करने वाले हिन्दू, मुस्लिम एवं ईसाई धर्म–शास्त्रों का खण्डन किया है, जिसमें सृष्टि–रचना के समय के विषय में निश्चित हद तैय की गई थी। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि यह कोई नहीं जानता की सृष्टि की रचना कब और कैसे हुई। समय क्या था? तिथि कौन–सी थी? वार क्या था? ऋतु कौन–सी थी और इसका आकार कितना विशाल या सूक्ष्म था? गुरु नानक देव जी कहते हैं यह कोई नहीं जान सकता चाहे वह कितना भी प्रकांड पंडित क्यों न हो। उसने कितने भी पुराणों एवं वेदादि ग्रंथों का लेखन किया हो। इसका पता प्रकांड काजीयों एवं योगियों को भी नहीं हो सकता। यह तो बस स्वयं अकाल पुरुष ही जानते हैं, जिसने सृष्टि की रचना की है। इस विषय में 'नानक बाणी' में स्थान–स्थान पर दर्ज है कि–

कवण सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवण जितु होवा आकारु।।
वेल न पाईआ पण्डती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेख कुराणु।।
थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।
जा करता सिरठी कउ साजै आपे जाणै सोई।।[27]

तथा

अदिसट दिसै ता कहिअ जाइ।
बिनु देखे कहिन बिरथा जाइ।[28]
तथा
वड्डे मेरे साहिब गहिर गंभीर गुणी गहीरा।
कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा।[29]

भले गुरु नानक देव जी की बाणी में अकाल पुरुष द्वारा बनाई गई समस्त सृष्टि को सत्य (सच्च) से बांध दिया गया है परन्तु उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि स्थिर एवं अनादि केवल परम तत्व अकाल पुरुष ही हैं। शेष सभी उस अकाल पुरुष के ही अधीन हैं।

न सूर ससि मंडलो। न सपत दीप नह जलो।।
अन्न पउणु थिरु न कुई। एक तुई एक तुई।।[30]

सूर्य, चन्द्र, पानी, हवा ही नहीं अपितु देव, दानव, सिद्ध, साधक एवं पृथ्वी भी न स्थिर हैं और न कभी स्थिर हो सकते हैं । सभी को वह परम तत्व जब चाहे समेट सकता है। बस वही स्थिर है, सत्य है।

न देव दानवा नरा। न सिध साधिका धरा।।
असति एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई।।[31]

पश्चमी दार्शनिक सृष्टि को ठोस एवं कठोर हकीकत मानते हैं। नीत्से अनुसार कुदरत व्यर्थ का फैलाव है, बेहद बेपरवाह है, जिसका कोई मंतव्य नहीं, कोई जरूरत नहीं। कुदरत न तरस करती है और न इंसाफ। इस अचनचेत उदासीन शक्ति में रह कर जीवन व्यतीत करना मुश्किल है। गुरु नानक देव जी की बाणी जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण का केवल निषेध ही नहीं करती अपितु इसका विरोध भी करती है।[32] गुरु नानक बाणी सृष्टि को ठोस एवं कठोर हक़ीक़त नहीं मानती। उनका विचार है कि सृष्टि उस सच्चे अकाल–पुरुष की सच्ची एवं बेहद खूबसूरत रचना है। यह किसी के साथ कभी कोई नाइंसाफी नहीं करती, बल्कि यह मनुष्य को ईश्वरीय तत्व की ओर प्रेरित करती है। यह ईश्वरीय सत्ता को अनुभूत करने का माध्यम है। इस चराचर जगत् (समस्त सृष्टि) से ही मनुष्य को उच्च सदाचारी मूल्यों का बोध होता है। इसलिए सृष्टि बेजान, बेतरतीब एवं बेतरस हस्ती नहीं है, अपितु ईश्वर की सच्ची रचना है। इस विषय में नानक बाणी में दर्ज है कि–

पाणी प्राण पवणि बंधि राखे चंदु सूरजु मुखि दीए।
मरण जीवन कउ धरती दीनी ऐते गुण विसरे।[33]

अर्थात् जिस ईश्वर ने प्राणों को पवन, पानी आदि के साथ बांध रखा है और चाँद, सूरज दो मुखी दीये बना दिए हैं। जिसने समस्त जीवों के लिए मरन प्रयन्त धरती पर वास दिया है, उसके इतने उपकार जीवों ने भुला दिए हैं। वास्तव में गुरु नानक बाणी में सृष्टि परमतत्व के पश्चात् सबसे महत्त्वपूर्ण सत्ता के रूप में दिखाई देती है। गुरु नानक बाणी में दर्ज है कि परमतत्व से शेष जो कुछ भी है वह सभी कुछ सृष्टि, कुदरत, प्रकृति ही है।

कुदरति दिसै कुदरति सुणिऐ कुदरति भउ सुख सारु।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु।।
कुदरति बेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु।

कुदरति खाणा पीणा पैन्हणु कुदरति सरब पिआरु।
कुदरति जाति जिनसी रंगी कुदरति जीआ जहान।
कुदरति नेकीआं कुदरति बदीआं कुदरति मानु अभिमानु।
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु।
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकि नाई पाकु।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु।[34]

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि गुरु नानक बाणी में सृष्टि (कुदरत) की परिकल्पना (शक्ति) ईश्वर की सत्ता के पश्चात् दूसरे दर्जे पर आती है। जहाँ अन्य भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों में आत्म तत्व को अधिक महत्त्व दिया गया है सृष्टि, जगत्, प्रकृति आदि को मुख्य रूप से महत्वपूर्ण नहीं माना गया है। वहीं गुरु नानक बाणी में सृष्टि (कुदरत) को परमतत्व का मुख्य निवास स्वीकारा गया है। गुरु जी कहते हैं कि सृष्टि का निर्माण कर परमतत्व उसी में समा गया है। यानी मुख्य रूप से सृष्टि परमात्मा का ही साकार रूप है। गुरु जी लिखते हैं–

कुदरति करि कै वसिआ सोई।[35]

इसीलिए गुरु नानक देव जी ने परमतत्व की खोज के लिए मनुष्य को सृष्टि (कुदरत) के अधिक से अधिक समीप आने की बात कही है। वे लिखते हैं कि सभी कुछ उस दाता के अधीन है और केवल वही सत्य है उसकी पहचान उसके द्वारा निर्मित सृष्टि से ही हो सकती है। प्रत्येक लोक में आसन लगा कर वही विराजमान है। समस्त लोकों में उसी परमसत्ता का भंडार है।

नानक सच दातारु सिनाखती कुदरति।[36]

तथा

आसणु लोइ–लोइ भंडार।[37]

गुरु नानक देव जी की बाणी से ऐसे संकेत स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होते हैं कि गुरु जी अपने आस–पास के चराचर जगत् से तनिक भर भी उदासीन नहीं थे। भले ही उनका लक्ष्य इस सृष्टि से परे उस असीम तक पहुँचना था परन्तु उन्होंने दृश्यमान् जगत् की उपेक्षा नहीं की अपितु उसका महत्त्व न कि स्वयं अनुभूत किया बल्कि अन्य को भी सृष्टि के ईश्वीय तत्व से संबंध से परिचय करवा दिया। अवश्य ही गुरु नानक देव जी की बाणी का प्रकाश विश्व धर्म–दर्शन के चिंतन में नव–संकल्पों का पुनर्निमाण है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. वारां भाई गुरुदास, संपादक एवं टीकाकार– ज्ञानी हजारा सिंह जी पंडित, वार–1, पउड़ी–23, भाई वीर सिंह साहित्य सदन, नई दिल्ली, 21 वां संस्करण, 2011
2. वारां भाई गुरुदास, संपादक एवं टीकाकार– ज्ञानी हजारा सिंह जी पंडित, वार–1, पउड़ी–27
3. गुरु नानक जीवन, दर्शन एवं काव्य–कला, संपादक : सुरिन्दर सिंह कोहली, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, 2000, पृ. 136
4. गुरु नानक जीवन, दर्शन एवं काव्य–कला, संपादक : सुरिन्दर सिंह कोहली, पृ. 85
5. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार – डॉ. तरन सिंह, श्री गुरु ग्रंथ साहिब खोज विभाग, पंजाब यूनीवर्सिटी, पटियाला, 1969, पृ. 547

6. 'नानक वाणी', डॉ. जयराम मिश्र (संपादक दृ श्रीकृष्ण दास) मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद,1959 पृ. 55
7. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार – डॉ. तरन सिंह, पृ. 228
8. वही, पृ. 576
9. अद्वैत वेदांत (इतिहास एवं सिद्धांत), डॉ. राममूर्ति शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, 1998, पृ. 97
10. अद्वैत वेदांत (इतिहास एवं सिद्धांत), डॉ. राममूर्ति शर्मा, पृ. 97
11. वही, पृ. 122
12. वही, पृ. 125
13. गुरु नानक दा कुदरत–सिदांत, हरपाल सिंह पन्नू, धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2002, पृ. 3
14. गुरु नानक दा कुदरत–सिदांत, हरपाल सिंह पन्नू, पृ. 3
15. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार– डॉ. तरन सिंह, पृ. 47
16. वही, पृ. 543
17. 'नानक वाणी', डॉ. जयराम मिश्र (संपादक– श्रीकृष्ण दास), पृ. 131
18. वही, पृ. 186
19. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–2), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 45
20. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 20
21. 'नानक वाणी', डॉ. जयराम मिश्र (संपादक दृ श्रीकृष्ण दास), पृ. 95
22. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 106
23. आसा दी वार, गुरु नानक देव, (टीकाकार : प्रो. साहिब सिंह), सिंह ब्रदर्ज़, अमृतसर, 2001, पृ. 25
24. गुरु नानक दा कुदरत–सिदांत, हरपाल सिंह पन्नू, पृ. 3
25. गुरु नानक जीवन, दर्शन एवं काव्य–कला, संपादक : सुरिन्दर सिंह कोहली, पृ. 41
26. वही, पृ. 42
27. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 28
28. वही, पृ. 342
29. वही, पृ. 392
30. वही, पृ. 258
31. वही, पृ. 247
32. गुरु नानक दा कुदरत–सिदांत, हरपाल सिंह पन्नू, पृ. 74
33. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–2), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 878
34. गुरु नानक बाणी प्रकाश (भाग–1), संपादक एवं टीकाकार–डॉ. तरन सिंह, पृ. 543
35. वही, पृ. 213
36. वही, पृ. 243
37. 'नानक वाणी', डॉ. जयराम मिश्र (संपादक – श्रीकृष्ण दास) दृ पृ. 95

मानवतावाद के रक्षक : श्री गुरु नानक देव

सुनीता कुमारी*

'नानक पंथ' के प्रवर्तक संत श्री गुरु नानक देव जी का स्थान भारतीय साधना–परंपरा में अद्वितीय है। गुरु नानक की धार्मिक रचनाएं ब्रह्म के स्वरूप तथा मनुष्य के कर्तव्य की द्योतिका हैं। उन्होंने अपने समस्त जीवन में गुरु, शिक्षक, महानविचारक, दार्शनिक, समाज सुधारक, कर्म योगी व कवि रूप में सत्य को मनुष्य तक पहुंचाया। परमपिता परमात्मा की अनुभूति ही मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है, यही उनकी धार्मिक रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय है।

"भक्ति साहित्य किसी क्षणिक भावावेग तथा इंद्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है अपितु यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है। इसके साधन लौकिक अवश्य हैं, किंतु इसका साध्य एक ऐसी लोकोत्तर अनुभूति है, जिससे भक्त के चित्त को अनुपम शांति और आनंद की उपलब्धि होती है। विद्वानों ने भक्तिसाहित्य को प्रवृत्यनुसार दो वर्गों में विभक्त किया है–ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी।[1]" गुरु नानक देव जी का साहित्य ज्ञानमार्गी संत धारा का अजस्त्र प्रवाहक है।

"ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का एक माध्यम धर्म है। जाति,कुल,देशकाल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना 'धर्म' है।[2] "

अव्वल अल्ला नूर उपाया कुदरत दे सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपजिया कौन भले कौन मंदे।

इसी नैतिक दायित्व के प्रति नानक ने अपनी लेखनी चलाई और मानव समाज का मार्गदर्शन किया। उनके काव्य में निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति–भावना विद्यमान है। किंतु इसके साथ ही अन्य धार्मिक विचारधाराओं के लिए भी उनके मन में श्रद्धा भाव था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में परमात्मा के अस्तित्व का वर्णन किया–प्राण वायु गुरु के समान है, धरती सभी की माता है, रात्रि और दिन सभी की सेवा करने वाले दाई और दाया है, उनकी गोद में संपूर्ण संसार खेलता है, धर्म सभी लोगों की अच्छाइयों और बुराइयों की परख करता है, अपने कर्मों के अनुसार कुछ लोग उसके निकट स्थान पाते हैं और कुछ दूर रहते हैं, जो लोग परमात्मा के नाम का स्मरण करते हैं, उनकी साधना सफल होती है। परमात्मा के सम्मुख वे उज्जवल मुहँ लेकर जाते हैं। अपने साथ ही वे अन्य अनेक लोगों की मुक्ति का कारण बन जाते हैं।

पवणु गुरु पाणी पिता धरति महतु।
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचौ धरमु हदूरि।
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि।
नानक ते मुख उजले केती छूटी नालि।[3]

ईश्वर के प्रति यह अनुराग गुरु नानक देव जी में बाल्यकाल से ही था। वह आत्मचिंतन में निमग्न रहते थे । 7 वर्ष की आयु में उन्हें जब शिक्षा ग्रहण करने के लिए

*सहायक प्रवक्ता, मेहर चंद महाजन डी. ए. वी. महिला महाविद्यालय, सेक्टर 36, चंडीगढ़

भेजा गया, उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान से अध्यापक को विस्मृत कर दिया। उन्होंने वास्तविक ज्ञान की अभिव्यक्ति करते हुए कहा संसारिक मोह को जलाकर, घिसकर स्याही बनाओ, बुद्धि को ही श्रेष्ठ कागद बनाओ, प्रेम की कलम बनाओ और चित्त को लेखक और गुरु के निर्दिष्ट विचार लिखते जाओ। परमात्मा का नाम लिखो, स्तुति लिखो यह भी लिखो कि उस परमात्मा का न तो अंत है, न सीमा वह असीम है।

जलि मोहु घसि मसु करि, मति कागदु करि सारु।
भाउ कलम करि चितु लेखारी, गुरु पुछि लिखु बीचारु।
लिखु नामु सलाह लिखु लिखु अंत न पारावारु।
बाबा एहु लेखा लिखी जागु।
जिथे लेखा मांगिए तिथै सचा नीसाणु।[4]

गुरु नानक देव जी के जीवन की कई घटनाएं हैं जो धर्म के प्रति उनके सौहार्द की परिचायक है। 9 वर्ष की आयु में जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा था,उस अवसर पर भी बाबा नानक ने अपने दिव्य शब्दों से पंडित व अन्य परिवारजनों को अचंभित कर दिया। उन्होंने ऐसा जनेऊ धारण करने का प्रस्ताव किया जो दया रूपी कपास से, संतोष रूपी सूत से, संयम की ग्रंथि और सत्य के पूरन से बना हो। ऐसा जनेऊ न टूटता है, न मैला होता है, न जलता है,न नष्ट होता है। जो ऐसा जनेऊ धारण करते हैं, वे धन्य हो जाते हैं। पंडित जी यदि आपके पास ऐसा जनेऊ है तो आइए।

दइआ कपाह संतोख सूतु जतु गंढी सतु वट्टु।
एहु जनेऊ जीअ का हइ त पांडे घतु।
ना एहु टूटै न मल लगै ना एहु जलै न जाइ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ।[5]

बाबा नानक ने सदैव मानव समाज का पथ–प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने उपदेश के माध्यम से स्पष्ट किया कि मानव को संसार में रहते हुए स्वच्छ मन से लौकिक कार्यों को करते हुए, निष्काम भाव से मानवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। उनका साहित्य आज 550 वर्षों के पश्चात भी जनमानस में मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा कर रहा है। गुरु नानक देव ने समाज में व्याप्त असमानताओं का अध्ययन करते हुए पाया कि सभी पाखंड,धार्मिक अंधविश्वास,जाति के संकीर्ण बंधन तथा अनाचार मनुष्य द्वारा ही उपजाए गए हैं। यह सब मानवीय गरिमा में अवरोधक है। उन्होंने मानव को श्रेष्ठ मानव बनने के लिए अनुप्रेरित किया। जाति–पाति,छुआ–छूत, बाह्याडंबरों जैसे कुचक्रों से निकाल कर उन्मुक्त वातावरण में लाकर पुनरुज्जीवित करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने अपनी वाणी में स्पष्ट किया, मलिन मन से तीर्थों में स्नान करने का कोई लाभ नहीं, क्योंकि वे मन के खोटे और शरीर के चोर होते हैं। स्नान करने से उनका शरीर शुद्ध हो जाता है लेकिन मन मलीन रहता है। ऐसे व्यक्ति की तुलना बाबा नानक ने कड़वी लौकी से की है, जिसे बाहर से कितना भी धोया जाए उसका भीतरी भाग विषाक्त रहता है।

नावण चले तीरथी मनि खोटै तनिचोर।
इक भाउ लथी नातिआ चड़ी असु होर।
बाहरी धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर।[6]

गुरु नानक देव जी ने तत्कालीन अंधकार,अविश्वास,अज्ञानता के निवारण हेतु **'जपुजी'** में जीवन का मूल मंत्र दिया–परमेश्वर एक है,उसी का नाम सत्य है, वह कर्ता

पुरुष है, वह निर्भय है, वैर रहित, कालातीत और अयोनि है, स्वयं से प्रकाशित एवं गुरु कृपा से ही उसकी प्राप्ति संभव है। यही नानक दर्शन का सार तत्व है।

एक ओंकार
सतिनामु करता पुरख निरभउ निरवैर।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।[7]

सत्य के प्रति आस्था के फलस्वरुप उनकी वाणी में स्पष्टता और उद्‌बोधन की प्रखरता मिलती है। गुरु नानक देव ने **'सबद'** की महत्ता पर बहुत बल दिया है **'सबद'** का तात्पर्य वचन,उपदेश अथवा शिक्षा आदि से है। गुरु नानक देव का कथन है कि जो व्यक्ति गुरु के **'सबद'** में मरता हैं, वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिना **'गुरुसबद'** के सारा जगत भटक कर इधर–उधर घूमता फिरता है। बार–बार मरता है और जन्म लेता है।8 **'जपुजी'**के पहले श्लोक में गुरु नानक देव जी ने परमब्रह्म की नित्यता तथा सर्वसत्य पर अपनी आस्था प्रकट की है।

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होती भी सचु।[9]

प्रोफेसर तेजा सिंह के शब्दों में "जपुजी के भीतर बड़े विस्तार वाले विचारों को ऐसा कस कर लिया गया है मानो उनमें दरिया बंद कर दिया है। पंजाबी भाषा से इतना कठिन काम पहले कभी नहीं लिया गया था और ना अब तक ही किसी ने लिया है।"[10] समन्वयशील और उदार प्रवृत्ति के व्यक्तित्व गुरु नानक देव जी में अद्‌भुत क्षमाशीलता एवं दूरदर्शिता विद्यमान थी। उनमें तुलसीदास के समान असीम समन्वय का धैर्य था। उन्होंने नारा दिया "ना कोई हिंदू है ना मुसलमान" और दोनों विचारधाराओं का समन्वय किया। उनके अनुसार मुसलमान कहलाना कठिन है, कोई तभी मुसलमान हो सकता है जब इस्लाम के प्रवर्तक द्वारा प्रदर्शित पथ पर चले, मरण व जीवन की भ्रांतियों से मुक्त हो, परमात्मा की इच्छा को शिरोधार्य करें और सभी प्राणियों के प्रति दया का भाव रखें तभी वह मुसलमान हो सकता है।

मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै।
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाइ मन्ने सिर उपरि करता मन्ने आपु गवावै।
तउ नानक सरब जीआ मिहरमति होइ त मुसलमाणु कहावै।[11]

गुरु नानक देव ने तत्कालीन समाज की रूढ़ियों और बाह्याडंबरों में जकड़ी हुई जनता को स्वतंत्र करने के लिए निर्भीक सबद कहे। उन्हें वास्तविक धर्म का मार्ग दिखाते हुए बाह्याडंबरों का खंडन किया बल्कि स्त्री को पुरुष के समान आसन दिया। नारी की हीन अवस्था का उन्हें पूर्ण रूप से ज्ञान था इसलिए उन्होंने नारी के उत्थान हेतु निर्भय और सहानुभूतिमय सबद कहे–नारी से मनुष्य का जन्म होता है, उसी से उसकी सगाई होती है और वही विवाह के लिए मांगी जाती है। नारी ही मित्र है, नारी से ही सभ्यता का मार्ग चल रहा है। एक नारी की मृत्यु पर अन्य नारी का अन्वेषण किया जाता है। नारी से ही सब व्यवस्था स्वस्थ रहती है। जिससे राजाओं तक का जन्म होता है, उसको अधम कैसे कहा जा सकता है ? नारी से ही नारी का जन्म होता है नारी के बिना कुछ नहीं।

भंडी जंमीए भंडी नींमीए भंडी मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।
भंडु मुआ भंडु भालीए भंडि हौवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।
भंडहु ही भंडु ऊपजे भंडै बाझु न कोइ।
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ।[12]

दलित शोषित निम्न जातियों को भी गुरु नानक देव ने सम्मान दिया और उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण का प्रसार किया। मनुष्य से घृणा मत कीजिए। परमात्मा का निवास सभी (ऊंच–नीच) जातियों के लोगों में है। सभी एक पिता परमात्मा की संतान हैं। परमात्मा की ज्योति सभी जीवो में समान रूप से व्याप्त है। उसी के प्रकाश में सब अनुप्राणित हैं। किसी जाति अथवा वर्ण विशेष में जन्म लेने से मनुष्य न ऊपर उठता है और न नीचे गिरता है। वह अपने कर्मों से ऊपर उठता है अथवा नीचे गिरता है। निम्न वर्ण का पवित्र मनुष्य अपने शुभ कर्मों के संपादन से ऊंचा उठ जाता है, किंतु उच्च वर्ण का क्रूर, अत्याचारी, अहंकारी व्यक्ति अपने दुष्कर्म से पतित हो जाता है। मनुष्य मात्र की सेवा, ईमानदारी से किए गए कर्म किसी मनुष्य को नीचे नहीं गिराते, सेवा और विशुद्ध कर्मों के आचरण से तो मनुष्य का उत्थान होता है।

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिनके संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथे नीच समालिअनि तिथै नदरि तेरी बखसोस।[13]

बाबा नानक ने तत्कालीन धर्म, राजनीति और समाज के रुग्ण पक्ष को समझा और जनसामान्य में चेतना का प्रसार किया। ताकि समाज में भ्रातृत्व भाव बढ़ सके। नानक समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि लोग जाति–पाति, छुआछूत, सांप्रदायिकता, रूढ़ियों जैसी संकीर्ण विचारधाराओं से ऊपर उठें। प्रत्येक मानव बाह्याडंबरों को मिटाकर अपने कार्यक्षेत्र को पहचान ले तो वह सब प्रपंच से स्वतंत्र रह सकता है और समाज व देश के विकास में अपना सहयोग दे सकता है।

गुरु नानक अपने समस्त जीवन में भ्रमणशील रहें। उन्होंने सभी दिशाओं में यात्राएं की इस संदर्भ में सभी धर्मों और मतों के अनुयाई संतों से उनकी भेंट होती रहती थी। फलस्वरुप समाज और धर्म के संबंध में उनकी विचारधारां, अनुभूति और समन्वय पर आधारित है।

नानक हउमै रोग बुरे[14]

जो अहंकार की ताकत को जीत लेता है, वह काम, क्रोध, लोभ, मोह को भी आसानी से जीत लेता है जब मनुष्य का चंचल मन स्थिर हो जाता है, तो उसे दिव्य दृ ष्टि प्राप्त हो जाती है, जिसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है वह जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है। सच्ची सेवा के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी महत्वाकांक्षाओं का त्याग कर दे।

गुरु नानक देव जी ने कई धार्मिक यात्राएं कीं, परमात्मा का आदेश उन्हें इस कार्य के लिए प्रेरित कर रहा था। वह विश्व के विभिन्न देशों की भूमि तक ईश्वर,प्रेम,सेवा,भक्ति और मानवता का संदेश पहुंचा देना चाहते थे। अतः मर्दाना को साथ

लेकर उन्होंने कई यात्राएं की जिसमें पश्चिम की यात्राएं मुख्य रूप से मक्का, दक्षिण की यात्राएं, पंजाब की यात्राएं, उत्तर की यात्राएं और अंत में करतारपुर में जीवन व्यतीत करने के साक्ष्य प्राप्त हैं। अपनी यात्राओं के माध्यम से वे समस्त विश्व में धार्मिक सौहार्द और भ्रातृत्व का प्रचार प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन इस कार्य के लिए समर्पित कर दिया। उनकी धार्मिक यात्राओं से संबंधित कई कथाएं आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्त्रोत हैं।

मक्का की यात्रा के दौरान जब गुरु नानक देव काबा की ओर पैर करके विश्राम कर रहे थे तो तीर्थ यात्रियों में यह देख कर तहलका मच गया। बहुत से लोगों ने उन्हें घेर लिया और जीवन नामक एक मुसलमान भारत से हज करने आया था, उसने गुरु जी पर लात जमाते हुए कह "अरे अधर्मी और नास्तिक तू कौन है जो खुदा की और अपने पैर को करके सो रहा है।"[15] धार्मिक कट्टरता के आवेश में उसने गुरुजी के साथ दुर्व्यवहार किया। उसने गुरु जी के पैर खींच कर विपरीत दिशा में किए और जब आंखें ऊपर उठाकर देखा तो काबा वहां स्थित दिखाई पड़ा। उसने पुनः गुरु जी के पैर खींच कर दूसरी दिशा में किए और पुनः देखा कि काबा वहां स्थित खड़ा है। वह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि काबा गुरु जी के चरणों की ही दिशा में परिक्रमा करने लगा। इस पर गुरु महाराज ने सहज भाव से उत्तर दिया तुम देख नहीं रहे हो कि खुदा का निवास सभी दिशाओं में समान रूप से है। इस प्रकार गुरु जी ने परमात्मा के सर्व व्यापक स्वरूप को स्पष्ट किया।

कुरुक्षेत्र में यात्रा के दौरान गुरु नानक देव ने पाया कि हिंदुओं की धारणा है कि सूर्य और चंद्र ग्रहण में वहां स्नान करने से और दान करने से पापों का शमन होता है। यह देखकर गुरु जी को भोली जनता की इस रूढ़िवादिता पर हंसी आई। उन्होंने वहां दिव्य संगीत सुनाया। जिसे सुनकर एक रानी अपने पुत्र के साथ गुरु जी के दर्शन के लिए आई और उन्हें भक्ति भाव से प्रणाम करके गुरु जी के चरणो में अपने बालक द्वारा किए गए हिरण का शिकार भेंट कर दिया और प्रार्थना की "महाराज हमारा राज्य अपहृत कर लिया गया है आशीर्वाद दीजिए कि वह हमें वापस मिले।"[16] गुरु महाराज ने कहा सब परमात्मा के हाथ में है। उसका सदैव स्मरण रखो। इस घटना के पश्चात बाबा नानक ने वह हिरण काट कर एक बड़े बर्तन में पकाया। मांस की गंध से ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों में कोलाहल मच गया। कुछ लोगों ने कहा "यह महान पापी है"[17] पर बाबा नानक उनकी मूर्खता देख कर मुस्कुराते रहे। उन्होंने कहा "तुम मांस खाना तो बुरा समझते हो पर जीवित मनुष्यों की गाढ़ी कमाई का खून तो अपने अत्याचारों से नित्य पीते रहते हो। क्या यह मांस खाने से बदतर नहीं है? अतः मेरे मित्रों इन बातों में कुछ भी नहीं रखा है। इन ढकोसला को छोड़ो। सच्चे मनुष्य बनो परमात्मा का चिंतन करो। प्रेम और सेवा का व्रत लो। मनुष्य की सेवा करनी ही परमात्मा की सच्ची उपासना है। शरीर को स्वस्थ और सबल रखो इसे परमात्मा की प्राप्ति का साधन समझो। इस शरीर से शुभ कर्मों का आचरण करो। बुरे कर्मों में जाने से इसे रोको यही तप संयम और योग है।"[18] इस प्रकार गुरु नानक ने एक बार फिर व्यर्थ के आडंबरों ,रीति–रिवाजों के प्रति जागरूक किया। गुरु साहब का आगमन भारतीय समाज में उस समय हुआ जब धर्मांधता, कट्टरता, निरंकुशता और संक्रमणशीलता अपने चरम पर थी। ऐसी शोचनीय परिवेश से ग्रसित भारत के लिए एक ऐसी महान आत्मा की आवश्यकता थी, जो धर्म का

प्रचार–प्रसार कर सकें और विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय का भाव पैदा कर सके, ताकि धार्मिक कटुता समाप्त हो जाए , लोग शांति में जीवन व्यतीत करने की दिशा में प्रेरित हों। गुरु जी ने अपना दायित्व पूरा किया और मानव समाज को शांतिमय जीवन जीने के प्रति अपने शब्दों से अनुप्रेरित किया " जीवन की जो साधारण आवश्यकताएं हैं उन से शरीर को वंचित रखना पाप है। सुखों के प्रति मनुष्य में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। किंतु शरीर धारण करने के लिए भगवान जो कुछ भेजे उसे स्वीकार करना ही चाहिए। शरीर को भूखा मारने से आध्यात्मिक सिद्धि नहीं प्राप्त होती।"[19]

संदर्भ :–

1. डॉ०नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास,नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, (2011),पृ० 101
2. वही, पृ० 92
3. सिंह,हरबंस, गुरु नानक तथा सिख धर्म का उद्भव, पब्लिकेशन ब्यूरो : पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, (1996), पृ० 179
4. वर्मा,डॉ० धीरेंद्र, हिंदी साहित्य कोशः भाग–2, वाराणसी : ज्ञान मंडल लिमिटेड, (2014),पृ० 299
5. सिंह,हरबंस, गुरु नानक तथा सिख धर्म का उद्भव, पब्लिकेशन ब्यूरो : पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, (1996), पृ० 62 63
6- http://hdl.handal.net/10603/134109
7. सिंह, डॉ० महीप, गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहब तक, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, (2009),पृ० 13
8. मिश्र, डॉ०जयराम,गुरु नानक देव जीवन और दर्शन, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, (1983), पृ० 297
9. सिंह,डॉ०महीप,गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहब तक, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, (2009),पृ० 13
10. निदेशक,सूचना विभाग, गुरु नानक देव, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पटियाला हाउस, (1969),पृ० 16
11. वही, पृ० 76
12. सिंह,हरबंस, गुरु नानक तथा सिख धर्म का उद्भव, पब्लिकेशन ब्यूरो : पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, (1996),पृ० 193
13. मिश्र,डॉ०जयराम,गुरु नानक देव जीवन और दर्शन, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, (1983),पृ० 79
14. वही, पृ० 273
15. वही, पृ० 162
16. वही, पृ० 93
17. वही, पृ० 94
18. वही, पृ० 96
19. निदेशक,सूचना विभाग, गुरु नानक देव, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय , भारत सरकार, पटियाला हाउस, (1969), पृ० 20

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित गुरु नानक वाणी में पर्यावरण चिन्तन

गगनदीप कौर*

साहित्यकार समाज तथा समय को अपने शब्दजाल में बांधने का कार्य करता है, इसलिए उसके द्वारा रचित साहित्य युगों तक उस काल की सम्पूर्ण परिस्थितियों को परिलक्षित करता है। साहित्य जगत् में वही साहित्य सफल माना जाता है जो युगों–युगों तक उस काल एवं उसकी प्रवृतियों को तत्कालीन समाज के समकालीन रखता है और दूसरे शब्दों में कहें तो वही साहित्यिक रचना सार्थक एवं कालजयी है जो युगों तक समाज के समकालीन रहती है। साधारण शब्दों में कहें तो जो कृति युगों तक अपनी साहित्यिक प्रवृतियों के कारण समकालीन रहती है वही कृति साहित्य जगत् में अमर कहलाती है। हजारों वर्ष पहले लिखे गए वेद, पुराण, उपनिषद् आदि अमर साहित्य की श्रेणी में आते हैं, यह आज के आधुनिक समाज में भी उतने ही प्रासंगिक है जितने अपने रचना काल के समय में थे। ठीक इसी प्रकार हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग का संत साहित्य आज के आधुनिक समाज में उतना ही प्रासंगिक बना हुआ है जितना तत्कालीन समाज में था। आदिकवि वाल्मीकि, महाकवि कालिदास आदि की रचनाओं के साथ–साथ भक्तिकालीन संतों की वाणी/साहित्य का पठन–पाठन होना साहित्य की अमरता एवं साहित्य के लिए गौरव का विषय है। हिंदी साहित्य में भक्तिकाल स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है जिसका कारण है संत महात्माओं द्वारा रचित वाणी जिसने जन सामान्य को आध्यात्मिक स्तर पर आह्लादित किया और उनके नैतिक आचरण को ऊँचा उठाने में विशिष्ट योगदान दिया। भक्ति काल के प्रख्यात कवियों की जब बात की जाती है तब उनमें कबीर, रैदास, गुरु नानक जैसे संत कवियों का नाम प्रथम श्रेणी में आता है। भक्तिकाल में जहाँ एक ओर कबीर ने विपरीत परिस्थितियों में संत मत का नेतृत्व किया वहीं गुरु नानक देव के आगमन से त्रस्त संसार को नयी रौशनी दिखायी दी। ज्ञान के प्रकाश से उन्होंने इस नाशवान जगत् को सत्य का मार्ग दिखाया तथा मानवता का पाठ पढाया और जीवन को कर्म की ओर अग्रसर करने का उपदेश दिया। गुरु नानक देव जी द्वारा नये पंथ की नींव डाली गयी जिसे नानक पथ नाम दिया गया। इस पर डॉ. जयराम मिश्र का कथन है, "वे अपूर्व दूरदर्शी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि वर्तमान परिस्थितियों में कौन सा धर्म भारत के लिए और वह भी विशेषतः पंजाब के लिए श्रेयस्कर होगा। इसी विचार से उन्होंने सिक्ख धर्म की स्थापना की। यद्यपि मध्ययुग में भारतवर्ष में अनेक समाज सुधारक हुए पर उन्हें वह सफलता नहीं प्राप्त हुई, जो गुरु नानक देव जी को प्राप्त हुई।"[1]

इस प्रकार गुरु नानक देव जी का स्थान सिक्ख धर्म के साथ–साथ सहित्य जगत में भी प्रतिष्ठित बना हुआ है। विश्व के धार्मिक–आध्यात्मिक साहित्य ने मानवीय सभ्यता के विकास में अहम् योगदान दिया है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। भारत में

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री गुरु गोबिंद सिंह खालसा कॉलेज, माहिलपुर (होशियारपुर)

धार्मिक साहित्य की एक सुदृढ़ परम्परा रही है जिसने मनुष्य को मानवता का मार्ग दिखाया है और गुरु नानक देव जी द्वारा रचित वाणी ऐसे ही साहित्य का उदाहरण है जिसने मानव जीवन में पग–पग पर उसका मार्ग प्रशस्त किया है। नानक वाणी की महानता इसी में है कि उसमें दिए गए सन्देश आज भी अमर हैं और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

मध्ययुगीन समाज तथा संस्कृति का गहन अध्ययन करना हो तो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब से प्रमाणिक ग्रन्थ और कोई नहीं ही सकता। आदिग्रंथ विश्व का एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसे शब्द गुरु होने का सम्मान प्राप्त है। सिक्ख धर्म से संबंधित पांच गुरुओं, चार गुरु घर से संबंधित गुरु सिक्ख, पंद्रह भक्त एवं ग्यारह भाटों की वाणी के साथ साथ लगभग 500 वर्षों की संस्कृति का इतिहास भी इस ग्रन्थ में समाया हुआ है, जिसका सम्पादन कार्य गुरु अरजन देव जी द्वारा 1604 में आदिग्रंथ के रूप में किया गया किन्तु गुरु गोबिंद सिंह द्वारा 1705 में आदि ग्रन्थ में अपने पिता गुरु तेग बहादुर की वाणी का संकलन कर इसे श्री गुरु ग्रंथ साहिब का नाम देकर शब्द गुरु के स्थान पर स्थापित किया गया। यह विश्व का प्रथम धार्मिक ग्रन्थ है जिसने एक साथ विभिन्न जाति, संस्कृति के 36 महापुरुषों को एक सम्मान देकर उनकी वाणी को सामान गौरव प्रदान किया है। इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण देश में रहने वाले संतों की वाणी को संकलित किया गया है। गुरु नानक वाणी का स्थान इसमें प्रथम स्थान पर आता है। सभी छह गुरुओं की वाणी महला के अंतर्गत आती है, जिसमें गुरु नानक वाणी महला १ के अंतर्गत आती है। गुरु नानक वाणी का अध्ययन करने के लिए गुरु ग्रन्थ साहिब प्रमाणिक दस्तावेज है। इसलिए इस शोध पत्र में भी आधार ग्रन्थ के रूप में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को रखा गया है।

गुरु नानक वाणी की विशेषता यह है कि इसमें मध्यकालीन पंजाब की भाषा, सहित्य, समाज और संस्कृति को भी समेटा गया है। वाणी के माध्यम से जन सामान्य तक जो सन्देश वे पहुँचाना चाहते थे उसके लिए उन्होंने अनेक प्रतीकों, संकेतों को माध्यम बनाया है और भाषा की सरलता के साथ अपनी विचारधारा को सामान्य जनता तक पहुँचाया है। वाणी के विषय क्षेत्र की विशालता ही है कि आज गुरु नानक वाणी का सामाजिक, सांस्कृतिक, अध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक अध्ययन के साथ साथ उसमें पर्यावरण के बिंदु भी खोजे जा रहे हैं। नानक वाणी की अपनी वैज्ञानिक महत्ता भी है, विज्ञान जो तथ्य आज मनुष्य के समक्ष प्रकट रही है वह नानक वाणी में अनेक वर्ष पूर्व स्पष्ट कर दिए गए हैं। नानक वाणी में मनुष्य के आस पास की प्रत्येक वस्तु–घटना, समाज, प्रकृति आदि का चित्रण हुआ है। परमसत्ता के महत्व को उद्घाटित करना उनकी वाणी का परम उद्देश्य रहा है किन्तु उसके साथ वह प्रकृति को भी जोड़कर देखते हैं। किन्तु कहीं प्रकृति की पूजा अर्चना करते नज़र नहीं आते। बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इत्यादि को उस परमसत्ता के अधीन चलते दिखाते हैं। प्रकृति और पर्यावरण का सीधा संबंध है इसलिए हम प्राकृतिक संकेतों में पर्यावरण के चिंतनीय बिंदू ढूँढने का प्रयास करेंगे। पर्यावरण को गहराई तक जान पाना मनुष्य के लिए कठिन कार्य है किन्तु नानक वाणी में पर्यावरण को जीवित रूप में स्वीकार किया गया है। प्रश्न यह है कि पर्यावरण क्या है? सामान्य अर्थ में पर्यावरण हमारे चारों ओर बना हुआ घेरा है जिसमें जैविक, अजैविक सभी

तत्व समा जाते हैं, जिसका वर्णन बेहद संजीदगी से नानक वाणी में कहीं कुदरत के माध्यम से तो कहीं परमसत्ता की अपार शक्ति के माध्यम से उद्घाटित हुआ है।

प्रकृति को यहाँ 'कुदरत' शब्द से चित्रित किया गया है। नानक वाणी में शब्दों का जो चयन किया गया है वह अपने आप में विलक्षण है। वास्तव में उनकी वाणी का मूल उद्देश्य प्रकृति चित्रण तथा पर्यावरण चिंतन नहीं रहा अपितु उस परमसत्ता, परमात्मा ईश्वरीय ज्ञान को प्रकट करने तथा मनुष्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए उन्होंने इस माध्यम को अपनाया है। किन्तु इस बात से मुंह नहीं फेरा जा सकता कि अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय बिंदु यथा कथा वाणी से जुड़े हुए हैं। उनके द्वारा किया गया शब्द चयन प्रतीक, बिम्ब विधान में फूल–फल, पेड़–शाख, जल–बूंद, पवन–पानी, आकाश, हंस, सरोवर इत्यादि का उदाहरण लिया जा सकता है जहाँ परमात्मा की सत्ता के साथ साथ ये सभी वाणी में स्थान प्राप्त कर गए हैं।

मनुष्य का मनुष्य से संबंध, मनुष्य का पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, स्थान इत्यादि से संबंध प्रकृति के अंतर्गत आता है जिसे यहाँ कुदरत का नाम दिया गया है। देखा जाए तो यह सभी पर्यावरण के महत्वपूर्ण बिंदु हैं तथा समाज और संस्कृति भी इसके दायरे से बाहर नहीं हैं। मनुष्य का जीवन केवल एक ही ग्रह पर संभव है और वही है पृथ्वी, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक हिस्सा है जिसे उस परमसत्ता के अंतर्गत चलते माना गया हैः–

"हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।"[2]

सम्पूर्ण कायनात को उस परमात्मा के अंतर्गत माना गया है, नानक वाणी में यह दिखाई देता है कि हवा, सूर्य, पृथ्वी, आकाश जो भी पर्यावरण के प्रमुख अंग है उस परमशक्ति से डरकर अपना कार्य व्यापार करते नज़र आते हैं, यथा :–

"भै विचि पवणु वहै सदवाउ
भै विचि चलहि लख दरीआउ
भै विचि अगनि कढ़ै वेगारि
भै विचि धरती दबी भारि
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि
भै विचि राजा धरम दुआरु
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।"[3]

इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि को उस परमात्मा की इच्छा के अंतर्गत माना गया है, मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं को देखा जाए तो उसमें मिट्टी, पानी, हवा समाज का अहम् योगदान रहता है। मिट्टी के बिना खाद्य पदार्थ नहीं और पानी के बिना भूमि उर्वर नहीं, हवा के बिना श्वास नहीं लिया जा सकता, इस तरह यह सभी तत्त्व परस्पर संबंधित हैं। नानक वाणी में इन सभी के महत्व को देखते हुए ईश्वर की महिमा को भी स्पष्ट किया गया है। धरती को माँ तथा पानी को यहाँ पिता कहा गया हैः–

"पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु,

दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु।"[4]

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में यह पंक्ति थोड़े अंतर के साथ दूसरी बार महला 2 अर्थात् गुरु अंगद देव जी की वाणी के अंतर्गत लिखी आती हैः–

"पउणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु

दिनसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु।।"[5]

महला १ और महला २ की वाणी की इन पक्तियों में अधिक अंतर नहीं है जहाँ नानक वाणी में 'पवणु' कहा गया है वही गुरु अंगद देव की वाणी में 'पउणु' शब्द आता है ठीक इसी प्रकार दिवसु–दिनसु का अंतर पाया जाता है किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है की दोनों में हवा, जल, धरती के महत्व को रेखांकित किया गया है जो मनुष्य के लिए चिंतन के विषय हैं।

मनुष्य के जीवन में पानी के महत्व को हम भलीभांति जानते हैं वहीं उसके जीवन का मूलाधार भी है, जल से ही मानवीय जीवन का प्रारंभ भी माना जाता है। गुरु नानक वाणी में भी धरती पर जन्म लेने वाले पहले प्राणी के बारे में लिखा गया है कि पृथ्वी पर जन्म लेने वाला प्राणी जलीय जीव है जिससे धीरे–धीरे जीवन का विकास हुआ जिसका परिणाम मानव जीवन के रूप में देखा जा सकता है, इस तरह पृथ्वी पर जीवन के लिए पानी कितना महत्व रखता है, यह स्पष्ट होता है और आज पानी के प्रति हमारी अचेतना आने वाले समय में कितनी भयावह हो सकती है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि जल ही जीवन है :–

"पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ।"[6]

अथवा

"साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ।

जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ।।"[7]

यहाँ इस बात को स्पष्ट किया गया है कि उस सच्चे परमेश्वर से पवन/वायु का जन्म हुआ है और वायु से जल बना है, जल से जीवन की लीला शुरू हुई और प्रत्येक जीव के अन्दर उस ईश्वर का वास हो गया। सीधे अर्थों में देखा जाये तो परमात्मा का प्रत्यक्ष संबंध जल, वायु तथा जीवन से जुड़ा हुआ है ऐसा गुरु नानक देव का मानना है। गुरु नानक वाणी में पर्यावरण के इस फैलाव को उस परम पिता का ही रूप माना गया है और प्रत्येक जीव को चेतन रखने हेतु परमात्मा स्वयं उसमें निवास करते हैं और इस संसार की प्रत्येक वस्तु में उसकी सत्ता पाई जाती है।

'आसा दी वार' में यह स्पष्ट हुआ है कि उस परमात्मा ने कुदरत का सृजन किया और उसके पश्चात उसे सुचारू ढंग से चलाने के लिए उसी में निवास कर लियाः–

"आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है राचिओ नाउ।

दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।।

दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ।।"[8]

इस प्रकार उस परम सत्ता ने सम्पूर्ण प्रकृति को अपने साथ बांध रखा है।

मनुष्य के जीवन में धरती और माँ दोनों की अहम भूमिका रहती है। भारतीय संस्कृति में धरती को भी माँ का स्थान प्राप्त है क्योंकि वह भी मनुष्य का पालन पोषण माँ की तरह ही करती है। माँ की तरह ही अपनी संतान के लिए कष्ट सहती है। अपनी छाती पर हल चलवाकर उसे अनाज के रूप में भोजन प्रदान करती है और मनुष्य की भूख मिटाती है। धरती और माँ सहनशीलता का प्रतिबिम्ब हैं । गुरु नानक वाणी में बारहमाह का वर्णन करते हुए धरती की सहनशीलता तथा त्याग की बात की गयी है कि धरती किस प्रकार सूर्य से आने वाली गर्मी अपने भीतर समा लेती हैः–

आसाडु भला सूरजु गगनि तपै ।

धरती दूख सहै सोखै अगनि भखै।"[9]

इस प्रकार धरती अपने आप में सहनशीलता की मिसाल है जो मानव को भी सहनशील बनने की ओर प्रेरित करती है, जो अच्छे पर्यावरण निर्माण की ओर प्रथम कदम माना जा सकता है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाना और उस परमात्मा से मिलन के लिए ह्रदय का उत्सुक होना बारहमाह में दिखाई देता है। इसमें प्रकृति की सुंदरता तथा उसके प्रभाव से पर्यावरण में फैला हुआ परमात्मा का रूप दिखाई देता है। यहाँ विभिन्न पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों के माध्यम से प्रकृति के सौन्दर्य तथा ईश्वर से मिलन की इच्छा को प्रस्तुत किया गया है।

"चेतु बसंतु भला भवर सुहावडे ।

बन फूले मंझ बारि मै पिरु घरि बाहुडै।

पिरु घरि नही आवै धन किउ सुखु पावै विरहि विरोध तनु छीजै।।

कोकिल अम्मवि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै।।

भवरु भवंता फूली डाली किउ जीवा मरू माए।।

नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घरि धन पाए।।"[10]

यहाँ स्पष्ट है कि किस तरह गुरु नानक देव जी का चिंतन अपने वातावरण के प्रति जागरूक है और उसी में समाया हुआ है। परमसत्ता से दूर बैठी जीव आत्मा का दुःख स्पष्ट दिखाई देता है। यहाँ प्रकृति की प्रक्रिया को भी देखा जा सकता है किस तरह प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से जुडी हुई है।

कुछ दशक पूर्व तक पर्यावरण के अंतर्गत केवल जल, जमीन, वायु आदि को ही रखकर देखा जाता था। किन्तु आज समाज–संस्कृति भी हमारे पर्यावरण का प्रमुख अंग

है। सही अर्थों में मनुष्य का आस–पास का आवरण ही पर्यावरण है तो उसमें उसका समाज भी उतना ही महत्व रखता है, जितना कि संस्कृति। गुरु नानक का जन्म ही ऐसे समय में हुआ जब समाज में छुआ–छूत, आडम्बर, ऊँच–नीच, असमंजस्य की स्थिति बनी हुई थी। इसिलए नानक वाणी में वैर विरोध से दूर, सामंजस्य से भरपूर सहृदय की भावना से ओत प्रोत समाज की कामना की गयी है। उन्होंने जन सामान्य के दिलो–दिमाग से पाखण्ड को दूर करने में अहम भूमिका निभाई है। भारतीय समाज में जाति–पाति का भेदभाव विशाल फलक पर होता रहा है जो एक सामाजिक बुराई है। नानक वाणी में इसका विरोध दिखाई देता है, जिसके फलस्वरूप एक अच्छे समाज की नींव डाली जा सकती है। गुरु नानक वाणी में लिखा है :–

"मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एही बूझीऐ।"[11]

उनका मानना है कि सम्पूर्ण संसार के ग्रंथों का ज्ञान एक ही बात पर समाप्त होता है कि सभी मनुष्य एक ही भगवान की रचना है, एक ही माला के फूल हैं। उनमें कोई भेद भाव नहीं वे एक ही समाज के निर्माता हैं। उन्होंने सभी जीवों में परमसत्ता को विद्यमान मानते हुए मनुष्य की समानता का सन्देश दिया है। धर्म, जाति, नस्ल, रंग आदि असमानताओं से दूर रहते हुए नानक वाणी कुछ इस तरह का सन्देश देती हैः–

"सभ महि जोति जोति है सोइ।।

तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ।"[12]

आधुनिक समय में मानवीय समाज में अर्थ को महत्व देते हुए सामान्य मनुष्य को पीछे धकेला जा रहा है। क्योंकि आज के युग में नैतिक मूल्यों क पतन होता जा रहा है जिसका सीधा प्रभाव हमारे पर्यावरण पर भी पड़ रहा है। पूंजीवाद का प्रभुत्व आज चारों ओर दिखाई दे रहा है। लोग एक दूसरे के हिस्से को भी छीन रहे हैं जिससे समाज का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। किन्तु नानक वाणी में समाज के निर्माण का सन्देश दिखाई देता है अगर मनुष्य वाणी को आत्मसात करे तो समाज में नए उदाहरण स्थापित किए जा सकते हैं।

नानक वाणी ने हमेशा मनुष्य को मानवता का सन्देश दिया साथ ही साथ उसे समाज में जीवन यापन के तरीके तथा नैतिकता की भी शिक्षा दी है इन सभी विषयों के इलावा प्रकृति तथा परमसत्ता के अटूट संबंध को सिद्ध करते हुए उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के प्रति चेतना दिखाई है। अपने चारों ओर वातावरण के प्रति सजग रहते हुए उन्होंने अनेक उदाहरणों के माध्यम से पर्यावरण के तत्त्वों को अनायास ही प्रस्तुत किया है तथा संसार की प्रत्येक वस्तु में उस भगवान की सत्ता को स्वीकार किया है जिसके फलस्वरूप हमारा नैतिक दायित्व बन जाता है कि हम अपने पर्यावरण की रक्षा करें।

सन्दर्भ सूचीः–

1. मिश्र, जयराम, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, प्रयागराज, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2019, पृष्ठ 58

2. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, श्री अमृतसर, धर्म प्रचार कमेटी, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, पृष्ठ 01
3. वही, पृष्ठ 464
4. वही, पृष्ठ 08
5. वही, पृष्ठ 146
6. वही, पृष्ठ 472
7. वही, पृष्ठ 19
8. वही, पृष्ठ 463
9. वही, पृष्ठ 1108
10. वही, पृष्ठ 1107—08
11. वही, पृष्ठ 473
12. वही, पृष्ठ 13

सामासिक संस्कृति के विकास में श्री गुरु नानक देव का योगदान

नितिन मिश्रा*

भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है। एकता में अनेकता इसकी खास विशेषता हैं जो सामासिकता के नाम से अभिगृहीत हैं। सामासिक संस्कृति के विकास में गुरु नानक के योगदान से पूर्व हमें भारतीय संस्कृति एवं उसमें अंतर्निहित सामासिकता के गुण को भी समझ लेना चाहिए। संस्कृति क्या है इस पर अंतिम उत्तर मिलना संभव नहीं है। हमारी नजर में संस्कृति एक गतिशील प्रक्रिया है जो किसी एक काल–खंड की देन नहीं हैं बल्कि इसके निर्माण में सदियां लग जाती हैं। भारतीय संस्कृति की प्रकृति विकसनशील रही इसने न जाने कितनी सभ्यताओं, संस्कृतियों को अपने अन्दर समाहित कर समासिक रूप विश्व के सामने प्रस्तुत किया है। भारतीय सांस्कृतिक विविधता में एकता का सन्देश पूरे विश्व मे प्रसारित करती है।

आर्य जब भारत आये तो वे अपने साथ एक भिन्न संस्कृति एवं जीवन दर्शन लेकर आये। 'ऋग्वेद में जो देवता हैं वे प्रकृति के नाना रूपों और शक्तियों के प्रतीक हैं। आगे चल कर, उन्होंने कण–कण में समाये परमात्मा की अराधना की। प्रारंभ में वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के उपासक थे। सिन्धु घाटी सभ्यता और आर्यों के मिलन से एक ऐसी संस्कृति का निर्माण हुआ जिसे हम सामासिक संस्कृति कह सकते है दूसरे शब्दों में कहें तो इन दोनों संस्कृतियों के मिलन से भारतीय सभ्यता में सामासिक संस्कृति का सूत्रपात हुआ। हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी इसके बारे में कहते है– "भारतीय संस्कृति का रूप सामासिक है और उसकी प्रगति धीरे धीरे हुई है। एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व मोहनजोदड़ो आदि की सभ्यता तक पहुंचाता है तो दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बड़ी ही गहरी छाप देखने को मिलती है"[1]

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में भारत की विविधता में एकता को परिलक्षित किया गया है भारत की भौगोलिक भिन्नता, लोगो के भिन्न विचार इनके भिन्न आचार व्यवहार को ऋषि सहर्ष स्वीकार करते हुए कहता है कि हे माँ (पृथिवी) नानाप्रकार के धर्म के पालकों, बहुभाषी विद्वानों, जन साधारणों को आप निवास का स्थान देती है–

जन विभ्रती बहुधा, विवाचसं
नानाधर्माण पृथिवी यथोकसम [2]

अथर्ववेद में उल्लेखित 16 सूक्तः–

ता नरूप्रजारू सं दुहृता समग्रा
वाचो मधु पृथिवी घेहि मह्यम

की व्याख्या करते हुए बी. एन. पांडे कहते हैं कि "अथर्ववेद के इस पृथिवी सूक्त में ऋषि ने 'समग्र' शब्द का व्यवहार किया है यह राष्ट्रीय एकता कैसे प्राप्त की जा सकती है? आपस में विभिन्नता होना, अनेक भाषाओं का होना, अनेक धर्मो और जातियों का होना कोई त्रुटि नहीं है। अभिशाप के रूप में उसकी कल्पना उचित या मुनासिब नहीं

* शोधार्थी, हिंदी– विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

है। ऋषि की दृष्टि में इस विवधता का कारण भौतिक परिस्थिति है। नाना धर्म, नाना भाषाएँ, बहुधा जन ये सब यथोकसम् अर्थात अलग–अलग रहने के कारण अलग–अलग है। इस स्वाभाविक कारण में जूझना मनुष्य की मुर्खता है। ये स्थूल भेद कभी मिट जायेंगे, यह समझना भी भूल है। इसलिए इनके खिलाफ जेहाद छेड़ना बेवकूफी की निशानी है। ऋषि कहता है– जो भी इंसान इस भारत भूमि में पैदा हुए है, उन्हें इस भूमि पर एक सा अधिकार है।... बिना एकता के मातृभूमि का कल्याण असंभव है– पृथिवी को दुहने के लिए क्या पृथु ने जड़ –चेतन के सब वर्गों को एक सूत्र में नहीं बांधा था। बिना एक सूत्र में बंधे, बिना एकता के देश का कल्याण नहीं है। ... इस राष्ट्रीय एकता की कुंजी का मधु या बोली की मिठास है।[3]

इस तरह हम देखते है कि भारतीय सामासिक संस्कृति के बीज वेदों में ही पड़ गये थे जिसका विकास वर्तमान समय में भी पल्लवित पुष्पित हो रहा है। भारत की संस्कृति में सामासिकता बसी हुई है अगर भारत की एकता और संस्कृति को देखना है तो उसको सामूहिकता में ही देखा जा सकता है न कि उसके एकांगी रूप में। रविन्द्र नाथ टैगोर ने कहा है–"भारत महा–मानव सागर है जिसमें कितनी ही सदियों की पवन धाराओं का जल है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते है, उसमें सदियों से समन्वय की प्रक्रिया चल रही है। विभिन्न जातियों की संस्कृति के तत्त्व उसमे मिलते गये है और वह बहुत विशाल हो गयी है। यह हमारी बड़ी शक्ति है। इकबाल ने कहा था–'कुछ तो बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। वह 'कुछ बात' यही सांस्कृतिक समन्वय की शक्ति है।[4] यही शक्ति भारत को समृद्ध बनाती है और सभी को एकता के सूत्र में बाँधने का काम करती है।

'सामासिक' शब्द की व्युत्पति के सन्दर्भ में कामताप्रसाद गुरु का कथन है कि "दो या अधिक शब्दों का परस्पर सम्बन्ध बताने वाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर, उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतंत्र शब्द बनता है, उस शब्द को 'सामासिक' शब्द कहते है।[5]

डॉ. शिवनंदन प्रसाद के अनुसार "समास का अर्थ होता है योग या मेल। सामासिक संस्कृति दो या दो से अधिक संस्कृतियों का मिलनमात्र नहीं है । सामासिक का अर्थ है – मिलकर एक हो जाने वाली। जब दो या दो से अधिक संस्कृतियां मिलती हैं तब दो प्रकार की क्रियाएं होती है। संस्कृतियों के कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं – चाहे वह धर्मभावना हो, कला रुचि हो, साहित्य परंपरा हो या भाषा हो– जो मिलने वाली विभिन्न संस्कृतियों में समान रूप से स्वीकृत हो जाते हैं। उन तत्त्वों का अजनबीपन जाता रहता है। वे इन सभी संस्कृतियों में खप जाते हैं। दूसरी ओर कुछ तत्व ऐसे भी होते हैं जो कभी संस्कृतियों में समान रूप से स्वीकृत नहीं होते वे विभिन्न संस्कृतियों में अलग अलग या तो बने रहते हैं या कालांतर में विलीन हो जाते हैं। ... संस्कृतियों के समास होने पर कोई आवश्यक नहीं है कि समस्त संस्कृति (सामासिक संस्कृति) में विभिन्न पूर्ववर्ती संस्कृतियों के अवशेषांश अलग–अलग नहीं दिखाई पड़ेंगे। सामासिकता सापेक्ष शब्द हैं– 'प्रधान्येन व्यपदेशा भवन्ति।[6]

सामासिक शब्द का प्रयोग हमारे संविधान में भी हुआ है संविधान के अनुछेद 351 में कहा गया है कि भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह हिंदी का प्रसार बढ़ाएं, उसका विकास भी करें जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की

अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। इस प्रकार हम देखते है कि सामासिक संस्कृति एक या एक से ज्यादा भिन्न संस्कृतियों के मिलन से बनी एक नवीन संस्कृति का नाम है जिसमें सभी भिन्न तत्त्वों के गुण समाहित रहते हैं।

गुरु नानक देव और सामासिक संस्कृति

गुरुनानक देव जी का जन्म सन् 1469 को कार्तिक (नवंबर) पूर्णिमा के दिन तलवंडी नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता भट्टी राजपूत राय के लेखपाल थे। शिक्षित परिवार में जन्म लेने के कारण उनकी प्रारंभिक शिक्षा अच्छे विद्वानों के संरक्षण में हुई। उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत का ज्ञान अपनी बाल्यावस्था में ही अर्जित कर लिया था। अपनी विद्वता के कारण ही उन्होंने नवाब दौलत खान लोदी की सेवा में, भण्डार गृह के रक्षक के रूप में कार्य किया। परंतु उनकी अंतरात्मा इन भौतिक सुख–सुविधाओं में कहाँ टिकने वाली थी। उन्होंने नौकरी–पेशा छोड़ धर्म के मूल तत्त्व को समझने हेतु विश्व के अनेकों देशों में भ्रमण किया। अपने जीवन में उन्होंने भारत, सीलोन, ईरान और अरेबिया के सभी देशों की यात्राएं की। वे जहाँ भी गये अपने मौलिक विचारों से सभी को प्रभावित करते रहे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने पानीपत के शेख शरफ से, मुल्तान के पीर शेख ब्रहम (इब्राहीम), पाकपट्टन में बाबा फरीद के उत्तराधिकारी से और अन्य कई साधू संतो से धर्म के मूल तत्त्व सम्बन्धी चर्चाएँ की तथा अपने मौलिक विचारों से उनको भी प्रभावित किया। गुरुनानक का आविर्भाव मध्यकालीन भारत के उस दौर में हुआ जहाँ धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण बनाने और मिटाने का भरसक प्रयास किया जा रहा था। एक ओर कट्टरवादी मुसलमान अपने को श्रेष्ठ समझ कर इस्लाम का झंडा उठाने को प्रतिबद्ध थे तो वही दूसरी तरफ भक्तिकालीन आन्दोनल एवं संत महात्मा के विचार जनता में समन्वयशीलता को प्रोत्साहित कर रहे थे। इसी दौर में कबीर, अकबर, रैदास जैसे सहृदय संत कवि भी थे जिन्होंने धर्म के कठमुल्लापन को अस्वीकार कर मानवता पर बल दिया तथा सूफियों के प्रेम रूपी तसव्वुफ को आत्मसात कर उन सभी मान्यताओं, तर्कों, व्यवहारों को अस्वीकार कर दिया जो मनुष्य–मनुष्य में भेद करते थे। नानक अपने समय के समाज से अवगत थे। वह देख रहे थे कि लोग धर्म के नाम पर आपस में लड़ रहे है। एक दूसरे को छोटा–बड़ा बताकर आपस में वैमनस्य पैदा कर रहे है और धर्म के मूल तत्त्व से सभी वंचित है। आदि ग्रन्थ में संकलित 'माझ–दी–वार' में अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए नानक कहते हैं कि–

कलयुग एक कटार है शासक है कसाई
धर्म पंख फैलाकर कही उड़ गया है
झूठ की अंधेरी रात हर ओर फैली है, और
सच का चाँद कही भी निकलता दिखाई नहीं देता [7]

गुरु नानक के युग में भारतीय समाज अनेक धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त था जिनमें शैव, शाक्त, वैष्णव के अलावा जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म को मानने वाले धर्मावलम्बी भी मौजूद थे। सामान्य जीवन में तांत्रिक आम जनता को चमत्कार दिखाकर भक्ति शून्य कर रहे थे। हिन्दू धर्म में बहुदेववाद और कर्मकाण्ड प्रधान हो गया था इन सब से आम जनता भक्ति शून्य हो रही थी। नानक की अंतर–आत्मा इससे बेचैन हो उठी और धर्म के वास्तविक अर्थ को प्रकट करने के लिए उन्होंने सभी धर्मों के मूल तत्त्वों को आत्मसात कर एक ऐसे धर्म की नींव रखी जिसे कालांतर में सिक्ख धर्म कहा गया।

सिक्ख मत के संस्थापक गुरुनानक को दो परस्पर विरोधी मतों (हिन्दू–मुस्लिम) बीच शांति दूत के रूप में देखा जाता है। आज भी पंजाब में गुरु को श्रद्धापूर्वक याद किया जाता है और उनकी याद में ये ही पंक्तियाँ दोहराई जाती है कि–

नानक शाह फकीर, हिन्दू का गुरु मुसलमान का पीर

सिक्ख धर्म हिन्दू–मुस्लिम धर्मों का संगम है या यूँ कहे कि दोनों धर्मों के वे मूल तत्त्व जिनसे मनुष्य का कल्याण हो, मानवता का विकास हो, आपस में सहिष्णुता बढ़े आदि विचार ही सिक्ख धर्म की मान्यताओं के आधार है परन्तु यह दोनों धर्मों से अलग है। कई विद्वानों ने इस धर्म को भक्तिकालीन संत परंपरा की शाखा से जोड़ कर देखा है तो कुछ विद्वान इसे इस्लाम एवं सूफी आन्दोलन का पर्याय मानते है। इस बात से झुठलाया नहीं जा सकता कि गुरु नानक ने तत्कालीन भक्ति आन्दोलन जो उस समय प्रचलित था उससे प्रेरणा जरूर ग्रहण किया हैं। सिक्ख धर्म के मूल सिद्धांत, दर्शन आदि का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इसकी अपनी कुछ भिन्न विशिष्टाएँ भी है जो इसे हिन्दू–मुस्लिम धर्म के करीब तो लाती है लेकिन उनसे अलग अपना अर्थ भी रखती है। सामासिकता के इन्हीं गुणों के कारण यह धर्म इतने कम समय में भी धार्मिक आन्दोलन का रूप ले लेता है और विश्व के कोने–कोने तक फैलता है। रामधारी सिंह दिनकर गुरु नानक के बारे में कहते है "खालसा धर्म (शुद्ध धर्म) हिन्दू और मुस्लिम, दोनों धर्मो से अलग है।[8] सिक्ख धर्म एक ईश्वर एक सृजनहारा एक परमात्मा में विश्वास पर जोर देता है। गुरु नानक ने अपने अनुयायियों को पुर–जोर तरीके से अद्वैतवाद का उपदेश दिया था। उन्होंने परमात्मा को इक्क (एक) बताया इसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं। गुरु नानक के परमात्मा संबंधी विचार स्पष्ट रूप से 'जपुजी' में देखने को मिलते है। गुरु नानक के एक ईश्वर और इस्लाम के एकेश्वरवाद में अंतर है । एक तरफ जहाँ कुरान में लिखा है कि ईश्वर सातवें आसमान पर रहता है और मनुष्यों के सुख–दुःख भक्ति–अभक्ति से उसका संबंध है तथा मनुष्य और ईश्वर अलग–अलग है मनुष्य का कार्य उसको प्राप्त करना है। वही नानक का ईश्वर निराकार पुरुष है जो इस ब्रह्माण्ड का सृजन भी करता है और वह मनुष्यों के भीतर भी बिराजमान है, वह कण–कण में व्याप्त है। यही इस्लाम और गुरु नानक के ईश्वर के अस्तित्त्व संबंधी विचार में मौलिक भिन्नता को दर्शाता है। ईश्वर के अस्तित्त्व संदर्भ में उनका मत है कि–

प्रारंभ में अवर्णनी अन्धकार था
तब न तो पृथ्वी थी और न स्वर्ग था किन्तु केवल ईश्वर की अतुलनीय सत्ता थी
तब दिन, रात चंद्रमा, सूर्य भी नहीं थे, ईश्वर शून्य में चिंतन कर रहा था।[9]

अथवा

आगम ईश्वर स्वयं ही वक्ता और उपदेशक था।
वह अदृश्य होते हुए भी वह सब कुछ था
जब वह प्रसन्न हुआ तो उसने संसार की रचना की
बिना किसी सहारे के उसने आकाश स्थापित किया
उसने ब्रह्म, विष्णु और शिव की रचना की और धन की लिप्सा का विस्तार किया ।
उसने कुछ ही लोगो को गुरु के वचन बताएं
उसने अपना आदेश दिया और सब पर नजर रखी।
उसने महाद्वीपों, ब्रह्मांडों अन्य क्षेत्रों से प्रारंभ किया और जो कुछ छुपा था उसे

सामने लाये
उसकी सीमा कोई नहीं जानता [10]

सिक्ख धर्म एवं भारतीय वेदांत में समानता बताते हुए रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि "नानक का सृष्टि–विकास का सिद्धांत वेदांत का सिद्धांत है। वे कर्म को मानते है एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश के त्रिदेवत्त्व में विश्वास करते है। उनका गुरु–परंपरा में जो विश्वास है वह सूफी मत से खूब पुष्ट हुआ दिखता है।"[11]

सामासिक संस्कृति के विकास में गुरु नानक का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं उन्होंने अपनी शिक्षा से केवल हिन्दू–मुस्लिम धर्मों को ही नहीं अपितु दूसरे धर्मो के उपासकों को भी आकर्षित किया। नानक ने धर्म के व्यावहारिक पक्ष पर बल देते हुए अपने मौलिक विचारों से एक ऐसा मंच तैयार किया जहाँ पर सभी धर्मों एवं जातियों के लोग आपस में मिल सकते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति किसी भी जाति–धर्म का हो उसे आत्मनियंत्रण, विनम्रतापूर्ण व्यवहार, ईश्वर–स्मरण, आत्म–मीमांशा पर बल देना चाहिए। धर्म, भाषा, लिंग, जाति के आधार पर होने वाले सभी भेद–भावों को अस्वीकार करते हुए उन्होंने जीवन एवं समाज में समरसता पर बल दिया। नानक के इन्हीं प्रयासों से सामासिक संस्कृति का विकास उत्कृष्ट रूप में संभव हुआ जो आज भी हमारे सामने लंगर,संगत और पंगत के रूप में दिखाई देता हैं। आज भी हम अगर किसी गुरुद्वारा में चले जाए तो वहाँ बिना किसी भेद–भाव के गरीब–अमीर सबको भरपेट भोजन कराया जाता हैं और उनके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। गुरु की शिक्षा व्यक्ति के हृदय परिवर्तन पर बल देती है जब तक व्यक्ति का हृदय परिवर्तित नहीं होता तब तक उसके व्यवहार में परिवर्तन करना संभव नहीं है। वह किसी भी धर्म का अनुयायी हो जब तक उसके भीतर करुणा, त्याग, प्रेम, सहिष्णुता, आत्म निग्रह का भाव नहीं होगा तब तक समाज में समरसता का विकास नहीं हो पायेगा।

गुरु नानक ने कहा हैः– विनम्रता का व्यवहार करो, घमंड त्यागों, मन पर नियंत्रण रखो, ईश्वर का स्मरण करो। ईमानदार रहो, पांचो बुरी विषय वासना पर नजर रखो और नियन्त्रण रखो संतोषी बनो।[12]

प्रो. ताराचंद जी कहते हैः– नानक दो ही चीजों के गुण गाते नहीं थकते एक सदाचार की प्रशंसा और दुराचार की निंदा तथापि वे यह याद करने की सावधानी बरतते है कि सिर्फ आदेश और निषेधों की सूची पर्याप्त नहीं है और आवश्यक रूप से नैतिक आचरण आंतरिक आत्मा का सही रुख है। वे ये भी जानते हैं कि पुरुष और स्त्री जो संसार में रहता है और अपने व्यवसायों में काम करता है और जो धर्म केवल संसार त्यागने वाले फकीर और साधु के लिए उपयुक्त है वह सामाजिक कार्यों में लगे सक्रिय समुदाय का धर्म नहीं हो सकता। इसलिए वे अति तपस्या और इन्द्रियों की अनियंत्रित तुष्टि के बीच के रास्ते की पैरवी करते हैं।[13]

गुरु नानक के दार्शनिक विचार की बात करें तो वह समकालीनता को आत्मसात करते हुए सरल मार्ग की खोज करते हैं। नानक का ईश्वर, इस्लाम के ईश्वर से भिन्न हैं उनके यहाँ ना तो एकेश्वरवाद की कट्टरता के लिए जगह है और न ही सहस्त्र चक्र भेदन के लिए शारीरिक हठयोग। वे बार–बार यह सन्देश देते हैं कि राम या विष्णु को किसी भी नाम से पुकारों ईश्वर एक है। सिक्ख धर्म का जीवन मूल्य प्रेम है। यह एक ऐसा मूल्य है जिसको अपनाकर सामाजिक और सांस्कृतिक एकता की नींव रखी जा

सकती है। गुरु नानक का मानना था कि जीवन की लय को खत्म करने या इसे कुरुपित करने वाली अगर कोई चीज है तो वह असहनशीलता, घृणा, असहिष्णुता, प्रतिस्पर्धा है। हम जानते है कि नकारात्मक प्रतिस्पर्धा की भावना किसी भी समाज में भेद–भाव को जन्म देती है। प्रतिस्पर्धा की मूल भावना किसी को अच्छा किसी को बुरा, किसी को छोटा किसी को बड़ा बताने की है। इसलिए नानक ने प्रतिस्पर्धा की जगह प्रेम पर बल दिया क्योंकि प्रेम से ही जीवन में समरसता, सहिष्णुता, भ्रातृत्व की भावना पैदा होती है और यह भावना समाज और संस्कृतियों के सभी भेदों को मिटा कर समन्वय को जन्म देती है। सिक्ख धर्म में प्रेम को मानवीय एकता सूत्र के रूप में पहचाना गया है। नानक हिन्दू–मुस्लिम धर्मों में सहिष्णुता एवं धर्म के मूल तत्त्व को समझते हुए कहते हैः– जब कोई रह जाता है और कोई हट जाता है तब ही आराम से रहना संभव होता है किन्तु जब दोनों स्थापित रहते है तो संघर्ष और गड़बड़ी होती है। दोनों असफल हो गये थे, तब ईश्वर ने आदेश दिया, क्योंकि कई लोग अपने साथ कुरान लेकर एकता कायम करने के लिए गये, किन्तु एकता कायम करने में सफल नहीं हुए। तुम मेरे बेटे हो, संसार में जाओ सब अपने रास्ते से भटक गये है, उन्हें सही रस्ते पर लाओ। तुम संसार में जाओ और उन्हें कहो कि वे एक ही नाम का जप करें, नानक दोनों के सर पर तीसरे के रूप में बैठ जाओं। सत्य के धर्म की स्थापना करो और बुराई को हटाओ, दोनों में से जो भी तुम्हारे पास आये, उसका स्वागत करो, अनावश्यक रूप से जीवन मत लेने दो, गरीब की रक्षा करो, याद रखो कि ईश्वर चौरासी योनियों में विद्यमान है।[14] मानवजाति के कल्याण के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धन एवं आजीविका में से दान करें। वह लाचार, विकलांग एवं गरीबों के प्रति करुणा का भाव रखे। सिक्ख धर्म में दान की विशेषता यह है कि यह किसी भी धर्म एवं जाति से जुड़ा हुआ नहीं है। दान का पात्र कोई भी व्यक्ति हो सकता है यहाँ उसका धर्म, मजहब, जाति महत्त्व नहीं रखती।

गुरु ग्रन्थ–साहिब सिक्ख समुदाय का धार्मिक ग्रन्थ है। इसमें गुरु नानक से लेकर दसवें गुरु तक सभी के मौलिक विचारों को एक साथ रखा गया है। यह एक मात्र ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें सिक्ख समुदाय से इतर उन सभी संतो की वाणियों का संग्रह किया गया है जिन्होंने मानवता के लिए संघर्ष किया। गुरु ग्रन्थ साहिब में कबीर, दादू, पीपा, धन्ना, रैदास, राम देव सभी संतो के मत लिखित है। इसमें सभी धाराओं का संगम विद्यमान है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गुरु ग्रथ साहिब ही सिक्खों का ग्यारहवां गुरु भी है। इसमें संकलित सभी शब्द गुरु के शब्द है। यह एक मात्र ऐसा ग्रथ है जो स्वं में गुरु के अस्तित्त्व को प्रकट करता है।

गुरु नानक ने व्यावहारिक स्तर पर संगत, पंगत और लंगर पर विशेष महत्त्व दिया है। संगत का अर्थ है ईश्वर की आराधना में उपस्थित हुए लोग। पंगत यानी एक साथ बैठ कर खान–पान करना। साझा रसोई से निर्मित खाना ही लंगर है। लंगर में हर से थोड़ा–थोड़ा खाद्य पदार्थ एकत्रित किया जाता है और उसका भोजन बना कर सबको बांटा जाता है। संगत, पंगत और लंगर आधुनिक समय में धर्मनिरपेक्ष तथा सार्वभौमिक भाईचारे का सूचक है। इसमें किसी भी जाति, धर्म, संप्रदाय, अमीर–गरीब आदि भेदों को महत्त्व नहीं दिया जाता। भारतीय समाज में यह आम व्यवहार है कि हिन्दू अपने रसोई घर में मुसलमान एवं अन्य धर्मों के लोगों को आने नहीं देते तथा खाना भी भिन्न थाली में देते है और उसे अलग ही रखते है। मुसलमान भी हिन्दू को काफिर समझते है और

उनके बीच रोटी–बेटी का सम्बन्ध कम ही देखने को मिलता है परन्तु केवल सिक्ख धर्म ही ऐसा धर्म है जिसमें सामुदायिक रसोई एवं लंगर में न तो जाति का महत्त्व है न ही किसी धर्म का न वहां कोई गरीब है न कोई अमीर। हम जानते है कि नानक ने जाति व्यवस्था को पूरे तौर पर अस्वीकार कर दिया। सही अर्थों में कहा जाए तो सिक्ख धर्म का उदय ही समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों के विरोध स्वरूप हुआ था। नानक समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं जड़ताओं एवं मानव विरोधी व्यवस्था के खिलाफ थे। नानक ने वर्ण व्यवस्था एवं जातिवादी विचार को विकृत बताते हुए उसकी निंदा की। नानक ने चारों जातियों को एक करके सिक्ख धर्म को पूर्ण एवं सार्वकालिक बना दिया। सिक्ख धर्म में लंगर, पंगत एवं संगत वर्ण व्यवस्था विरोध का व्यावहारिक रूप ही है।

नानक कहते है :–

मैं चार जातियों में से किसी का भी नहीं हूँ।[15]

नानक सच्चा मुस्लमान उसी को मानते है जिमसे दया, परोपकार, सहिष्णुता की भावना है । वें कहते है–

दया को अपनी मस्जिद, निष्ठा को नमाज पढ़ने की बिछात, और
जो न्यायपूर्ण और वैध है उसे अपनी कुरान बनाओ
विनम्रता अपना खतना, सज्जनता अपना रोजा बनाओ,
तभी तुम मुसलमान कहलाओगे
सदाचरण को अपना काबा, सत्य को अपना अध्यात्मिक गुरु
सत्कार्य को अपना धर्म और अपनी नमाज बनाओ
ईश्वर इच्छा को अपनी सबीह बनाओ, और
नानक कहता है कि ईश्वर तुम्हारा सम्मान बनाये रखेगा।[16]

इस तरह हम देखते है कि नानक ने हिन्दू–मुस्लिम एकता का सूत्रपात किया। सभी धर्मों के लोगों को एक सामान्य मंच दिया जहाँ वह अपने–अपने ईश्वर की आराधना कर सकते थे। हिन्दू–इस्लाम धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए दोनों धर्मों के अनुयायियों को उपदेश दिए तथा समाज में एकता स्थापित करने के लिए गुरुद्वारा, लंगर, पंगत आदि की व्यवस्था करी। सिक्ख धर्म की आपसी भाई–चारे तथा ईश्वर एक होने की बातों ने भारतीय समाज में जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया। जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाकर सिक्ख गुरु पारम्परिक जाति प्रथा के वर्चस्व को तोड़ने में सफल हुए। सभी धर्मों की समानता पर बल देने तथा गुरु ग्रन्थ साहिब में हिन्दू भक्तों तथा मुसलमान संतों के श्लोकों को सम्मिलित करने के काम ने सच्चे विश्व–बंधुत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया। दो संघर्षरत परम्पराओं हिंदुत्व व इस्लाम के बीच शांति संधि के प्रयास द्वारा सिक्ख गुरुओं ने श्रेष्ठतम मानवतावाद तथा आध्यात्मिक क्रियाओं तथा परमात्मा (सर्वोपरि सच्चाई) के दर्शन पर विशेष बल दिया। ऐसे समय में जब एक धर्म दूसरे धर्म को हीन और अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के विवाद आरम्भ करने में लगा हो तो तीसरे गुरु की निम्न पंक्तियाँ धार्मिक संघर्ष को सुलझाने का काम करती हैः– सब धर्मों में श्रेष्ठतम धर्म है परमात्मा का नाम लेना तथा पवित्र कार्यों को करना।

संदर्भ सूची :–

1. सुनीति कुमार चटर्जी, भारत में संस्कृति लेख
2. अथर्ववेद, पृथिवी सूक्त 45, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. भारतीय संस्कृति मुगल विरासत औरंगजेब के फरमान, बी.एन पांडे, पृष्ठ संख्या 18
4. भारत इतिहास और संस्कृति, गजानन माधव मुक्तिबोध, तीसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 14
5. हिंदी व्याकरण, कामताप्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, बारहवा संस्करण, पृष्ठ 294
6. Bharatdiscovery.org/india/हिंदी साहित्य में सामासिक संस्कृति के तत्त्व, डॉ शिनंदन प्रसाद
7. सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन गुरु ग्रन्थ साहिब, महीप सिंह, पृष्ठ संख्या 36, राजपाल प्रकाशन
8. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, तीसरा संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 292
9. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, ताराचंद, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, प्रथम हिंदी संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 161
10. वही, पृष्ठ संख्या 161
11. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, तीसरा संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 293
12. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, ताराचंद, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, प्रथम हिंदी संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 165
13. वही,
14. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, ताराचंद, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, प्रथम हिंदी संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 160
15. भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, ताराचंद, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, प्रथम हिंदी संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 164
16. वही

श्री गुरू नानक देव : मैथिलीशरण गुप्त और अलामा मुहम्मद इकबाल के काव्य में

नवीन कुमार नीरज*

गुरू नानक को नजदीक से जानने पर यही प्रतीत होता है कि गुरू नानक अनूठे हैं, अद्‌भूत हैं। एक ही सतनाम है। सब जीव–जगत उनकी ही संतान है।...जहाँ जाति, वर्ग, धर्म को लेकर इतने झगड़े हों–वहाँ एक संगत और एक पंगत का रास्ता दिखाकर गुरू नानक मानव जाति के सच्चे उद्धारक बन जाते हैं। उनकी लंबी उदासियाँ (यात्राएँ) ईश्वर का सच्चा स्वरूप का ज्ञान लोगों तक पहुँचाने के लिए ही थीं। उन्होंने अपने जीवन से लोगों को बताया कि जब सब कुछ उस मालिक का ही है तब उनके बनाए संसार से तुम दूरी बनाकर उन तक कैसे पहुँचेगा? उन्होंने घर–गृहस्थी को नहीं त्यागा, न ही उन्होंने कर्म करना छोड़ा। उनका जीवन, उनका उपदेश मानव जीवन के लिए प्रकाश–स्तंभ है। उनके सामने सहज ही हमारा सिर झुकता है।

गुरू नानक का जैसा व्यक्तित्व है, हर कोई उनसे अपना लगाव महसूस करता है। उनके यहाँ मानव द्वारा निर्मित जाति, धर्म, दर्शन की हर सीमाएं ढह जाती हैं। इसलिए तो वे हर किसी के प्रिय हो जाते हैं। लेखक–कवियों ने भी उन्हें श्रद्धा के साथ याद किया है। हिंदी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित खण्डकाव्य 'गुरूकुल' में सभी सिक्ख धर्म गुरूओं को याद किया गया है। इसमें प्रत्येक गुरू को लेकर अलग–अलग अध्याय में कविता लिखी गई है। इस आलेख में 'गुरूकुल' खण्डकाव्य से 'गुरू नानक' कविता की चर्चा है।

उर्दू के महान शायर एवं दार्शनिक अलामा मुहम्मद इकबाल भी गुरू नानक को सम्मान के साथ याद करते हैं। 'नानक' नामक उनकी एक गज़ल है। यह ग़जल गुरू नानक के महत्त्व को रेखांकित करती है।

कविता के जरिए दोनों कवि अपने अंदाज में गुरू नानक के महत्त्व को उद्‌घाटित करते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त हिंदी के राष्ट्रकवि हैं। वे भारतीय संस्कृति के चितेरा हैं। नानक को भी वह उसी दृष्टि से देखते हैं। उनकी नज़रों में, नानक ने अपने आत्मबोध से पंचनद को फिर से धन्य किया है। नानक सिर्फ उसी लोक पर नज़र टिकाए रखकर इस लोक की उपेक्षा नहीं करते, बल्कि इस लोक को भी साधते हैं। गुप्त जी इसका भी जिक्र करते हैं कि नानक वेदी वंश में पैदा हुए थे। 'इस बारे में गुरू गोविंद सिंह ने विचित्र नाटक में लिखा हैं :

तिन बेदीअन की कुल बिखै, प्रगटे नानक राए।
सब सिखन को सुख दऐ जह तह भए सहाए।। (5–4)'[1]

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

गुप्त जी की 'गुरू नानक' कविता में उनके सम्पूर्ण जीवन को समेटा गया है। गुरू नानक आत्मबोध से चैतन्य पुरूष हैं। उनकी साधना का आरंभ संवेदन से होता है और आत्म–निवेदन में उसका अंत। आत्मबोध पाकर नानक के लिए दूसरा कोई कहाँ रह जाता है। सभी प्राणी तो उस मालिक की ही संतान हैं। खेत चर जाने पर भी वे यही गाते थे :

"भर भर पेट चुगो री चिड़ियो,

हरि की चिड़ियां, हरि का खेत!"[2]

जिसका खेत है, उसी की चिड़ियाँ है; ऐसी प्रतीति में अपने और गैर की सीमा कहाँ रह जाती है–न कोई अपना रह जाता है, न कोई गैर। यह बात वैरागियों के लिए तो सही हो सकती है, पर गृहस्थ इस बात को कैसे स्वीकारे? पर नानक तो गृहस्थ भी थे, गृहस्थ होकर त्यागी भी। न वे मोह में आसक्त थे, न ही वे निस्नेह थे। उनके दो पुत्र हुए और वे दोनों उनके दो भावों के प्रतिनिधि थे। श्रीचन्द्र त्यागी थे–उदासी मत प्रवर्तक, तो लक्ष्मीदास संग्रही थे–संसारी थे, गृहस्थ थे। दोनों ने अपने जीवन का रास्ता स्वयं बनाया। गुरू नानक की महिमा ही है कि पुत्रवान होकर भी उन्होंने एक उदार आदर्श प्रस्तुत किया, अपना उत्तराधिकारी पुत्र को नहीं, बल्कि योग्य शिष्य को बनाया।

यह गुरू नानक की करूणा ही थी कि उन्होंने अपने घर–परिवार को छोड़कर लोक को अपनाने के लिए लंबी–लंबी यात्राएं की। एक सतनाम की शिक्षा देने वे निकल पड़े थे। ये यात्राएं सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं रही। वे भारत के बाहर भी गए। उन्होंने श्रीलंका, तिब्बत, मध्य एशिया के कई देशों की यात्राएं की।

गुप्त जी की नजरों में उनकी ये शिक्षाएं वेद विहित, वेदांत विशिष्ट ही थीं, जिसे उन्होंने सरल शब्दों में सबके सामने रखा। गुरू नानक के ये उपदेश उसी पुरानी परंपरा के नए रूप हैं, जो वैदिक काल से भारत की भूमि पर चले आए हैं। ये उसी वैदिक मंत्र की गुंज है, जिसे दृषदूती के तट पर ऋषियों ने गाए थे। गुरू नानक ने उसी भाव को अपनी भाषा में सब जन तक पहुँचाया। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा स्पष्ट शब्दों में इसकी वकालत की सभी मनुष्य उसी एक ईश्वर की संतान है और सबको शुभ कर्म करने का समान अधिकार है।, उन्होंने ज़ोर देकर कहा (गुप्त जी के शब्दों में),

सारे, कर्मकाण्ड निष्फल हैं,/न हो शुद्ध मन कि यदि भक्ति,

भव्य भावना तभी फलेगी/जब होगी करने की शक्ति।

यदि सतकर्म नहीं करते हो,/भरते नहीं विचार पुनीत,

तो जप–माला–तिलक व्यर्थ है,/उलटा बन्धन है उपवीत।[3]

उच्च कुल में जन्म लेने से बात बनने वाली नहीं है, मुख्य बात है भाव और कर्म उच्च होने चाहिए। जिसमें यह बात होगी, वही उस 'एक ओंकार सतनाम' तक पहुँचेगा। किसी को कोई विशेषाधिकार नहीं मिला है। सब एक ही पिता की संतान हैं, न कोई ऊँच है, न कोई नीच। कोई भी घृणा के योग्य नहीं है। सब मिल–जुलकर भाईचारे के साथ

रहो और जगत में कर्म करते हुए 'उस एक' तक पहुँचो। किसी अन्य चीज़ में समय मत बर्बाद करो, क्योंकि काल से तुम बच नहीं सकते, उससे कोई नहीं बच सकता।

गुरू नानक जहाँ भी गए, निर्भय होकर अपनी बात कहते रहे। उनकी हर वाणी सीधे उनके हृदय से निकली थी। उन्होंने जो भी महसूस किया, उसे कहा। उन्हें किसी का डर नहीं था। बाबर को भी वे यह कहने से नहीं हिचकिचाए,

"औरों की छीना झपटी कर

भरता है वह अपना पेट!"[4]

गुरू नानक गीतों के माध्यम से–देश–विदेश घूम–घूमकर, उसी परम पिता की याद में डूबे रहकर–सबको उसके नाम का, उसकी महिमा का रसपान कराते रहे। अपनी वाणी सब तक पहुँचाते रहे। उनके लिए सब एक समान था। लेकिन उन्हें योग्य लोगों की पहचान भी थी। यह अचरज की बात नहीं है कि उनका प्रथम शिष्य लालो, बढ़ई था।[5]

हुए प्रथम उनके अनुयायी/शूद्रादिक ही श्रद्धायुक्त,/ग्लानि छोड़ गुरू को गौरव ही

हुआ उन्हें करके भय–मुक्त।/छोटी श्रेणी ही में पहले/हो सकता है बड़ा प्रचार;

कर सकते हैं किसी तत्व को/प्रथम अतार्किक ही स्वीकार।/समझे जाते थे समाज में

निन्दित; घृणित और जो नीच, /वे भी उसी एक आत्मा को/देख उठे अब अपने बीच।[6]

यह विचारने का विषय है कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जिसे निन्दित, घृणित और नीच कह रहे हैं, दरअसल उन्हें इसकी संज्ञा किनसे मिली थी (उन लोगों को छोड़कर जो अपराधी प्रवृत्ति के थे)? इस पर विचार किए जाने पर यही लगता है कि यह उसी धर्म और संस्कृति की उपज है, जिनके लिए कवि के मन में गहरा लगाव है। पर नानक के लिए तो सभी बराबर थे। उनके मन में कोई श्रेणियां नहीं बनी थीं, उन्हें तो बस योग्य लोगों की तलाश थी–जो तैयार थे, उस अन्तिम यात्रा पर चलने के लिए। वे लोग जो उन गुणों को धारण करते थे–जो सहायक होता है, परमात्मा से मिलने के लिए। वे लोग जो सरल थे, सहज थे, विनयशील थे, ईमान की कमाई खा रहे थे। जिनमें अभिमान नहीं था, जो अपना सब कुछ परमात्मा को अर्पण करने को तैयार थे। वही तो गुरू नानक के वचनों के मर्म को समझ पाए और उनके द्वारा एक काफिला बनता गया। ऐसे लोगों में उनकी तादाद बड़ी थी, जो तथाकथित भारतीय परंपरा में नीचे के श्रेणी से आते थे।

अलामा मुहम्मद इकबाल गुरू नानक को अन्य तरह से याद करते हैं। वे गुप्त जी की तरह उनके जीवन में नहीं जाते। वे तो उनके बताए रास्ते को केन्द्र में रखकर उसके महत्त्व को रेखांकित करते हैं। मुहम्मद इकबाल की नज़रों में गुरू नानक का एकेश्वरवाद का विशेष महत्त्व है। वे गुरू नानक के साथ–साथ गौतम (महात्मा बुद्ध) को भी याद करते हैं। गुरू नानक और बुद्ध में वे समानता देखते हैं। उनकी 'नानक' गज़ल में यही बात प्रमुखता से उभरती है कि इस देश ने कितनी आसानी से बुद्ध को भुला दिया, उनके कहे को, उनके उपदेश को बिसरा दिया।

कौम ने पैग़ामे गौतम की ज़रा परवाह न की

कदर पहचानी न अपने गौहरे यक दाना की[7]

बुद्ध के दिए गए रत्न को इस देश में कोई कद्र नहीं हुई। बुद्ध ने अस्तित्व के जिन रहस्यों को प्रकट किया था, उसे इस देश ने अपने बीच से मिटा दिया। लेकिन इस देश को फिर भी नाज़ था। जिन चीज़ों का नाज़ था, वे सारी मन के ख़याली बातें थीं। भारत में हमेशा तथ्य को झुठलाया गया। यह इस देश की फितरत रही कि इसने प्रकाशमान, सबके लिए कल्याणकारी बातों से अपने को दूर कर लिया। यहाँ न जाने कितने ही प्रतिभाशाली रत्न पैदा हुए जिन्होंने सत्य के किरण को इस धरती पर उतारा, लेकिन यह देश उनकी कद्र करना नहीं जाना। इस देश में सबके लिए जो कल्याणकारी हो–ऐसी बातों के लिए जगह नहीं है। यहाँ इंसान श्रेणियों में बँटा हुआ है। और ये श्रेणियाँ कर्म से नहीं जन्म से तय होती हैं। जो नीचे के श्रेणी से हैं, उनके लिए बदकिस्मती का कोई अंत नहीं है, अभिशाप उनका पीछा छोड़ता नहीं जान पड़ता। यह देश इंसान के दर्द को नहीं समझता। ब्रह्मणवाद का अभिशाप इस देश का पीछा नहीं छोड़ता। बुद्ध के उपदेश को इस देश ने झुठला दिया। लेकिन युगों बाद एक बार फिर से इस देश में रौशनी की किरण फूटी। पंजाब में वह लाल पैदा हुआ, जो सबके लिए एक कल्याणकारी मार्ग लेकर आया। वह लाल गुरू नानक हैं, जो एकेश्वरवाद का पैगाम फिर से लेकर आए। ऐसा मार्ग जो अपने में सबको समाहित कर लेता है। जिसमें हर कोई समान है। जहाँ अभिशापपूर्ण जाति और वर्ग व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं है।

फिर उठी आख़िर सदा तौहीद की पंजाब से

हिंद को इक मरदे कामिल ने जगाया ख़ाब से।[8]

गुरू नानक ने फिर से एक बार इस देश को झंझोरा। उन ख़यालों से बाहर निकाला, जिससे सबका कल्याण नहीं था। बुद्ध के बाद गुरू नानक ही थे जिन्होंने अपने धर्म का प्रवर्तन कर ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग सबके लिए सुलभ बनाया। जाति और वर्ग की बेड़ियों में जकड़े विशेषाधिकार से रहित आम जन को ईश्वर के नजदीक ला दिया। अब ईश्वर तक पहुँचना किसी जाति या वर्ग का विशेषाधिकार नहीं रहा। अब तो जिनके पास भी ईमान था, वह सब लोग उस पथ पर चल सकते थे।

मैथिलीशरण गुप्त नानक को वेद की परंपरा का हिस्सा मानते हैं। वे इस बात का भी जिक्र करते हैं कि वे वेद कुल में जन्में थे। वहीं मुहम्मद इकबाल गुरू नानक को वेद की परंपरा से अलग बुद्ध की परंपरा से जोड़ते हैं। क्योंकि बुद्ध ने तब भी वेद की परंपरा से अलग एक क्रांतिकारी धर्म का प्रवर्तन किया था, जिसमें सबके लिए दरवाज़ा खुला था। बुद्ध भी परंपरा विरोधी थे और नानक भी। बुद्ध ने भी घूम–घूमकर अपने मत का प्रचार किया था। उन सबको मदद पहुँचाई थी, जो कहीं बीच राह में अटक गए थे। नानक भी यही करते हैं। नानक भी घूम–घूमकर उन लोगों तक पहुँचते हैं, जो कहीं बीच में अटके हुए थे। यह बुद्ध और नानक की ही करूणा थी जिसने उन्हें सभी प्राणियों के कल्याण हेतु एक उदार मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रेरित किया।

परंपरा की अनिवार्यता में कोई इतना क्रांतिकारी कहाँ हो सकता है, जितना बुद्ध और नानक थे, जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त नानक को जगह देते हैं। यह अलग बात है कि परंपरा भंजक भी अनजाने ही परंपरा का निर्माण करता है, और अंततः उसी परंपरा में गिना जाता है, जिसको उसने तोड़ा था। इस रूप में बुद्ध और नानक दोनों ही परंपरा–भंजक की कड़ी में गिने जाते हुए भी भारतीय परंपरा में आते हैं। लेकिन यह भी सही है कि इस तरह का वर्ग बनाने का हमारा खास उद्देश्य और दृष्टिकोण होता है।

लेकिन गुरू नानक जिस धरातल पर थे (चेतना की अवस्था के संदर्भ में) वहाँ इस तरह से सोचा जा सकता है? जैसे ही हम वर्ग बनाते हैं, हम अपनी चेतना को खंडित कर लेते हैं। हमारे सोचने का काम खंडित चेतना से ही होता है। हम खंडित चेतना से ही विचार करते हैं। वे सारे लोग जो अपने को परंपरा से जोड़ना चाहते हैं या परंपरा का विरोध करते हैं–खंडित चेतना में ही जीते हैं। लेकिन ईश्वर तक कोई उस खंडित चेतना से नहीं पहुँच सकता। नानक हर एक को आवाज़ लगाते हैं, वे सबको बुलाते हैं। उनके लिए कोई गैर नहीं है, उनके लिए कोई भेद नहीं है। उनके लिए न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान। न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र। न कोई नाथ पंथी है, न कोई सूफी। धर्म और सम्प्रदाय उनके लिए नहीं है। उनके लिए तो सब उस एक मालिक की संतान हैं। वे ईश्वर और अल्लाह जैसे शब्दों के फेर में भी नहीं पड़ते। वे भेद के परे देखते हैं। इसलिए तो उनके जपुजी का मूल मंत्र है :

' १ ओंकार, सतिनामी, करतापुरुख, निरभउ, निरवैरु,
अकालमूरति, अजूनी, सैभंग गुरुप्रसादि।

(परम तत्त्व जिसका वाचक ॐ है केवल एक है। वह सत्य अर्थात् सदा रहने वाला है। वह सृष्टि का रचयिता है तथा उसमें व्याप्त है। वह निर्भय है। उसकी किसी से शत्रुता नहीं। उसका अस्तित्व काल के प्रभाव से मुक्त है। वह जन्म नहीं लेता, वह स्वतः प्रकाश है। वह गुरू की कृपा से (प्राप्त किया जा सकता है))'[9]

गुरू नानक अपनी वाणी में 'उसकी' बराई करते नहीं थकते। उनके उपदेश का सार ही यही है, बस 'उसका' नाम जपते रहो। ऐसा करते–करते तुम भवसागर के पार चले जाओगे। लेकिन उसकी बराई भी करे तो किस नाम से करे? क्योंकि सारे नाम तो इस संसार के ही हैं, जिसमें वे समा नहीं सकते :

'तू सुलतान, कहा हौ मीआ, तेरी कवन वडाई।
जो तू देहि सु कहा सुआमी, मै मूरख कहणु न जाई।।1।।
(राग बिलावलु)(श्री गुरू ग्रन्थ/गुरू नानक/795)

(हे प्रभु! तुम तो सब के बादशाह हो किन्तु अगर मैं तुम्हें मियां कहकर गुण गान करूं, तो इस में तुम्हारी क्या बड़ाई है? हे मालिक! तुम जैसी भी नाम कथन की शक्ति देते हो मैं वैसा ही कथन कर लेता हूँ, अन्यथा मैं मूर्ख जीव क्या कह सकता हूँ।)'[10]

नाम सुमिरन और भक्ति–यही नानक की शिक्षा के केन्द्र में है। जो भी करें उसकी याद में डूबकर, उसका, उसके लिए करें। यही संत–परंपरा और भक्ति–धर्म का सार है। गुरू

नानक धर्म से अध्यात्म की ओर चलने का अह्वान करते हैं। अध्यात्मिकता तोड़ता नहीं बल्कि जोड़ता है–वह सबको अपने में समाहित कर लेता है। अध्यात्मिकता में जाकर धर्म की सारी दीवारें गिर जाती हैं। इसलिए अध्यात्मिक स्वर एक जैसा होता है–वह किसी संप्रदाय से हो, किसी धर्म से हो। जो नाम सुमिरन तिरुमूलर के यहाँ है, वही गुरू नानक के यहाँ भी है :

(1)

'ओम'नु मोङ्कारत्तुळळे आरुमांलि।/ओम'नु मोङ्कारत्तुळळे उरुवरु।

ओम'नु मोङ्कारत्तुळळे पलबेदम्।/ओम'नु मेङकारम् आण्मुति सित्तिय ।।2676।।

तिरुमूलर (तमिल–तिरुमंतिरम्)

(ओम यह एक अक्षर है पर ब्रह्म/ओम यह एक अक्षर है सकल निष्कल, साकार निराकार

ओम इस एक अक्षर में निहित सकल भेदाभेद/ओम यह एक अक्षर सिद्धि मुक्ति का मूल।।)

(2)

ओअंकारि ब्रहमा उतपति। ओअंकारु कीआ जिनि चिति।।

ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि बेद निरमए।

ओअंकारि सबदि उधरे। ओअंकारि गुरमुखि तरे।

ओनम अखर सुणहु बीचारु। ओनम अखर त्रिभवण सार।

गुरू नानक देव (ओअंकारि–गुरू ग्रन्थ साहिब)

(ओअंकार से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उसने ओअंकार को अपने हृदय में धारण किया। ओअंकार ने ही पर्वतों का निर्माण किया, युग और काल खण्ड बनाए। ओअंकार ने वेदों की रचना की और उसी ने शब्द द्वारा संसार का उद्धार किया। गुरू के आदेशों पर पालन करने से और ओअंकार का नाम जपने से जीव तर गए। ओम अक्षर का भाव सुनिए यह अक्षर तीनों लोकों का सार है।)'[11]

संदर्भ–ग्रंथ

1. https://books.google.co.in/books?id=WFqxDwAAQBAJ&pg=PP40&lpg=PP40&dq=%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%A6%E0%A5%80+%E0%A4%95%E0%A5%81%E0%A4%B2&source=bl&ots=sJGS2Wp3b&sig=ACfU3U03kHDU8GjqmCQc3UBRvevNCDAzYQ&hl=en&sa=X&ved=2ahUKEwjnjjb6ufnAhXBzTgGHZXlAkIQ6AEwB3oECAYQAQ#v=onepage&q=%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%A6%E0%A5%80%20%E0%A4%95%E0%A5%81%E0%A4%B2&f=false

(अग्निहोत्री, डॉ कुलदीप चंद,'लोकचेतना और आध्यात्मिक साधना के वाहक श्री गुरू नानक देवजी' पुस्तक से) (देखा : 16/02/2020, 10.10 पूर्वाह्न)

2. गुप्त, मैथिलीशरण, पालीवाल, डॉ कृष्णदत्त (संपादक), मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, खण्ड 3, साहित्य सदन, झाँसी (प्रकाशक) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (वितरक), संस्करण 2008, पृष्ठ 240
3. वही, पृष्ठ 241–2
4. वही, पृष्ठ 242
5. सिंह, हरबंस, शर्मा, श्रुतिकान्त (अनुवादक), 'गुरू नानक तथा सिक्ख धर्म का उद्भव', पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, संस्करण 1971, पृष्ठ 90
6. गुप्त, मैथिलीशरण, पालीवाल, डॉ कृष्णदत्त (संपादक), मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, खण्ड 3, साहित्य सदन, झाँसी (प्रकाशक) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (वितरक), संस्करण 2008, पृष्ठ 242
7. https://www.hindi-kavita.com/HindiPoemsGuruNanak.php(गुरू नानक देव जी से संबंधित हिंदी कविताएं) (देखा : 15/02/2020, 14.10 अपराह्न)
8. वही
9. सिंह, भाई जोध (संपादक), सिंह, डॉ हरिभजन (अनुवादक), गुरू नानक वाणी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, संस्करण मार्च 1971, पृष्ठ 17
10. सिंह, कुलदीप (संकलन एवं संपादन), मंगल कलश (श्री गुरू ग्रन्थ चयन), सरदार मोहन सिंह, गुरूमत विचार केन्द्र, इलाहाबाद, संस्करण 1999, पृष्ठ 177
11. सिंह, कुलदीप, मुक्ति के सोपान (भक्ति साहित्य का सारत्तत्व), सैनबन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृष्ठ 1

श्री गुरु नानक वाणी में विनम्रता का महत्त्व

पिंकी *

भारत के मध्ययुगीन इतिहास के महान संत और सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव बाल्यकाल से ही विनम्र स्वभाव के थे। उनका आचरण संत के समान शुद्ध, शील और पवित्र था। गुरु नानक देव आरम्भ से ही गंभीर व विचारशील थे। वे अन्य बच्चों के समान खेलकूद में अधिक रूचि न लेते बल्कि उनका ध्यान अध्यात्म एवं ईश्वरीय भक्ति में अधिक रमता था। वे मनुष्य के शरीर को परमात्मा रूपी मंदिर स्वीकारते हुए यह मानते है कि उनमें ज्ञान रूपी रत्न प्रकट होता है।

"हरि मन्दुरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ।"[1]

गुरु नानक देव को बालपन से ही साधु–संतों एवं फकीरों में बैठने का अवसर प्राप्त हुआ था। ये संत देश–विदेश में यात्राएँ करते थे और एक सर्वमान्य तथा मिश्रित सी बोलते थे। गुरु नानक देव प्रारम्भ से ही संत के समान ध्यान में लींन रहते थे। यदि गुरु वाणी के अध्ययन और तथ्यों को ध्यान से देखें तो पता चलता है कि गुरु नानक देव स्वभावतः ही वैराग्यमयी और अध्यात्म चिन्तक थे। वे जन्म से संत स्वभाव व सतगुण संम्पन्न थे। उन्होंने अपना जीवन कपास के समान दूसरों के कल्याण हेतु अर्पित कर दिया था। संत के स्वभाव वाला व्यक्ति ही विनम्र, मधुर वचन वाला हो सकता है। तुलसीदास संतों के गुणों का वर्णन करते हुए कहते है;

" साधु चरित सुभचरित कपासू।/निरस विसद मुमय फल जासु।।

जो सहि दुख परछिद्र दुरावां।/वंदनीय जेहि जग जस पावा।।"[2]

अर्थात् साधु का जीवन कपास के समान शुभ्र होता है। उसका फल नीरस, विषद और गुणकारी होता है, जैसे कपास का धागा अपने शरीर को सुई की नोंक पर कुर्बानी देकर ढक देता है, ठीक वैसे ही अनेक कष्ट सहने के पश्चात् वस्त्र भी 'कपास के बेले जाने, काते जाने, बुने जाने के पश्चात् वस्त्र रूप में परिणित होकर' दूसरे के शरीर को ठंड से बचाता है। वैसे ही संत दूसरों की कमियों को छिपाते हैं, इसी गुण के कारण संत लोगों से सम्मान प्राप्त करते हैं। सिक्ख धर्म के संस्थापक और मानवता के महान आदर्श गुरु नानक देव के पवित्र हृदय में सभी धर्म के लोगों के लिए एक समान स्थान था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन जन–कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। गुरु नानक देव इस भव–सागर में कमल के समान रहे और सांसारिक जीवन जीते हुए वे सदैव परमात्मा के प्रति झुके रहे और अपने कर्तव्यों के पालन से कभी विमुख नहीं हुए। उनके जीवन का सबसे बड़ा हथियार उनकी विनम्रता थी जिसके बल पर उन्होंने कठोर से कठोर हृदयी व्यक्ति को अपनी विनम्र वाणी से उपदेश देकर उसका मार्गदर्शन किया। गुरु नानक देव का मानना था कि मनुष्य को अहंकार से नहीं अपनी मधुर वाणी व विचारों से

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

दूसरे के मन को जीतना चाहिए। उन्होंने बहुत ही विनम्रता से अपनी शिक्षाओं और उपदेशों को सामान्य मानस तक पहुँचाया। गुरु नानक देव का मानना था कि बाहरी आडम्बरमय जीवन ही मनुष्य को परमात्मा की राह में पहुँचाने में बाधक है, बल्कि अंतरात्मा की पवित्रता और मन को वश में रखकर ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। गुरु नानक देव ने परमात्मा के स्वरूप को ओंकार बताकर सभी भ्रमों का निराकरण किया। ईश्वर के बारे में गुरु जी का मूल मंत्र है;

"१ ओं सति नाम करता पुरुख निरभउ नीरवैरु।

अकाल मूरति अजूनि सैभं गुरु प्रसादि।।"[3]

धर्म में आई कुरीतियों के विषय में सुचारू ढंग से टीका–टिप्पणी तथा प्रत्येक मानसिक रोग का इलाज बताकर उन्होंने मानव को उत्कृष्ट बनाने पर बल दिया और उसे कर्तव्यनिष्ठा का उपदेश देकर कहा कि मन ज्ञानावस्था में पहुँच जाता है। गुरु नानक देव ने किसी भी धर्म को बुरा–भला नहीं कहा बल्कि अपनी विनम्र वाणी से सभी धर्म के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डाला।

गुरु नानक देव का आविर्भाव उस समय हुआ जब भारत की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति असंतोषजनक थी। देश में मुसलमानों का शासन स्थापित होने के कारण आम जनता को शासन की क्रूरता, धर्मान्धता व संकीर्णता को झेलना पड़ रहा था। इसी घोर अंधकार और धार्मिक कर्मकांडों के बीच गुरु नानक देव का जन्म हुआ। गुरु नानक देव के बारे में भाई गुरुदास ने लिखा है;

"सतिगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चाणनु होआ।

जिउ कवि सुरजू निकलिआ तारे छिपी अंधेरु पलोआ।।"[4]

मुसलमानों के अत्याचार के कारण भारतीयों की स्थिति दयनीय हो गई थी, चारों ओर इस्लाम और शेखों का ही प्रभाव था। हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा जा रहा था और उनकी बहुमूल्य पत्थरों की मूर्तियों का चूरा बनाकर उसे पानी में मिलाकर हिन्दुओं को पिलाया गया। भारतीय समाज के तत्कालीन यथार्थ को चित्रित करते हुए गुरु नानक देव ने कहा;

"आदि पुरखु कऊ अलहु कहिए, सेखां आई वारी।

देवल देवतिआ करु लागा, ऐसी की कीरति चाली।।

कूजा, बांग, निवाज, मुसला, नील रूप बनवारी।

घरि घरि मीआ, सभनां जीआं, बोली अवर तुमारी।।

जे तू मीर हमीपति साहिबु कुदरति कउण हमारी।

चारे कुंट सलामु करहिणै धरि धरि सिफति तुम्हारी।।"[5]

गुरु नानक देव कहते हैं कि भारत में विदेशी शासकों अथवा शेखों का ही बोलबाला है। मुसलमानों के भय के कारण आदि पुरुष परमात्मा को भी अल्लाह के नाम से ही पुकारना पड़ रहा है। इस्लामी शासन के चलते मंदिरों में जाने के लिए भी कर देना पड़ रहा है और ईश्वर का स्मरण, पूजा का स्थान व चारों ओर अजान की आवाज़ सुनाई दे रही है। यहाँ तक कि बनवारी यानी कृष्ण को भी नील वस्त्रधारी कहना पड़ रहा है। अर्थात् उन्हें नीले कपड़ों में रखना पड़ रहा है। यह सब इसीलिए किया जा रहा है कि विदेशी शासन खुश रहे। प्रत्येक घर में 'मियाँ–मियाँ' शब्द का गायन किया जा रहा है। भारतीयों ने अपनी भाषा छोड़कर उन्हीं की बोली बोलना शुरू कर दिया है। गुरु नानक कहते हैं, हे परमात्मा! तुम तो सर्वशक्तिमान हो। तुम्हारे होते हुए, हमें ये दिन देखने पड़ रहे हैं, सब लोग मुगलों की ही प्रशंसा में लगे हुए हैं, चारों तरफ जहाँ भी देखे उन्हें ही सलाम किया जा रहा है।

गुरु नानक देव के कालखंड में भारतीय समाज रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी परम्पराओं और अनेक कुरीतियों से ग्रसित होने के कारण गुरु नानक देव ने ब्राह्मणवाद, पुरोहितवाद व झूठे कर्मकांडों का खंडन करके सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने की शिक्षा अपनी मधुर, विनम्र वाणी में दी और किरत करने तथा वंड छकने की विचारधारा को समाज का आधार बनाने की बात कही। गुरु नानक देव जप–तप, साधना, तीर्थ, पुण्य दान तथा शुभ कर्म करने का सन्देश देते हैं। वे कहते है कि मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है अर्थात् बिना कर्म व गुण के जीवन नष्ट हो जाता है।

गुरु नानक देव अपनी विनम्र वाणी में जीवन के सत्य का सन्देश देते हुए कहते हैं;

"जपु तपु संजमु सधीऐ तीरथि किचै वासु।।

पुंन दान चिंगिआईआ बिनु साचे किआ तासु।

जेहा राधे तेहा लुणै बिनु गुण जनमु विणासु।।"[6]

जब गुरु नानक देव नौ वर्ष की अवस्था पूर्ण कर दसवें वर्ष में प्रवेश करने लगे तो उनके पिता कालू मेहता ने उनका जनेऊ संस्कार का निश्चय किया। पुरोहित पं हरदयालु को बुलाकर जनेऊ संस्कार का दिन और मुहूर्त निकाला गया, जनेऊ संस्कार में शामिल होने के लिए गांव के ब्राह्मणों तथा मित्रजनों को निमंत्रित किया गया। जब पुरोहित पं. हरदयालु शास्त्र विधिनुसार पूजा–पाठ करके तीन सूत्रों में बटा हुआ जनेऊ गुरु नानक देव के गले में पहनाने लगे तो उसी समय गुरु नानक देव पुरोहित को रोकते हुए विनम्रपूर्वक बोले कि आप पहले मुझे बताइएं कि यह क्या है? आप किस उद्देश्य हेतु इसे मुझे पहना रहे हैं। तब पुरोहित गुरु नानक देव को समझाते कि यह एक पवित्र चिह्न है जिसे प्रत्येक ब्राह्मण व क्षत्रिय को धारण करना चाहिए। इसे पहनकर तुम अपने आचरण से कुल की मान–मर्यादा की रक्षा करोगें। यह जनेऊ वेदमंत्रों से अभिमंत्रित किया गया है। यदि यह जनेऊ टूट जाए या मैला हो जाए तो उसी समय तुम्हें एक नया जनेऊ ब्राह्मण से लेकर धारण करना होगा। यह सुनकर गुरु नानक देव को बहुत हैरानी हुई कि यह साधारण सा जनेऊ कुल की मर्यादा का प्रतीक किस प्रकार हो सकता है?

गुरु नानक देव का मानना हैं कि कुल की मर्यादा पवित्र आचरण, दया, सत्य, संयम व शील स्वभाव, धैर्य, विनम्रता के द्वारा ही स्थिर रह सकती है।

"दइया कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।

एहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु।।

ना एहु तूटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ।

धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ।।"[7]

अर्थात् गुरु नानक देव कहते हैं कि संतोष रूपी सूत्र को ह्रदय में धारण करना है, जो दया रूपी कपास से सत्याचरण द्वारा बांटा गया हो और उसमें संयम की गाँठ लगी हो। ऐसा जनेऊ न कभी टूटेगा न कभी मैला होगा और न ही कभी जलेगा। ऐसा मानव धन्य है जिसने ऐसे जनेऊ को धारण किया है।

गुरु नानक देव की वाणी विनम्रता, मधुरता से ओत–प्रोत है। विन्रम वाणी उन्हीं की होती है जो सत्याचरण करते हैं। विनम्रता ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। गुरु नानक देव सत्य को सबसे ऊपर मानते हैं लेकिन वे सत्य आचरण को उससे भी महत्त्वपूर्ण व श्रेष्ठ स्वीकारते हैं। गुरु नानक देव कहते हैं; "सच्चों उरै सब को ऊपर सच आचार।"[8] विनम्रता में सबसे बड़ा बाधक 'हौउमे' अथवा अहम् या अहंकार है। परमात्मा की प्राप्ति के लिए अहंकार को नष्ट करके स्वयं को परमात्मा के प्रति समर्पित करना अति आवश्यक है क्योंकि अहंकार एक गहरी जड़ वाला रोग है। "होमे दीर्घ रोग है।"[9] यदि हमें परमात्मा को प्राप्त करना है तो अहंकार से ऊपर उठकर ईश्वर के चरणों में स्वयं को सौंपना होगा। जब अहम् समाप्त होता है तो मनुष्य ईश्वर में विलीन हो जाता है। "होमैं जाई तां कंत समाई।"[10] अहंकार त्यागने पर गुरु नानक देव ने विशेष बल दिया है। गुरु नानक देव ने अनेक स्थानों की यात्राएं की थी। गुरु नानक देव जहां–जहां भी जाते थे, वहां के लोगों को अपने उपदेशों के माध्यम से बहुत ही सरलता और सहजता, विनम्रता से समझाते थे। जब गुरु नानक देव हरिद्वार गए तो उन्होंने वहां देखा कि इस पवित्र तीर्थ स्थान पर भी पाखंडियों ने अनेक पाखंड फैलाए हुए है। गुरु नानक देव ने देखा कि लोग गंगा किनारे खड़े होकर पूर्व दिशा की ओर जलांजलि दे रहे हैं। उसी समय गुरु नानक देव भी पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके जल अर्पित करने लगे। विपरीत दिशा में जल अर्पित करते हुए गुरु नानक देव से लोगों ने पूछना शुरू कर दिया कि तुम ये क्या कर रहे हो? तभी गुरु नानक देव ने भी प्रश्न किया कि पूर्व दिशा की ओर तुम किसे जल दे रहे थे। उन लोगों ने कहा कि हम तो स्वर्ग में गएं अपने पूर्वजों को जल अर्पित कर रहे हैं। तब गुरु नानक देव ने भी उत्तर दिया, 'मैं पंजाब में अपने खेतों को पानी दे रहा हूँ।' वे लोग हँसने लगे और कहने लगे कि इतनी दूर से खेतों में पानी कैसे जा सकता है। गुरु नानक देव कहते है परलोक तो इस लोक में भी नहीं हैं। जब परलोक में तुम्हारे पूर्वजों तक पानी पहुँच सकता है फिर मेरे खेत तो कुछ सौ मिल दूर ही पंजाब में है। वहां पानी कैसे नहीं पहुँचेगा? गुरु नानक के उपदेश देने का ढंग बहुत अलग था। वे बड़ी से बड़ी और कठोर से कठोर बात बहुत ही विनम्र शब्दों में कह देते थे। जो सीधे–सीधे सुनने वाले के ह्रदय तक पहुँच जाती थी। गुरु नानक देव का आचरण और

उनके सीधे–सरल स्वभाव और कोमल, मधुर, विनम्र वाणी से वे सामने वाले का हृदय परिवर्तित कर देते थे। गुरु नानक देव बाह्य साधनों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं मानते थे बल्कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आंतरिक समर्पण आवश्यक है। गुरु नानक देव जब मक्का जाते हैं तो वे जिधर भी अपने पांव करते है, काबा उधर ही घूम जाता है। गुरु नानक देव मक्का के काजी और मुल्ला को अपनी विनम्र और विनीत वाणी में उपदेश देते हैं कि ईश्वर किसी एक स्थान पर न होकर वह तो घट–घट में व्याप्त है। गुरु नानक देव उन्हें बताते है कि मेहर ही 'मस्जिद' है, सिदक ही 'मुस्लिम' है और शील ही 'रोना' है। अच्छा तथा सच्चा कर्म ही काबा है। सत्य पीर है और इन सब गुणों को ग्रहण करके ही एक अच्छा व सच्चा मुसलमान बना जा सकता है। यही बात गुरु नानक देव अपनी विनम्र वाणी में कहते हैं;

"मिहर मसीति सिदुक मुसका हकु हलालु कुराणु।

सरस सुनति सीलु रोजा होहु मुसलमान।"[11]

विनम्रता की सबसे बड़ी पहचान क्षमा है और संतों में क्षमा एक उज्ज्वल हीरे के सामान है जो उन्हें हर स्थिति में प्रकाशमान बनाये रखती है। गुरु नानक देव आत्मा रूपी सुंदरी को क्षमा का शृंगार धारण करने का उपदेश देते हैं क्षमा मनुष्य को समस्त रोगों तथा दोषों से मुक्त कर देती है। नानक वाणी में लिखा है कि;

"बकै न बोलै खिमा धनु संग्रहै तामसु नामि जलाए।

धनु गिरही संनिआसी जोगी, जिरहि चरण चितु लाए।।"[12]

गुरु नानक देव जब यात्रा करते हुए पंजाब के जिला गुजराँवाला के सैयदपुर गाँव पहुँचे तो वे लालो नामक बढ़ई के घर रूके। उसी गाँव में मलिक भागो नाम का एक धनी क्षत्रिय रहता था। मलिक भागो को यह बात बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी कि गुरु नानक देव ने उसके घर का आतिथ्य स्वीकार न करके लालो के घर पर रहे। मलिक भागो ने अपने घर पर ब्रह्मा भोज के लिए सबको निमंत्रण दिया लेकिन ब्रह्मा भोज पर गुरु नानक देव नहीं आए, इससे मलिक भागो के अहम् को बहुत ठेस पहुँची। मलिक भागो ने गुरु नानक देव से इसका कारण पूछा तो गुरु जी ने दोनों घरों से भोजन मंगवाया और उस भोजन को अपने हाथों से निचोड़ा तो मलिक भागो के भोजन से खून व लालो के भोजन से दूध निकला। गुरु नानक देव ने बहुत ही धैर्य एवं शांत, विनम्र भाव के साथ मलिक भागो को समझाते है कि गरीब लोगों का शोषण बंद करे। जैसा भोजन तुम करते हो उससे तो भूखा रहना कहीं ज्यादा अच्छा है। गुरु नानक देव इस प्रसंग के माध्यम से ऊँच–नीच के भेदभाव को मिटाने का सन्देश देते हैं। गुरु नानक देव का मानना है कि व्यक्ति जन्म से नहीं बल्कि अपने कर्मो से ही महान् बनता है और लालो के घर रहना इसी बात की ओर संकेत करता है। गुरु नानक देव अपनी मधुर व विनम्र वाणी में कहते हैं;

"नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।

नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिअ किआ रीस।

जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।"[13]

गुरु नानक देव नाम स्मरण, शब्द जाप, गुरु के महत्त्व, एकेश्वरवाद, ईश्वरीय सत्ता तथा अध्यात्म की सहजता को स्वीकारते हैं, इन्हीं के कारण मनुष्य में विनम्रता का भाव जागृत होता है। गुरु नानक देव भाईचारे तथा देश–प्रेम के साथ–साथ मानवतावाद का प्रचार जीवन भर करते रहें। वे न किसी को हिन्दू मानते हैं और न ही मुसलमान। वे सभी मनुष्य को परमात्मा की संतान समझते हैं। गुरु नानक देव ईश्वर के नाम स्मरण को अमृत के समान सुख देने वाला और मित्र के समान अंतिम समय तक साथ रहने वाला मानते हैं। गुरु के बिना जगत बावला सा प्रतीत होता है। जो ईश्वर की इच्छा को अपने हृदय में धारण कर लेता है वास्तव में वही सच्चा सेवक है। जो व्यक्ति अपने मन के अनुसार कार्य करता है। उसे जीवन में कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि अंधे को अंधेपन के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। क्योंकि ईश्वर की भक्ति व सेवा और सानिध्य से ही हमें हमारी वास्तविक खुशी मिल सकती है। गुरुनानक देव विनम्र शब्दों में कहते हैं;

"अमृत नामु सदा सुख दाता अंते होई सखाई।

बाझु गुरु जगतु बुउराना नावै सार न पाई।

सतिगुरु सेवहि से परवाणु जिन जोती जोति मिलाई।

सो साहिबु सो सेवकु तेहा जिसु भाणा मन्नि बसाई।

आपणो भाणो कहु किनि सुखु पाईया अँधा अंधु कमाई।"[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु नानक देव एक अनन्य भक्त, महान संत, साधक, चिन्तक, उपदेशक थे। वह कट्टरता, रूढ़िवादी, कर्मकांड और अंधविश्वास आदि से मुक्ति दिलाने वाले महान संत थे। इन्होनें भक्ति, ज्ञान तथा कर्म में सामंजस्य स्थापित करते हुए प्रत्येक शब्द को सत्य–धर्म का उपदेश देने वाला बताया। उन्होनें अन्य धर्म की निंदा न कर उसके मूल आदर्श की ओर संकेत किया। गुरु नानक देव ने ईश्वर की एकता, सामाजिक समानता तथा भ्रातृत्व की भावना का प्रचार–प्रसार अपनी विनम्र वाणी में किया। जिस जात–पात और ऊँच–नीच के भेद–भाव को आज के युग में बलपूर्वक, कानून द्वारा भी पूर्णरूप से दूर नहीं किया जा सका। उसी को उन्होंने हृदय में आस्था के द्वारा सहज प्रेम की भावना से स्थापित कर दिया। गुरु नानक देव ने अपनी यात्राओं के माध्यम से यह अनुभव किया कि हिन्दू अछूतों के इस्लाम धर्म स्वीकार करने का मूल कारण उनकी भ्रातृत्व–भावना ही है। अंतः सबसे प्रमुख अपने प्रचार–प्रसार में उन्होंने विनम्रपूर्वक भ्रातृत्व–भावना पर बल दिया। पंगत और संगत इसी उत्कृष्ट भावना का परिणाम है। गुरु नानक देव ने अपनी विनम्र वाणी के माध्यम अपने विचारों और उपदेशों को आम जनता तक पहुँचाया। गुरुनानक देव का उद्देश्य था कि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों से मनुष्य को बाहर निकाला जा सके और उन्हें सत्य, करुणा व विनम्रता की राह दिखा सके।

संदर्भ सूची :–

1. मिश्र, जयराम, श्री गुरुग्रंथ–दर्शन, प्रयागराज, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2019, पृष्ठ–163
2. वेदी, डॉ काला सिंह, (अनुवादक), गुरुनानक निरंकारी, नई दिल्ली, पंजाबी बुकस्टोर, संस्करण–1969, पृष्ठ–70
3. सिद्धांतालंकार, नारायणदत्त, गुरुनानक : जीवन और दर्शन, दिल्ली, नवभारती सहकार प्रकाशन, संस्करण–1970, पृष्ठ–151
4. अग्निहोत्री, डॉ. कुलदीप चंद, श्री गुरु नानक देवजी, नई दिल्ली, प्रभात पेपरबैक्स, संस्करण– 2019, पृष्ठ–59
5. यथावत् पृष्ठ–49
6. जग्गी, डॉ. रत्न सिंह, गुरु नानक रचनावली, पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, संस्करण–1970, पृष्ठ–66
7. सिद्धांतालंकार, नारायणदत्त, गुरुनानक : जीवन और दर्शन, दिल्ली, नवभारती सहकार प्रकाशन, संस्करण–1970, पृष्ठ–9
8. हाँडा, डॉ. सीता, गुरु नानक व्यक्तितव और विचार, जयपुर, चिन्मय प्रकाशन, संस्करण–1984 पृष्ठ–9
9. वही, पृष्ठ–89
10. वही, पृष्ठ–89
11. गोयल, डॉ जयभगवान, श्री गुरुनानक देव, पंचकूला, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, संस्करण–2019, पृष्ठ–5
12. पाण्डेय, डॉ. रामसजन, संतों की सांस्कृतिक संसृति, दिल्ली, उपकार प्रकाशन, संस्करण–1995, पृष्ठ–345
13. अग्निहोत्री, डॉ. कुलदीप चंद, श्री गुरु नानक देवजी, नई दिल्ली, प्रभात पेपरबैक्स, संस्करण– 2019, पृष्ठ–83
14. हाँडा, डॉ.सीता, गुरु नानक व्यक्तितव और विचार, जयपुर, चिन्मय प्रकाशन, संस्करण– 1984 पृष्ठ–9

श्री गुरु नानक देव की उदासियाँ और उसके निहितार्थ

सुअम्बदा कुमारी*

भारतीय साहित्य में ज्ञान और यात्रा की परम्परा प्राचीन काल से ही अविलक्षित होती हैं। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्राचीन ऋषि–महर्षियों (महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य, नानकदेव, कबीर, रामानंद, मीरा) ने ज्ञान के प्रसार–प्रचार के लिए विभिन्न जगहों की यात्रा की। 'साहित्य' मनोवृत्ति का घुम्मकड़ है। जब हम सौंदर्यबोध की दृष्टि से कोई यात्रा करते हैं और उस मुक्त भाव को जब हम अभिव्यक्त करते हैं तो वह यायावरी का रूप ले लेता है। साहित्य के क्षेत्र में वह 'यात्रा–वृत्तांत' के नाम से जाना जाता है। यात्रा एक गतिशील प्रक्रिया है जिसके अपने–अपने उद्देश्य होते हैं। यात्रा की प्रवृत्ति परिस्थिति और व्यक्ति सापेक्ष है। मनुष्य प्रकृति एवं सौन्दर्य का प्रेमी होता है, वह साहित्य की भाँति तत्कालीन परिवेश को भी अपने में समाहित किए रहता है। उसके द्वारा ग्रहण किया गए भाव सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं जो प्रेम, सौन्दर्य, भाषा, स्मृति आदि रूप में समयानुकूल प्रकट होते रहते हैं। यात्रा के दौरान राहगीर प्रत्येक स्थल और क्षेत्रों से उन्हीं यादों का संयोजन करता है जिनको वह सत्य के करीब पाता है। बाहरी जगत की प्रतिक्रिया से उसके ह्रदय में जो भावनाएं उमड़ती है, वह उन्हें अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ अभिव्यक्त कर देता है, जिससे शुष्क विवरण भी मधुर और भाव विभोर कर देने वाला बन जाता है।

श्री गुरुनानक देव की यात्रा बाहरी जगत के साथ–साथ अंतर्जगत की भी यात्रा है जहाँ वे अपने अंदर विराजमान शक्ति को खोजने की कोशिश जारी रखते हैं। उन्होंने यात्राएं केवल विभिन्न प्रदेशों के प्रति अपने कौतूहल के लिए ही नहीं की बल्कि पीड़ित मानवता का उद्धार उनका एकमात्र उद्देश्य था। गुरु नानक देव की यात्राओं को पंजाबी में 'उदासियाँ' कहा जाता है। 'उदासी' शब्द उदास से बना है, जिसका भाव है उपराम, दुनिया से विरक्त। इसी प्रकार उदासी का भाव है उपरामता, विरक्तता, किनाराकशी।[1] उदासियों से भाव गुरुनानक के विभिन्न यात्राओं से है।

गुरु नानक की यायावरी प्रवृत्ति उनके बचपन के एकांतवास में भी देखी जा सकती है । चिन्तनशील प्रवृत्ति के कारण नानक अधिकतर समय अकेले में बिताया करते थे। वह तलवंडी के चारों ओर घने जंगलों में घुमते थे और उस भ्रमण के दौरान उन्हें धार्मिक सुधारकों, उनके अनुयायियों, तपस्वियों, साधुओं और फकीरों से मिलने के अनेक अवसर प्राप्त हुए थे। उनके संपर्क में आने से गुरु नानक को अन्य धर्मों के मूल सिद्धांतों का पता चला। "ग्रीष्म ऋतू की प्रचंड गर्मी में और शीत ऋतू के पाले में, खुले आकाश के नीचे प्रकृति के बदलते हुए स्वरूपों में तथा अपने जन्म के छोटे से गांव के निवासियों की खुशी और रंज में भी वे महापुरुषों की रचनाएँ पढ़ते थे और निराकार ब्रम्ह के नाम

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

का जाप करते थे। यह नाम इसके बाद उनकी लगातार पूजा और ध्यान का आधार और वस्तुतः इनके ग्रंथ का विशिष्ट गुण बन गया।"[2]

प्रकृति के माध्यम से ईश्वरानुभूति में नानक की प्रगाढ़ता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। एकांतवास से चिंतित पिता कालू ने नानक को व्यवसाय में लगाने का विचार किया ताकि नानक को संसारी बनाया जा सके। उन्होंने नानक को बीस रूपये व्यापार करने के लिए दिए। गुरुनानक ने उन रुपयों से भूखे साधुओं को खाना खिला दिया क्योंकि उनको भूख से अकुलाते देखकर नानक की आत्मा तड़प उठी थी, उनकी दृष्टि में यही सच्चा सौदा था। नानक के पिता सांसारिक व्यक्ति थे। उन्होंने नानक को दुनियादारी के प्रति उदासीनता को देखते हुए उनका विवाह गुरुदासपुर निवासी मुला नामक व्यक्ति की पुत्री सुलक्खनी के साथ कर दिया। नानक के जीवन में कोई खास बदलाव नहीं आया, उन्होंने सामान्य जीवन–चक्र की पूर्ण उपेक्षा नहीं की। निराकार ईश्वर के प्रति इनका झुकाव बना रहा। कुछ दिनों के बाद नानक अपनी बहन नानकी के घर सुल्तानपुर जाकर रहने लगे जहाँ उनकी भेंट मरदाना से हुई। जन्मसाखियों के अनुसार गुरु नानक, सदा की तरह बेई नदी में स्नान करने गए, वो तीन दिन तीन रात लापता रहे। कुछ लोगों का विचार है कि उन्होंने जल के अंदर समाधि लगा ली थी, यहीं उन्हें भगवान का साक्षात्कार हुआ। तीन दिन बाद जब वे जल से बाहर निकले तब उन्होंने सबसे पहला यही कहा कि 'न कोई हिन्दू था और न कोई मुसलमान'। नानक की इस उद्घोषणा से सम्पूर्ण कर्मकांडी समाज में कोहराम मच गया। साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए दिया हुआ नानक जी का यह संदेश आज भी हमारे समाज में बहुत प्रासंगिक हैं। पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के अनुसार– "गुरु नानक देव ऐसे युग में पैदा हुए थे जो नव जागृति का युग था। उन्होंने देखा कि जनता गलत धर्म का अनुसरण कर रही है तथा धर्म रूढ़ियों में बंध गया है। उन्होंने यह अनुभव करते ही धर्म को रूढ़ियों से निकालकर सही दिशा दी।"[3]

गुरुनानक का अधिकांश जीवन पैदल यात्रा करने में ही व्यतीत हो गया। कुछ विद्वानों का मानना है कि उन्होंने लगभग 50,000 मील से अधिक लम्बी पैदल यात्राएं की। आज से पांच शताब्दी पूर्व यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थी। अतः गुरु नानक की यात्राओं का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। प्राचीन काल में इतनी लम्बी यात्राएं करने वाले धार्मिक नेता, विचारक और दार्शनिक शायद बहुत ही कम होंगे। अपनी यात्राओं द्वारा गुरुनानक ने अपने समकालीन समाज को क्रांतिकारी दिशा प्रदान की जिस पर चलकर सिक्ख पंथ का विशिष्ट रूप विकसित हुआ। चारों दिशाओं को उद्देश्य बनाकर की गई गुरुनानक की यात्रा में कोई भटकाव नहीं था बल्कि उसका एक निश्चित ध्येय था जो उनके यात्रा मार्ग में घटित होता गया। गुरुनानक लोगों में 'साचा साहिब साचे नाए' का संदेश प्रसारित करने के लिए सबसे पहले भारत के पूर्वी प्रदेशों की यात्रा पर रवाना हुए। उनके साथ उनका प्रिय शिष्य मरदाना भी था। इस यात्रा के दौरान उन्होंने एमनाबाद, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, पानीपत, दिल्ली, बनारस, नानकमाता (गोरखमाता) कामरूप (आसाम), जगन्नाथ पूरी आदि अनेक शहरों में होते हुए पाक पाटन के रास्ते पंजाब वापस पहुँचे।

गुरुनानक का समय हिंदी साहित्य में भक्तिकाल का समय है जहाँ कबीर, रैदास, नामदेव जैसे संत कवि भारतीय समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके थे। भक्ति का

यह सोता दक्षिण की भांति उत्तर भारत में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा था। सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक स्तर पर यह काल काफी उथल–पुथल से भरा हुआ था। जाति प्रथा, छुआ–छूत, धार्मिक पाखंड, हिंसा इत्यादि की भावनाएं समाज में व्याप्त थी, ऐसे समय में गुरु नानक भारतीय समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते 'जानो जोत ना पूछो जाती आगे जात न हे' शबद की उद्घोषणा की अर्थात् मनुष्य का मूल्य उसकी जाति से नहीं, उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आंको क्योंकि परलोक में जातिभेद है ही नहीं। उन्होंने लोगों को बताया कि न तो जन्म से, न जाति से, न लिंग–भेद से और न भाषा से, बल्कि गुणों और कार्यों से मनुष्य का समाज में स्थान आँका जाता है। नानक अपनी यात्रा के दौरान समान्यतः किसी गांव में न रूककर किसी जंगल अथवा नदी के किनारे ही रुकते थे। सत्य, शांति, संयम, अपरिग्रह, अहिंसा उनके जीवन के परम उद्देश्य थे जो उनके यात्राओं में विभिन्न घटनाओं के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है।

मनुष्य मात्र शरीर निर्वाह शारीरिक श्रम से करे तभी वह समाज के और अपने द्रोह से बच सकता है। सभी स्त्री–पुरुषों को अपना नित्य का सारा काम, जो स्वयं ही कर लेने योग्य हो, कर लेना चाहिए और दूसरे के सेवा बिना कारण नहीं लेना चाहिए। नानक के यहाँ श्रम की महत्ता प्रमुख थी। एमनाबाद में 'मलिक भागो' के भोज को ठुकराकर और उसके स्थान पर लालो बढ़ई के रूखे सूखे भोजन को ग्रहण करके उन्होंने मेहनत और सत्य से अर्जित कमाई के महत्व को प्रतिपादित किया। भागो का भोज त्याज्य था क्योंकि उसको अर्जित करने में दूसरों का खून चूसा गया था; अतः उसे निचोड़ने पर खून और लालो की रोटियों को निचोड़ने पर दूध की धारा बह निकली थी। नानक अपरिग्रह के हिमायती थे। एकबार यात्रा के दौरान उनके शिष्य मरदाना को ज़ोर की भूख लगी। उसने नानक से निवेदन किया कि पास के गांव से कुछ खाना माँग लाता हूँ। नानक ने उसे एक पेड़ दिखाते हुए कहा कि इस पेड़ का फल भरपेट खा लेना लेकिन अपने पास एक भी फल मत रखना। नानक से नजरे बचाकर मरदाना ने कुछ फल झोले में रख लिया। अगले दिन उसने उस फल को खाया और उसके पेट में दर्द होने लगा। मरदाना ने नानक से अपने झूठ के लिए क्षमा मांगी और कारण पूछा; नानक ने उसके प्रश्नों का जबाब देते हुए कहा हमें उतनी ही चीजों का संग्रह करना चाहिए जितना जरुरी हो, बिना श्रम के कोई भी कार्य नुकसानदायक होता हैं। नानक की श्रम और अपरिग्रह की परम्परा का विकास हम आगे महात्मा गाँधी के यहाँ देख सकते हैं। अपरिग्रह के बारे में गाँधी जी का मानना था कि– "अनावश्यक वस्तु जिस तरह ली नहीं जा सकती, उसी तरह उसका संग्रह भी नहीं किया जा सकता। इसलिए जिस खुराक या साझसामान की जरूरत न हो, उसका संग्रह करना इस व्रत का भंग है। जिसका काम कुर्सी के बिना चल जाए वह कुर्सी न रखे; अपरिग्रही दिनोंदिन अपना जीवन और भी सादा करता जाय।"[4]

सत्य, अहिंसा, करुणा इत्यादि व्रतों का पालन निर्भयता के बिना संभव नहीं है और ऐसा वातावरण जहाँ सर्वत्र भय व्यापत हो वहाँ निर्भयता का चिंतन और शिक्षा देने वाला व्यक्ति 'अभय' कहलाता है। गुरुनानक ने अपनी यात्रा में निर्भयता का चिंतन और उसकी शिक्षा को अत्यंत आवश्यक समझा। वह साहसपूर्वक सत्य की रक्षा करते हुए

अपने समय की तमाम कुरीतियों से लड़ते रहे। हरिद्वार में उन्होंने देखा कि बहुत से लोग गंगा में बर्फ के समान ठंडे पानी में नहा–धो रहे थे अर्थात् सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे। गुरुनानक पानी में घुसे और उन्होंने बाएँ हाथ से पश्चिम की ओर पानी उलीचना शुरू कर दिया। तीर्थयात्रियों को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि उनके विश्वास को ठेस पहुँचाई जा रही है। लोगों ने उनसे पूछा कि वे क्या कर रहे हैं ? वे मुर्ख हैं। उन्हें पूर्वजों की आत्मा की मुक्ति के लिए सूर्य को पानी चढ़ाने का ढंग सीखना चाहिए। गुरुनानक मुस्कराए और बोले कि मैं तलवंडी में अपने प्यासे खेतों की प्यास बुझाने के लिए पानी उधर भेज रहा हूँ। पंडे पुरोहित हँसे और उन्होंने पूछा कि यह पानी पंजाब में इतनी दूर कैसे पहुँच सकता है। गुरूजी ने कहा कि यदि उनके द्वारा भेजा गया पानी ऐसी फसलों तक नहीं पहुँच सकता, जो अपनी इसी पृथ्वी पर केवल तीन सौ मील की दूरी पर हैं, तो वह अज्ञात विश्व में लोगों के पूर्वजों तक कैसे पहुँच सकता है ?

दूसरी उदासी अथवा यात्रा में इनके साथ सईदो और धेबो नामक दो जाट शिष्य थे। इस समय इन्होंने दक्षिणी प्रदेशों की यात्रा की जिसका प्रधान उद्देश्य प्रसिद्ध तीर्थस्थलों का भ्रमण करना था। इस यात्रा में नानक ने राजस्थान के विभिन्न भागों–बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, पुष्कर, अजमेर, मारवाड़, देवगढ़, आबू आदि स्थानों का भ्रमण किया। यहाँ से नागपट्टम होते हुए वे सुदूर दक्षिण में स्थित रामेश्वरम तक गए। वे लंका भी गए। लौटते समय लाहौर के दो अमीर खत्री दुनीचन्द और करोड़ीमल उनके शिष्य बने। जग्गनाथ पूरी में उन्होंने ईश्वर आरती का वास्तविक अर्थ बताया और पुजारियों को समझाया कि केवल कर्मकांड में कुछ नहीं रखा है।

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने।
तारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलआनलैपवणु चवरु करे।
सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।
अनहता सबद बाजंत भेरी। [5]

अर्थात् आकाश थाल है, सूर्य–चन्द्र दीपक हैं, नक्षत्रमंडल मुक्ता–गण है, मलयानिल धूप है, वायु चामर–चालक है, समस्त वनराजि शुभ्र पुष्प हैं, अनाहत शब्द भेरी–वादन है। जन्म–मरण चक्र के निवारक प्रभो ! आपकी कैसी विलक्षण आरती हो रही है।

गुरु नानक देव की यात्राएं केवल आत्मिक सुख के उद्देश्य से प्रेरित नहीं थी बल्कि इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव लक्षित है। गुरुनानक ने जिस मत का प्रचार किया उसे उन्होंने विश्वकल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक समझा, वह कोई नितांत नवीन संदेश नहीं था और न भारतीयों के लिए उसका कोई अंश अपरिचित ही था। उसके प्रायः प्रत्येक अंग का मूल रूप हमारे प्राचीन साहित्य के किसी न किसी भाग में विद्यमान है जिसको नानक ने समयानुकूल प्रासंगिक बनाया। नासू और सीहा नामक दो शिष्यों के साथ गुरु नानक ने अपनी तीसरी यात्रा उत्तर दिशा की ओर किया। उत्तर का क्षेत्र सिद्धों

और योगियों का केंद्र माना जाता था। कश्मीर के रास्ते कैलाश पर्वत की ऊँचाइयों को पार करते हुए मानसरोवर पहुँचे, वहाँ से वे तिब्बत और चीनी प्रदेश नानकिंग क्षेत्र भी गए। योगियों के विशेष प्रकार के पहनावे और जीवनयापन को गुरुनानक योग साधना के लिए आवश्यक नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सच्चा योग न तो कथरी में हैं, न डंडे में और ना ही भस्म चढ़ाने में, सिंगी बजाने और सिर मुंडवाने में भी नहीं है। 'अजन' में भी 'निरजन' रहना ही सच्ची योग साधना है–

योग ना किंधा जोग न डंडे जोग ना भस्म चढ़ाइए।
जोग ना मुंडी मुडाइए जोग ना सिंगी डाइए।
अजन नाहि निरंजन रहित जोग जुगति तऊ पाइए। [6]

(नानक वाणी, दिल्ली)

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक स्त्रियों की स्थिति दोयम दर्जे की रही है। नानक के समय में स्त्रियों की स्थिति सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक इत्यादि प्रत्येक स्तर पर बहुत ही दयनीय थी। बाल विवाह, दहेज़प्रथा, सती प्रथा, बाल विधवा, छुआ–छूत इत्यादि तमाम तरह की कुरीतियां समाज में व्याप्त थी। स्त्रियों को कलूटा, माया ठगनी, ताड़न के अधिकारी कहकर संबोधित किया जाता था, ऐसी परिस्थिति में गुरु नानक देव ने स्त्रियों को बराबरी का हक़ देते हुए लंगर–पंगत और धार्मिक कृत्यों में समान रूप से भाग लेने दिया । उन्होंने उसे अपनी आत्मिक उन्नति के लिए स्वयं उत्तरदायी माना तथा नारी की निंदा करने वालों से कहा कि नारी अनिन्दनीय है। उनके विचार में–

"भंडि जन्मीए भंडी निम्मीए भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती, भंडहु चलै राहु।
भंडु मुआ भंडु मालीए, भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखिऐ जित जम्महि राजानु।[7]

अर्थात् उस नारी की निन्दा किस प्रकार की जाए जिससे मनुष्य जन्म लेता है, जिससे सगाई और विवाह होता है। स्त्री से ही संसार का मार्ग अर्थात् उत्पति–क्रम चलता है। जब एक स्त्री मर जाती है तो दूसरी स्त्री विवाह के लिए खोजी जाती है और स्त्री द्वारा ही विशाल बंधन बंधते है। पंडिता रमाबाई अपनी पुस्तक The High Cast Hindu Women (अनु. हिन्दू स्त्री का जीवन)' में कहती हैं –"चूँकि स्त्री और पुरूष मानवीय समाज के एक ही शरीर के हिस्से हैं और साथ ही ये अविभाज्य एकता से जुड़े हैं अतः उनमें से कोई भी पीड़ा में होगा तो दूसरा भी प्रभावित होगा, चाहे वह इसे स्वीकार करे या न करे।"[8]

आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है जहाँ प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है, जहाँ तथ्य है वहाँ अस्तित्व है। विज्ञान हर समस्या को सुलझाने का दावा करता है, ऐसे जगह पर धर्म के लिए कोई खास जगह नहीं बचती है। आज का मानव आधुनिकता और परम्परा के बीच द्वंद का शिकार है। ऐसे वक्त में धर्म का

कल्याणकारी नजरिया जिसकी यात्रा की शुरुआत ही करुणा से होती व्यक्ति के लिए आधार स्तम्भ हैं। नानक की उदासियों का यथार्थ केवल धर्म प्रचारक के रूप में नहीं बल्कि सामान्य जीवन में व्याप्त समस्या को महसूस कर उसे दूर करने का प्रयास है। नानक हर उदासी में एक लक्ष्य खोजने की चाहत रखते हैं जहाँ सत्य, अहिंसा, संस्कृति, आत्मा, दीन–ईमान, करुणा इत्यादि को बचाने की चाहत है। नानक की उदासी का उद्देश्य केवल अपनी चिंता को शांत करना नहीं है बल्कि समाज में व्याप्त हर कुरीतियों पर ध्यान देना भी हैं। उनके यहाँ आम जनता की चिंता हैं; भारतीय समाज में कोई ऐसा घटक नहीं है जिसकी ओर नानक का ध्यान नहीं गया । वह सामान्य जन के साथ–साथ गृहस्थों, पंडित–पूजारियों, शिक्षकों, पाखंडियों, चोर–बदमाशों, ठगों, हत्यारों, समाज–सुधारकों, धर्माचार्यों और यहाँ तक कि शासकों को भी दिशा–निर्देश दिया करते थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार–"गुरु नानक ने आत्मगौरव की भावना से युक्त, भगवान और मार्गदर्शकों पर आस्था रखने वाले, समानता और भ्रातृत्व की भावना से परिपूर्ण स्त्री तथा पुरुषों से संपृक्त जाति का निर्माण करने की चेष्टा की।"[9]

वर्तमान समय में हमारे समाज में धर्म के नाम पर तमाम तरह की बुराइयाँ व्याप्त हैं। साधु–संत, पुजारी, मौलवी, पादरियों के नाम पर हम एक विशेष प्रकार के दलदल में फंसते जा रहे है। धर्म आज व्यापारिक रूप में फल–फूल रहा है। आज भी हमारे समाज में जातिगत और धार्मिक भेदभाव के नाम पर प्रतिदिन हजारों दुर्घटना घट रही हैं। ऐसे समय में गुरु नानक की उदासियाँ पथ–प्रदर्शक के रूप में हमारे सामने दिखाई देती हैं जहाँ वे ऊँच–नीच के भेद से परे तीनों लोक में व्याप्त कर्ता को सबसे बड़ा मानते हैं–

सबको ऊँचा आखिये नीच ना दीसै कोय।
इकनै भांडे साजिऐ इक चानण तेह लोये।[10]

अपनी उदासियों के दौरान गुरु नानक देव ने समाज में फैली अस्पृश्यता को केवल उपदेश के माध्यम से दूर नहीं किया बल्कि अपने व्यवहारिक जीवन में लागू करते हुए उज्जैन में एक अस्पृश्य के घर ठहरे, जब स्थानीय रुढ़िवादियों ने सुना कि एक साधु एक शुद्र के घर ठहरा हुआ है तो वे बड़े परेशान हुए। उन्होंने गुरु जी से उनके आचरण के बारे में पूछा। गुरु नानक ने कहा कि भगवान की नजरों में सब मनुष्य बराबर हैं। आदमी–आदमी में कोई अंतर नहीं है :

अगै जाति न जोरू है अगै जीउ नवे।
जिनकी लेखै पति पवै चंगे सेई केई।[11]

(गुरु नानक– वार आसा)

नानक के चौथी उदासी का लक्ष्य पश्चिमी प्रदेश थे । इस यात्रा में नानक की वेशभूषा हाजियों जैसी थी। उन्होंने नीले वस्त्र पहने थे। उनकी बगल में एक पुस्तक और हाथ में डंडा था। मक्का में गुरु नानक ने भगवान की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया, वहाँ वे काबा की तरफ पैर करके सो गए थे। अपने पवित्र इस्लामी स्थल की ओर नानक का पैर रखकर सोते देख वहाँ के निवासी बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने नानक को पैर हटाने के लिए बोला गुरु नानक ने कहा कि जिस तरफ ईश्वर न हो, उधर मेरे पैर कर

दो, कहते हैं कि जिधर गुरु नानक पैर करते थे काबा भी उधर घूम जाता था। वहाँ से गुरुनानक ने जेरुसलम, बगदाद, तुर्किस्तान, मिस्त्र आदि स्थानों की यात्रा की; लौटते समय रावलपिंडी के निकट हसन अब्दाल (जो आजकल पंजा साहब के नाम से प्रसिद्ध है) नामक स्थान पर गए। यहाँ पर पर्वत की चोटी पर रहने वाले वली कंधारी से भेंट की और उसके अहंकार को दूर किया।

पांचवी एवं अंतिम उदासी में गुरु नानक का भ्रमण–स्थल पंजाब रहा। इस यात्रा में वे पाक–पाटन, दियालपुर, बंगापुर, सुल्तानपुर, जलालाबाद, बटाला इत्यादि स्थानों से होते हुए एमनाबाद पहुंचे। एमनाबाद में बाबर का अत्याचार घनघोर रूप में था, जनता उसके अत्यचार से त्राहि–त्राहि कर रही थी। यहाँ पर अन्य कैदियों के साथ गुरूजी भी कैद हो गए। भारत की दुर्दशा को देखकर गुरु जी का हृदय द्रवित हो गया। अत्यंत भावुक काव्य उनके मुख से निःश्वसित हो गया। ये 'शबद' गुरु ग्रंथ साहिब में सुरक्षित हैं।

"खुरासान खसमाना कीआ, हिंदुस्तान वडाइआ।।
आपै दोसु न देई करता, जमु करि मुग़ल चड़ाइआ।।
एती मार पई, करलाणे, तैं की दरदु न आइआ।।
करता तू सभना का सोई।।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोस न होई।।
सकता सीहु पै वगै, खसमैं सा पुरसाई।।[12]

कहा जाता है कि बाबर गुरूजी की अद्‌भुत शक्ति से अत्यंत प्रभावित हुआ और उनके कहे अनुसार उनके साथ–साथ अन्य सभी कैदियों को भी छोड़ दिया; यहाँ से गुरुनानक सियालकोट और मिट्ठनकोट होते हुए रावी के किनारे अपने अनुयायियों की सहायता से बसाए हुए नगर करतारपुर में पहुँचे। यहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन एक किसान की तरह बिताया। इसी जगह पर उन्होंने लंगर की प्रथा का सूत्रपात्र किया तथा मिलकर पूजा कीर्तन और सहभोज के द्वारा उन्होंने ऊँच–नीच के भेदभाव को मिटाकर सह–अस्तित्व और विश्व बन्धुत्व की भावना पर बल दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिव्य पुरूष गुरु नानक देव जी ने अपनी उदासियों के माध्यम से नवीन एवं अनूठा धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दर्शन दिया जिसमें आज के आदर्श समाज की झलक दिखलाई देती है। धर्म प्रचारकों में गुरु नानक देव जी का स्थान सम्माननीय और अद्वितीय है क्योंकि उन्होंने सच्ची कर्मशीलता और आध्यात्मिकता का समन्वय करके व्यक्ति को जीवन जीने का ढंग सिखलाया और नवीन समाज की नींव रखी। गुरु नानक की वाणियों के बारे में हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं–"जिन वाणियों से मनुष्य के अंदर इतना बड़ा अपराजेय आत्मबल और कभी समाप्त न होनेवाला साहस प्राप्त हो सकता है, उनकी महिमा निस्संदेह अतुलनीय है। सच्चे हृदय से निकले हुए भक्त के अत्यंत सीधे उदगार और सत्य के प्रति दृढ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं, यह नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया हैं।"[13]

संदर्भ सूची

1. सुरेंदर सिंह कोहली, पंजाबी साहित्यकोश भाग–1, चंडीगढ़, पब्लिकेशन ब्यूरो, पृष्ठ–1
2. सुरिंदर सिंह जौहर (अनु.गीता), गुरुनानक एक जीवनी, स्टलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली–16, प्रथम संस्करण 1975 , पृष्ठ–35
3. प्रशस्तियाँ, डॉ. सीता हांडा, गुरु नानक और विचार, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर
4. www-Hindi-mkgandhi-org
5. डॉ. सीता हांडा, विचार, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 19
6. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, धनासरी रागु, पृष्ठ 663
7. डॉ. सीता हांडा, विचार, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 34
8. पं.रमाबाई, (अनु.–शंभू जोशी), हिन्दू स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन, मेरठ, उ.प्र., प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 2
9. प्राक्कथन से, डॉ. सीता हांडा, विचार, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर
10. डॉ. सीता हांडा, गुरु नानक और विचार, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ –92)
11. सुरिंदर सिंह जौहर, गुरु नानक एक जीवनी, स्टलिंगपब्लिशर्ज प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975 पृष्ठ– 129
12. हरबंस सिंह, गुरुनानक तथा सिख धर्म का उद्‌भव, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, संस्करण , 1971, पृष्ठ संख्या 154 –55
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्यः उद्‌भव एवं विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवां संस्करण 2006, पृष्ठ–90)
14. नरेन्द्र पाठक, गुरु नानक देव, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण– 1970
15. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पपेरबैक्स 2019

श्री गुरू नानक देव के जीवन और वाणी में प्रेम तत्व

वंदना रानी*

'नानक गाली कूड़ीआ बाझु परीति करेई।।
तिवरू जाणै भला करि जिचरू लेवै देई।। 2।।'[1]

उपरोक्त पंक्तियाँ गुरू नानक देव जी की है जिसका अर्थ है कि प्रेम के बिना सभी बातें असत्य है। वे सभी बातें झूठी है जो जीव को हरि से प्रेम करने से दूर करती है। जब तक हरि देता है जीव लेता है। (भाव) जब तक जीव को कुछ मिलता रहता है तब तक जीव हरि को अच्छा समझता है।

प्रेम की सार्थकता, व्यापकता एवं आवश्यकता को गुरू नानक देव ही नहीं, सभी मनुष्य स्वीकार करते हैं। प्रेम ही मानवीय जीवन का आरम्भ एवं आधार है। प्रेम के बिना संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। प्रेम के कारण ही आज विश्व, राष्ट्र, समाज एवं परिवार का अस्तित्व कायम हैं। हमें किसी भी जड़ अथवा चेतन वस्तु से प्रेम हो सकता है किन्तु एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से प्रेम सबसे ज्यादा भावनात्मक समझा जाता है। मनुष्य का ईश्वर प्रति प्रेम श्रेष्ठ माना जाता है। कई लोग प्रेम और भक्ति को एक समान स्वीकार करते हैं क्योंकि दोनों में अंह का त्याग और पूर्ण सम्पूर्ण का भाव विद्यमान होता है।

'प्रेम व्यक्ति के भीतर एक सक्रिय शक्ति का नाम है, यह वह शक्ति है जो व्यक्ति और दुनिया के बीच की दीवारों को तोड़ डालती है, उसे दूसरों से जोड़ देती है।'[2] **नालन्दा विशाल शब्द सागर** के अनुसार, 'प्रेम (संज्ञा पु.) सं. 1. वह मनोवृति जो किसी को बहुत अच्छा समझ कर हमेशा उसके साथ अथवा पास रहने के लिए प्रेरित करती है। मुहब्बत/प्रति/ प्यार। 2.स्त्री और पुरूष जाति के ऐसे प्राणियों का पारस्परिक स्नेह जो बहुधा रूप, गुण, सान्निध्य या काम वासना के कारण होता है। प्यार/प्रति/मुहब्बत।'[3]

प्रेम की ताकत से आप किसी के मन को ही नहीं सम्पूर्ण संसार को जीतने की शक्ति रखते हो। किसी भी समय का साहित्य शायद ही इस प्रेमभाव से अछुता रहा हो। यदि मनुष्य के जीवन में सभी रस है और प्रेम रस नही तो उसका जीवन नीरस है। इस प्रेम भाव से गुरू नानक देव जी भी प्रभावित रहे हैं। उनका कहना है :–

'जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ।।
सुबेधर का पाहुण जिउ आइआ तिउ जाउ।।1।।म।।'[4]

अर्थात जिन जीवरूपी स्त्रियों को पति रूपी ईश्वर का प्रेम नहीं मिला, उसके मिलाप का सुख न मिला। (वे इस मानवीय शरीर में आ के ऐसे ही जल गई) जैसे सुनसान घर में मेहमान खाली हाथ आऐ और खाली हाथ चलें गये। (उन्हें–खाना पीना कुछ हासिल नहीं हुआ) उस परमात्मा के प्रेम को न पाने के कारण उनका जीवन व्यर्थ ही गया।

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

गुरू नानक देव जी जहाँ इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है वहीं प्रेम के कठिन मार्ग की बात भी करतें है।

'जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।। सिर धरि तलि गली मेरी आउ।।
इतु मारणि पैरू धरीजै। सिरू दीजै काणि न कीजै।।20।।'[5]

हे जीव! यदि तुम ईश्वर से प्रेम करना चाहते हो तो सिर तली पर रख कर मेरी गली आना पड़ेगा अर्थात मेरी तरह ही सम्पूर्ण समर्पण, लोक लाज तथा हउमै (अहं) को त्यागकर किसी भी तरह के बलिदान के लिए तैयार रहना पड़ेगा। यदि एक बार इस मार्ग की ओर चल पड़े तो किसी भी तरह के बहाने नहीं चलेंगे, आवश्यकता पड़ने पर किसी भी तरह के बलिदान करने से पीछे नही हटना है।

गुरू नानक जी के जीवन तथा वाणी में प्रेम के विविध तत्त्वों का समावेश देखने को मिलता है जिनमें से प्रमुख हैं– ईश्वर प्रति प्रेम, गुरू प्रति श्रद्धा प्रेम, मानवीय प्रेम, सामाजिक प्रेम (वंचितों, निम्न जाति के लोगों एवम् उत्पीड़तों के प्रति), प्रकृति प्रेम, पारिवारिक प्रेम तथा शब्द प्रेम इत्यादि।

गुरू नानक को संत परम्परा के अंतर्गत रखा जाता है और भक्तिकाल की निर्गुण शाखा की ज्ञान मार्गी धारा के अंतर्गत भी। गुरू जी पर कबीर का प्रभाव भी स्वीकार किया गया है। वह कबीर की भांति ईश्वर को पति रूप में स्वीकार कर दाम्पत्य भाव भी प्रकट करते है तथा कबीर की तरह मूर्तिपूजा, आडम्बरों, अंधविश्वासों तथा रीति–रिवाज़ों का खण्डन भी करते हैं।

ईश्वर प्रति प्रेम– गुरू जी के प्रेम का रूप जो सबसे अधिक परिपक्व है वह है–ईश्वर प्रति प्रेम। ईश्वर प्रति प्रेम को जानने से पूर्व गुरू नानक जी ने जो ईश्वर के स्वरूप के बारें में जानकारी दी है उसे जानना भी आवश्यक है।

'ओंकार, सतिनामु, करतापुरूख, निरभउ, निरवैरू,
अकालमूर्ति, अजूनी, सैभंग गुरूप्रसादि।।

भावार्थ परमत्व जिसका वाचक ऊँ है केवल एक है। वह सत्य अर्थात सदा रहने वाला है। वह सृष्टि का रचयिता है तथा उसमें व्याप्त है। वह निर्भय है। उसकी किसी से शत्रुता नहीं। उसका अस्तित्व काल के प्रभाव से मुक्त है। वह जन्म नहीं लेता,वह स्वतः प्रकाश है। वह गुरू की कृपा से प्राप्त किया जा सकता है।'6 गुरू नानक जी यह भी स्वीकारते है कि उसके (हरि) के माता–पिता, सखा कोई नहीं है। उसने सृष्टि बनाई, उसने ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सारे देवी–देवताओं एवं प्रकृति को बनाया।

हमें अपना मानवीय जीवन उस अकालपुरूख के नाम जपने में लगाना चाहिए तभी हम आवागमन के चक्कर से मुक्त होकर उसकी ज्योत में समा सकते हैं। गुरूनानक जी बचपन से ही ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे। इससे संबंधित बहुत से उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। गुरू जी ने सुल्तानपुर में दौलत खाँ के यहाँ लोगों के लिए अनाज तोलने का काम किया था। वह सुबह उठते शहर के पास नदी में स्नान करने के बाद ईश्वर भक्ति में लीन रहते थे। 'जब अनाज तोलते तो सरकारी अंकों के हिसाब से बारह के पश्चात् तेरह का अंक आता था, वह तोलते समय तेरह पर आकर रूक जाते और.... तेरा....तेरा....तेरा करते रहते..... चाहे कितना भी अनाज डलता जाता। वह तेरा ही तेरा

करते रहते... मैं तेरा....तेरा...।'[7] जब इस बात की शिकायत दौलत खाँ को की गई तो निरीक्षण होने पर सब ठीक पाया गया।

इसी प्रकार जब गुरू जी भैसों को चराने गए तब भी घण्टों ईश्वर भक्ति में लीन रहें, उनकी भैंसे दूसरों के खेतों में जाकर फसलें खराब कर आई, जब बाद में आकार देखा गया तो फसलें ठीक अवस्था में ही मिली।

हम कह सकते है कि यदि गुरू नानक जी का सम्पूर्ण जीवन ईश्वर को समर्पित था तो ईश्वर भी सदैव गुरू जी का साथ देते थे। गुरू नानक जी का मानना था कि यदि हमें परमात्मा मिल जाये तो सारे दुःख समाप्त हो जाते है। 'आदि ग्रंथ में गुरू नानक देव जी ने इस विचार को ऐसे प्रस्तुत किया हैः सांसारिक शरीर रूप (प्रकृति) तरूवर पर जीवन रूप पक्षी इकट्ठे होकर निवास करते हैं, मन में पैदा हुए मोहपाश वश होकर कोई सुख तथा कोई दुःख का अनुभव करता है।.... यदि पूर्व संयोगवश किसी साधु पुरूष की भेंट हो जाए तो सत्य स्वरूप ब्रह्मा की प्राप्ति का सुख मिल जाता है।'[8]

गुरू नानक जी निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा ईश्वर की पति रूप में कल्पना कर रहे हैं–

'सभनी घटी सहु वसै सह बिनु घटु न कोई।।
नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ।।19।।'[9]

अर्थात् सभी के शरीर में उस परमात्मा की जोत है। कोई भी शरीर ऐसा नहीं है जिसमे ईश्वर (पति) की ज्योत न हो। किन्तु गुरू के उपदेश से जिसे ईश्वर (पति) मिलता है, नानक के अनुसार वही स्त्री (जीवात्मा) सही अर्थों में सुहागिन है।

गुरू जी हमें उस अकालपुरूख के साथ वैसा ही प्रेम करने का उपदेश देते है जैसे– पानी का कमल से, मछली का नीर से, चातक का वर्षा से तथा दुध का जल से है।

गुरू प्रति श्रद्धा प्रेम–गुरू नानक देव जी की वाणी में गुरू के प्रति अपार श्रद्धा एवं स्नेह प्रकट हुआ है। गुरू नानक मानते हैं कि यदि हमें उस अकालपुरूख के दर्शन करने हैं तो गुरू ही हमें उससे मिलवा सकता है। सच्चा गुरू ही जीवन के अंधकार को अपने ज्ञान के प्रकाश से मिटाता है। गुरू नानक देव जी कहते है यदि हम संसार रूपी भव सागर को तैर कर पार करना चाहते है तो हमें ऐसे गुरू की जरूरत है जो हमें तैराक के गुण सिखा सकें–

'जे तू पार पाणि ताहु पुछु तिड़न्ह कल।।
ताहू खरे सुजाण वंझाा एनी कपरी'।।3।।'[10]

इस तरह हम कह सकते है कि गुरू के बिना उस परमपिता को न तो समझा जा सकता है न ही पाया। गुरू नानक देव जी एक अच्छे गुरू के गुणों की चर्चा भी करते है। जो इस प्रकार है–

''सौ गुरू करउ जि साचु दृड़ावै। अकथु करावै सबदि मिलावै।।
हरि के लोग अवर नहीं कारा।। साचउ ठाकरू साचु पिआरा।।2।।
तन महि मनूआ मन महि साचा।। सो साचा मिलि साचे राचा।।
सेवकु प्रभु कै लागै पाइ।। सतिगुरू पूरा मिलै मिलाइ।।'[11]

हमें ऐसे गुरू के शिष्य बनना चाहिए, जो सत्य में दृढ़ हो। जो अज्ञात है उसका ज्ञान करा उस सत्य से मिला दें। जो उस हरि (परमात्मा) से मिला सकता है। यदि पुरा गुरू मिल जाये तो पुरा हरि मिल जायेगा।

'पुरे गुर ते नामु पाइआ जाइ।। जोग जुगति सचि रहै समाइ।।
बारह महि जोगी भरमाए सनिआसी छिप चारि।।
गुरूके सबदि जो मरि जीवै सो पाए मोख दुआरू।।'[12]

प्रभु का नाम (प्रभु की प्राप्ति) गुरू के द्वारा ही मिलता है। प्रभु में सदैव लीन रहना ही वास्तव में जोग जुगती है। किन्तु जोगी बारह और संन्यासी चार अलग–अलग व्यर्थ के साधनों में अपना जीवन व्यतीत करते हुए उस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर पाते। जो जीवात्मा गुरू के शब्दों के अनुसार जीवन से मृत्यु तक की यात्रा करती हैं वे माया से मुक्त हो, मुख्य द्वार (मोक्ष) को प्राप्त करती है। गुरू नानक देव जी गुरू के चरणों में अड़सठ तीर्थ स्वीकार करते है। गुरू सन्तोष वृक्ष है जो सदैव सम्पूर्ण और हरा भरा होता है और हमें भी उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए।

मानवीय प्रेम–'श्री गुरू नानक देव जी ने 24 साल में दो उपमहाद्वीपों के 60 प्रमुख शहरों की पैदल यात्रा की। इस दौरान उन्होंने 28 हज़ार किमी का सफर किया।'[13] गुरू जी अपनी यात्राओं के दौरान पंजाब, उत्तराखण्ड, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, त्रिपुरा, ओडिशा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तिब्बत, अफगानिस्तान, मक्का, मुल्तान, ईरान इत्यादि स्थानों पर गए। गुरू नानक जी सभी मनुष्यों की एक ही जाति स्वीकार करते थे तथा सभी को उस परमात्मा की संतान मानते थे। गुरू जी एक धर्म को मानते थे वह था मानवता का धर्म। मानवीय प्रेम के कारण गुरू जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन में मनुष्यों को वास्तविक धर्म एवं परमपिता की प्राप्ति का पाठ पढ़ाते रहे। एक स्थान पर गुरू जी कहते हैं–

''मैं किसी हिन्दु को नहीं देखता। किसी मुसलमान को नहीं देखता। मैं केवल मनुष्य को देखता हूं।''[14] एक अन्य स्थान पर गुरू जी मानव कल्याण की बात फिर कहते नज़र आते है। जब गुरू जी अपनी यात्राओं के बाद कुछ समय के लिए वापिस तलवंडी आऐ थे तो उनके माता–पिता को इस बात की सूचना मिली। उन्होंने गरू जी को घर आने के लिए कहा तो गुरू जी ने यह कहते हुए मना कर दिया, '' मैं केवल आपका ही पुत्र नहीं, मैं सर्वप्रथम अपने स्वामी ईश्वर का पुत्र हूँ। मुझे आपकी सेवा के लिए नही भेजा गया है। इस समय सारे संसार में अधर्म फैल रहा है। मुझे मानवता धर्म की रक्षा करनी है..... वह इनकी रक्षा करेगा।''[15]

जब गुरू जी अपनी यात्राओं के दौरान दिल्ली गये थे तो उनको और मरदाना को भी बन्दी बना लिया गया था। सिकंदर लोधी जब गुरू जी से मिलने गया तो गुरू जी की बातों सें प्रभावित होकर जेल में बंद अन्य सब साधुओं को भी छोड़ दिया। गुरू जी ने बाबर द्वारा हिन्दुस्तान की जनता पर हो रहे अत्याचारों की निंदा की थी। जब बाबर ने गुरू जी को बन्दी बनाया था तो गुरू जी ने अपनी वाणी द्वारा उसे सही मार्ग दिखाया। इस तरह गुरू जी जहाँ भी जाते मानव कल्याण करते तथा अधर्मियों को धर्म का सहीं पाठ सिखाते।

सामाजिक प्रेम (वंचितो एवं उत्पीड़तों के प्रति)– गुरू जी की वाणी द्वारा समाज के निम्न जाति के लोगों एवं स्त्रियों प्रति श्रद्धा प्रेम भी व्यक्त हुआ है। गुरू जी कहते हैं–

'नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।।
नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।।
जिथै नीच समालिअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।।'[16]

अर्थात जो नीचों में अति नीच जाति के हैं, गुरू जी उनके साथ है, उन्हें उच्च जातियों से कोई लेना –देना नहीं है। उस परमपिता की कृपा की नज़र भी उन गरीबों एवं नीच जाति के लोगों पर बनी रहती है।

गुरू नानक देव जी मानते हैं कि परमात्मा उन्हें ही मिलता है जो गुरूमुख होते है, वह चाहे किसी भी जाति या आर्थिक स्तर के क्यों न हो।

'सभू को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोई।।
इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ।
करमि मिलै सचु पाइऐ धुरि बखस न मेटे कोई।।'[17]

भावार्थ सभी मनुष्यों (जीवात्मा) को उच्च कहना चाहिए, किसी को भी नीच नहीं कहना चाहिए। उस अकाल पुरूख ने ही सभी को बनाया है तीनों लोकों में सभी ओर उसकी (परमात्मा) ज्योति फैली हुई है। अच्छे कर्म से ही उस सत्य रूपी परमात्मा को पाया जा सकता है।

गुरू नानक जी जाति अभिमान को झुठा मानते हैं, वह मानते हैं वही जीव उच्च है जिसने प्रभु चरणों में शरण ली है।

गुरू जी के जन्म के समय तत्कालीन राजनीतिक, समाजिक एवं आर्थिक स्थितियां अच्छी न थी। स्त्रियों की दशा भी बहुत दयनीय थी। गुरू जी स्त्रियों की ऐसी दशा देख कर चिंतित थे। गुरू जी स्त्रियों प्रति श्रद्धा भाव रखते थे तथा चाहते थे कि उन्हें वह सम्मान एवं आदर मिले, जिसकी वह अधिकारी हैं।

'भंडि जमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।।
भंडहु हौवे दोसती भंडहु चलै राहु।।
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि हौवे बंधानु।।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।।
भंडहु ही भंडु उपजै भंडै बाझु न कोई।।'[18]

भावार्थ हमारा जन्म नारी से होता है। हम नारी के गर्भ में पलते है, नारी से ही हमारी सगाई और शादी होती है। नारी ही हमारी दोस्त भी होती है, वह ही वंश को भी आगे चलाती है। यदि किसी पुरूष की स्त्री मर जाती है तो वह दूसरी स्त्री खोजता है। नारी से ही घर की मर्यादा बनी रहती हैं। नारी हमारे लिए इतना कुछ करती है तब भी हम उसे बुरा क्यों कहते हैं? उस नारी ने ही दुनिया के महान राजाओं को जन्म दिया है। नारी ही अपने जैसी दूसरी नारी को जन्म दे सकती है। परमात्मा के साथ–साथ उस नारी के बिना भी ससांर नही चल सकता।

इस प्रकार गुरू जी की वाणी समाज के वंचितों, उत्पीड़तों एवं स्त्रियों प्रति भी श्रद्धा स्नेह को प्रकट कर रहीं हैं।

प्रकृति प्रेम– गुरू जी की वाणी में प्रकृति प्रेम के कई दृश्य मिलते हैं कहीं कहीं तो गुरू जी ने प्रकृति वर्णन और परमात्मा को एक कर दिया है।

'एक अचारू रंग इकु रूप।।
पउणु पाणी अगनी उसरूपु।।'[19]

उस परमपिता का एक आचरण है, एक ही रंग, एक ही रूप है।। पानी, हवा अग्नि भी उसके ही रूप है।

गुरू जी मानते हैं कि इस प्रकृति की रचना भी उस अकाल पुरूख ने की है और बहुत चाव से इसे देख रहा है, 'दुयी कुदरति साजीऐ करि आसरगु डिठो चाउ।।'[20]

गुरू नानक जी यह भी स्वीकार करते हैं कि इस प्रकृति का निर्माण यदि उस ईश्वर ने किया है तो यह प्रकृति भी उस का गुणमान करती है और स्वयं उसकी आरती भी उतारती है।

'गगन मैं थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।।
धूपू मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।।
कैसी आरती होइ भव खंडन तेरी आरती।।
अनहता सबद वाजंत भेरी।।1।। रहाउ।।'[21]

भावार्थ उस ईश्वर की आरती के लिए सारा आकाश (मानो) थाल है सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए है और तारे मोतियों के समान है। मलय पर्वतों से जो वायु आ रहीं है, वह इतनी सुगन्धित है मानो जैसे धूप हो। सारी बनस्पति उस प्रभु के लिए फूल अर्पित कर रहीं है। जीवों का जन्म मरण नाश करन वाले तेरी कैसी आरती हो रही है? यह बहुत सुन्दर है। (सारे जीवों में रुमक रही है एक रस जीवन लौ) मानो तेरी आरती के लिए नगारे बज रहे हैं।

गुरू जी की वाणी में प्रकृति के विभिन्न–विभिन्न बिम्बों एवं दृश्यों को देखा जा सकता है। गुरू जी ने प्रकृति के मनोरस रूप प्रस्तुत कियें है।

पारिवारिक प्रेम–गुरू जी ने अपने जीवन के अधिकतर वर्ष मानव कल्याण के लिए यात्राओं के रूप में व्यतीत अवश्य किये किन्तु कुछ ऐसे उद्धरण भी मिलते हैं जिनसे उनका पारिवारिक प्रेम भी झलकता है। गुरू जी ने कभी भी अपने पिता की आज्ञा की अवज्ञा न की थी। एक बार पिता ने गुस्से में गुरू नानक देव जी को मारा था। तो भी गुरू जी ने इसका विरोध नहीं किया था। 'जब उन्होंने नानक को आराम से वृक्ष के नीचे लेटे देखा तो उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने न कुछ पूछा, न कहा, पहुंचते ही बालक नानक को उठाकर मारना शुरू कर दिया..... नानक जी ने हाय तक न की, वह अपने गालों को बारी–बारी उनके आगे करते रहें, उनकी आँखों से आंसू निकल आये। पिता अपने पुत्र की आँखों में आंसू देखकर तड़प उठे। उन्होंने रोते हुऐ अपने सीने से लगा लिया। बाप–बेटे दोनों का प्यार आंखों के रास्ते फूट पड़ा था।''[22]

गुरू जी अपनी बहन नानकी से बहुत प्रेम करते थे। अपनी यात्राओं के लिए निकलने से पूर्व उन्होंने अपनी बहन को कहा था, वह जब भी उसे याद करेंगी वह आ जाया करेंगे।

गुरू जी का पारिवारिक प्रेम इस रूप में भी व्यक्त होता है कि उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति में कभी भी गृहस्थ जीवन को बाधा स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि संन्यासी न होकर परिवार में रहते हुए भी आप उस प्रभु को प्राप्त कर सकते हो। गुरू जी ने भी गृहस्थ जीवन व्यतीत किया था। उनके दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीदास भी थे।

भाषा के प्रति प्रेमः– गुरू जी भाषा प्रेमी थे। उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था। 'उनकी भाषा 'बहता नीर'' थी जिसमें फारसी, मुल्तानी, पंजाबी, सिंधी, खड़ी, बोली, अरबी के शब्द समा गए थे।'[23]

गुरू जी ने जहां आम बोल चाल की भाषा में आम जनता में अपने उपदेशों का प्रचार किया था वहीं बड़े–बड़े काजी, मुल्ला एवं पडितों से विद्ववतापूर्ण भाषा में तर्क–वितर्क भी किये थे।

गुरू नानक देव जी ने भाषा के साथ–साथ शब्दों के महत्व को भी स्थापित किया है। गुरू नानक देव जी की मान्यता थी जो जीवात्मा गुरू के शब्द में रंग जाती है वही उस सच्चे प्रभु से मिल पाती है। शब्दों के द्वारा ही हम अंह, लोभ, काम, माया को जला कर आन्तरिक मल (गंदगी) को खत्म कर सकते है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुरू नानक का जीवन एवं वाणी प्रेम के विविध आयामों को अपने में समाहित कियें हुए है। गुरू नानक देव जी का सम्पूर्ण जीवन मानव कल्याण एवं सुधार को समर्पित रहा और उनकी वाणी आज भी इसी कार्य में कार्यरत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सिंह, भाई जोध (सं), गुरू नानक वाणी, डॉ. हरिभजन सिंह (हिन्दी रूपान्तरकार), नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण– 2019, पृष्ठ संख्या– 94
2. धीर, युगांक, प्रेम का वास्तविक अर्थ और सिद्धान्त, मेरठः संवाद प्रकाशन, तृत्तीय संस्करण– 2010, पृ. संख्या– 18
3. श्री नवल जी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, नई दिल्लीः आदीम बुकडियो, संस्करण– 1988, पृ. सं. 922
4. सिंह, भाई जोध (सं), गुरू नानक वाणी, डॉ. हरिभजन सिंह (हिन्दी रूपान्तरकार), नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण– 2019, पृष्ठ संख्या–72
5. वहीं, पृष्ठ संख्या–94
6. वही पृष्ठ संख्या–01
7. पाठक, नरेन्द्र, गुरू नानक देव, दिल्लीः सन्मार्ग प्रकाशन, संस्करण– 1970, पृष्ठ संख्या– 38
8. विलखू, डॉ. सुरैण सिंह, आदि ग्रंथ के परंपरागत तत्वों का अध्ययन, पटियालाः भाषा विभाग पंजाब, संस्करण– 1978, पृष्ठ संख्या– 78
9. सिंह, भाई जोध (सं), गुरू नानक वाणी, डॉ. हरिभजन सिंह (हिन्दी) रूपान्तरकार), नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–32
10. वहीं, पृष्ठ संख्या–54
11. वहीं, पृष्ठ संख्या– 54
12. वहीं, पृष्ठ संख्या– 54
13. https://wwww.bhaskar.com

14. पाठक, नरेन्द्र, गुरू नानक देव, दिल्लीः सन्मार्ग प्रकाशन, संस्करण 1970, पृष्ठ संख्या–39
15. वहीं, पृष्ठ संख्या– 62
16. सिंह, भाई जोध (सं), गुरू नानक वाणी, डॉ. हरिभजन सिंह (हिन्दी) रूपान्तरकार), नई दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–87
17. वहीं, पृष्ठ संख्या– 38
18. वहीं, पृष्ठ संख्या– 124
19. वहीं, पृष्ठ संख्या– 02
20. वहीं, पृष्ठ संख्या– 10
21. सिंह, भाई जोध (सं), गुरू नानक वाणी, डॉ. हरिभजन सिंह (हिन्दी) रूपान्तरकार), नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या–62
22. पाठक नरेन्द्र, गुरू नानक देव, दिल्लीः सन्मार्ग प्रकाशन, संस्करण– 1970, पृष्ठ संख्या–32
23. https://hi.m.wikipedia.org>wiki

श्री गुरु नानक देव का संगीत प्रेम

मधु कुमारी*

मध्ययुग के जिन महात्माओं ने भारतीय संत साधना और समाज को अत्यधिक प्रभावित किया था, उनमें गुरुनानक का नाम प्रमुख है। जब उनका आगमन हुआ तब झूठ रूपी अमावस्या की रात थी और सत्य का चन्द्रमा अस्त हो गया था। समाज पूरी तरह जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त था। इसके अलावा इस्लाम धर्म का प्रवेश भी हो चुका था। कुरीतियाँ, रुढ़ियां और द्वेष के कारण सामाजिक व्यवस्था और अधिक उलझता जा रहा था। गुरुनानक देव बचपन से ही अध्यात्म मार्ग पर प्रशस्त हो गए और जैसे–जैसे बड़े होते गए उन्हें साधु संगत, भ्रमण और धर्मोपदेश का अवकाश भी प्राप्त होता गया। नानक ने चारों दिशाओं की यात्रा की और समाज को प्रेम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। गुरुनानक को संगीत से बहुत प्रेम था, पर उनका संगीत प्रेम समझने के लिए पहले प्रेम के विषय में जानना आवश्यक है कि प्रेम और उसका आधार क्या है? गुरुनानक कहते हैं जहाँ लेना–देना होता है वह स्वार्थ है, लेना–देना व्यापार है, केवल देना प्रेम है, यानि दूसरों को आनंदित देखकर स्वयं आनंद का अनुभव करना यही प्रेम है। मानव जीवन का आधार है।

नारद भक्ति सूत्र 51 में लिखा है 'अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्' अर्थात् प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय का अर्थ है जिसका निरूपण शब्दों में नहीं किया जा सके क्योंकि प्रेम एक भावना का नाम है। जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल महसूस किया जा सकता है। प्रेम उस वायु की भांति है जो हमें दिखाई नहीं देती किन्तु वही हमें जीवन देती है। संसार किसी स्त्री को कुरूप बोल सकता है क्योंकि वह उसे तन की आँखों से देखता है परंतु संतान उसी माता को संसार में सबसे सुंदर समझती है क्योंकि वह भाव से जुड़ी है। तन की आँखों से देखने पर पहचाना नहीं जा सकता इसलिए अगर प्रेम को समझना है तो मन की आँखों को खोलना होगा। जब भी प्रेम की बात आती है तो हम सबसे पहले अपने मन मे एक नायक और नायिका का चित्रण कर लेते हैं पर क्या प्रेम केवल नायक–नायिका के आकर्षण का बंधन है? नहीं, प्रेम तो परिवार से हो सकता है, मित्रों से हो सकता है, देश और जन्मभूमि के लिए हो सकता है, मानवता के लिए हो सकता है, किसी कला के लिए हो सकता है, इस प्रकृति के लिए हो सकता है, पर प्रेम कभी उस पन्ने पर लिखा ही नहीं जा सकता, जिस पर पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है। जिस प्रकार एक भरी मटकी में और पानी आ ही नहीं सकता, पहले उस मटकी को खाली करना होगा, ठीक उसी प्रकार प्रेम को पाने के लिए मन को खाली करना पड़ेगा। अपनी इच्छा, सुख, त्याग कर समर्पण करना होगा। जिस प्रकार गुरुनानक देव ने अपना सुख, इच्छाएँ त्याग कर मानव कल्याण के लिए गए समर्पित हो गए और उन्हें अपने आस–पास की हर एक वस्तु में प्रेम दिखाई देने लगा। संगीत प्रेम के माध्यम से उन्होंने ना जाने कितने सुधार किये कितने संदेश दिये जिससे समाज में कल्याण की

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

भावना जागृत हुई। संगीत से ऐसी प्रीत लगाई कि वह ईश्वर में पूर्ण रूप से मग्न हो गए और लोगों को भजन कीर्तन का संदेश दिया। संगीत प्रेम से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उसमें विलीन होकर मनुष्य के अहंकार, द्वेष, अशांति समाप्त हो जाते हैं। इसका सच्चा उदाहरण स्वयं गुरुनानक देव हैं। गुरुनानक देव द्वारा मधुर भजनों को सुनकर क्रूर से क्रूर व्यक्तियों का मन शांत हो जाया करता और वह अपने को सुधारने की स्थिति में आ जाते। गुरुनानक देव ने कई रचनाएँ की हैं, जैसे–जपुजी, पट्टी (आसा राग में) बारह माह (तुखरी राग में) और तीन वार (माझ, आसा और मलार राग में), सुखमनी साहिब, सोहिला जो सोने से पहले गाया जाता है और जपुजी में उनका सार तत्त्व है। सिध गोसटि, ओंकर, माझ की वार, मलार की वार, और बारहमासा (तुखारी राग) नामक लंबी रचनाएँ की और 578 फुटकल शब्द (पद्) भिन्न–भिन्न अवसरों पर संगीत की तानों के साथ गुरु ने अपने मधुर कंठ से गाए हैं। यह सभी रचनाएँ बीस रागों में सुरक्षित की गई है जिसे आज भी धार्मिक स्थलों पर भजनों और गीतों में गाया जाता है। गुरुनानक देव को संगीत से बहुत प्रेम था। उन्होंने शिक्षा भी गान पदों और शब्दो के माध्यम से दी है। गुरुनानक देव का अपूर्व संगीतज्ञ होना इसी बात से प्रामाणिक होता है कि जो लोग संगीत से नफ़रत करते थे और जहाँ संगीत वर्जित था वहाँ के लोगों के मन में संगीत के प्रति प्रेम उत्पन्न करके नानक ने वहाँ पर भी संगीत को मन में एकाग्र करने का श्रेष्ठ साधन सिद्ध कर दिया। जिस इंसान के हृदय में तिस्कार की भावना थी, वह गुरु नानक के मधुर संगीत को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ उसके मन से तिस्कार का भाव दूर हो गया। मुस्लिम शासकों ने संगीत को निंदनीय कहा था और उनका मानना था कि संगीत मन की शांति को भंग करता है और मन को उत्तेजित करता है पर गुरुनानक ने तर्क पूर्वक बताया की भक्ति परक संगीत कभी भी मनुष्य के मन को दूषित नहीं कर सकता जो आचरण को दूषित और मन में वासनाएँ पैदा करे वह शाश्वत संगीत नहीं कहला सकता जिस संगीत में अनहद नाद उपस्थित हो और जो ज्ञान का भण्डार हो ऐसा संगीत सदैव मानव जीवन को शान्ति देता है। उनके गीतों में हिंदी–फ़ारसी बहुल पंजाबी शब्द विद्यमान है। उनकी वाणी में अलंकार का सहज प्रयोग हुआ। उपमा, रूपक, प्रतीक और अनुप्रास उनके प्रिय अलंकार हैं और उनके पद राग–रागिनियों में रचित हैं।

बचपन की एक घटना के माध्यम से इसे स्पष्ट कर सकते हैं, एक बार की बात है कि गुरुनानक देव के पिता ने उन्हें पाठशाला भेज दिया। मास्टर ने पट्टी पर कुछ शब्द लिखने के लिए कहा और इसे पढ़ कर सुनाओं जब गुरुनानक देव ने इसे पढ़ा तो मास्टर चौंक उठें क्योंकि यह एक पंजाबी भाषा में लिखा गया एक धार्मिक गीत था। जिसे नानक ने निम्न कविता के रूप में लिख डाला था। वह इस प्रकार हैः–

"जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारू ।।
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बिचारु ।।
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंत न पारावारु ।।
बाबा एहु लेखा लिखि जाणु ।।
जिथे लेखा मांगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु ।।"[1]

अर्थात् मोह को जला कर फिर उस को घिस कर स्याही बनाओं और बुद्धि को श्रेष्ठ कागज़ बनाओ और परमात्मा से पूछ कर लिखो यही लेख लिखना जानना चाहिए। जब कभी यह लेख माँगा जाएगा तो यही प्रमाण होगा।

इस प्रकार नानक ने मास्टर को सच्ची शिक्षा का संदेश दिया। गुरुनानक देव को गीतों से बचपन से ही प्रेम था। एक बार की घटना इस प्रकार है कि जब कालू जी ने धागा धारण करने का समारोह आयोजित करने का सारा प्रबंध किया गया, पण्डित भी बुलाये गये दीपक, धूप जलाये गये। नानक को बुलाया गया जब उन्होंने यह सब देखा तो उन्होंने कहा कि आप इस प्रकार के चिह्नों से मानव को पृथक कैसे कर सकते है। मैं इस जनेऊ को धारण नहीं करूँगा। उन्हें समझाया गया कि तुम क्षत्रिय हो तुम्हें धारण करना चाहिए, परन्तु नानक ने जनेऊ धारण नहीं किया और पण्डित हरदयाल को एक गीत सुनाया।

"दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु बटु ।।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे धतु ।।
ना एहु तूटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ ।।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ।।"[2]

अर्थात् दया का कपास, सयंम रूपी गांठ हो और सत्य का बल हो, हे पण्डित यदि इस प्रकार का जनेऊ तुम्हारे पास है, तो पहना दो, न यह टूटता है, न इसे मल लगता है, न यह जलता है, ना ही यह नष्ट होता है। जो प्राणी इसे धारण कर कंठ में डाल कर चलता है वह धन्य है।

गुरुनानक ने गीत के माध्यम से पण्डित को सही जनेऊ धारण करने का पाठ सिखाया। नानक ने अपने जीवन काल में कई अवस्थाओं में संगीत के माध्यम से लोगों में मानवता, विनम्रता, दया, करुणा, सच्चा प्रेम, भक्ति का भाव जगाने का प्रयास किया है।

"गुरुनानक देव ने रात्रि के पिछले पहर में भजन गाने की प्रथा चलाई। उनके पीछे खड़ा होकर भजनों को प्रेम पूर्वक श्रवण करने वाला एक सात वर्ष का बालक वहाँ नियमपूर्वक आने लगा। गुरु के प्रश्न करने पर उसने अपने वहाँ उपस्थित होने का कारण इस प्रकार बतलाया कि 'एक दिन मेरी माँ ने उसे आग जलाने के लिए कहा था, जब मैंने लकड़ियाँ जलाने के लिए लगायीं, तब देखा कि छोटी–छोटी टहनियाँ पहले जल जाती हैं और बड़ी–बड़ी लकड़ियाँ की बारी पीछे आया करती है। यह देखकर मुझे भय हो गया कि कम अवास वाले पहले मर जाएँगे और बड़ों की बारी पीछे आएगी और यही विचार कर मैंने आपके भजनों का श्रवण करना उचित समझा।' गुरुनानक देव इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और वैसे गम्भीर कथन के कारण उस बालक का नाम 'बुड्ढा' रख दिया। यह भाई बुड्ढा अंत मे 107 वर्षो का होकर मरा और अपने समय में उसने पाँच गुरूओं को अपने हाथ से उनके आसन पर तिलक द्वारा अभिषिक्त किया।"[3]

गुरुनानक देव के निवास–स्थान पर आज भी प्रतिदिन 'जपुजी' एवं 'आसा दी वार' का पाठ हुआ करता है और तब इनके दूसरे भजनों का गान होता है। भजनों व पदों की व्याख्या हो जाने पर 'गगन मैं थाल' आदि पंक्तियों द्वारा आरती की जाती और जलपान किया जाता है। तीसरे पहर फिर गान होता है और तब संध्या समय 'सोदर' का पाठ हो जाने पर सभी सिख एक साथ भोजन किया करते हैं। गाने का क्रम रोज उसी क्रम में चलता है और अंत में 'सोहिला' का पाठ समाप्त हो जाने पर लोग अपने निवास स्थान पर सोने चले जाते हैं। गुरुनानक देव ने अब यात्रावाली वेश–भूषा का परित्याग कर दिया तब और अपनी कमर में एक दुपट्टा, कंधे पर एक चादर तथा सिर एक पगड़ी मात्र धारण करने लगे थे। यह सब बदलाव संगीत प्रेम के कारण ही हुए। इस प्रकार

गुरुनानक देव के कारण ही लोगों में संगीत प्रेम के प्रति जागरूकता आई। लोगों ने जगह–जगह कीर्तन, भजन, गाना शुरू कर दिया। गुरुनानक देव जब धार्मिक गीतों का उच्चरण करते तब उनके साथ मरदाना रबाब नामक वाद्य यंत्र बजाते थे। संगीत प्रेम जीव को शान्ति प्रदान करता है। मन में विनम्रता का बोध कराता है।

प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते लिखा है – "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य–लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साथ साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय को दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि से आनंद का अनुभव होने लगे। जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।"[4]

गुरु नानक देव को भी कीर्तन, भजन, श्रवण से आनंद का अनुभव होता क्योंकि जैसे–जैसे वह संगीत में अपने आप को विलीन करते जाते वह परमात्मा के और भी करीब होते जाते। संसार रूपी मोह का बंधन दिन–प्रतिदिन क्षीण होता जाता, ज्ञान रूपी आँखे, खुलती जाती। परमात्मा के प्रति भक्ति रस का संचार होता। गुरुनानक देव की बचपन की एक घटना है जब उनके पिता उन्हें अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाने के लिए कहते हैं तो नानक जी ने उन्हें कुछ शबद पढ़कर सुनाएँ–

"मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु ।।
नाम बीजू संतोख सुहागा रखु गरीबी वेसु ।।
भाउ करम करि जंमसी से घर भगठ देखु ।।
बाबा माइआ साथि न होइ ।।"[5]

भावार्थ यह है कि मन रूपी हल को चलाने वाला, शुभ कर्मों की खेती व परिश्रम को जल और शरीर को खेत बनाकर, नाम को बीज, संतोख को लकड़ी का सुहागा, नम्रता को वृत्ति बनाने का संदेश दिया है कि मनुष्य को यह सब धारण करना चाहिए और जो ऐसी खेती करेगा वह पूर्णरूप से भाग्यशाली माना जाएगा।

गुरू नानक देव को संगीत से इतना प्रेम था कि वह ज्यादातर उपदेश गीतों के माध्यम से देते और हर परिस्थिति को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त कर देते। एक बार की बात है जब लोगों ने पिता कालू से कहा कि तुम्हारा पुत्र स्वस्थ नहीं है तब कालू जी हरदास वैद्य को बुला कर लाए उन्होंने नानक की कलाई पकड़ी और नाड़ी देखने लगे। वैद्य ने कहा कि यह शरीर का रोग नहीं है तब नानक यह 'सलोक के पद' गाने लगे।

"वेदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढढोले बांह ।।
भोला वैद न जाणई करक कलेजे माहि ।।"[6]

वैद्य को इलाज करने के लिए बुलाया गया और वह बाजू को पकड़ कर रोग ढूँढता है किंतु वह भोला वैद्य नहीं जानता कि यह रोग प्रभु के वियोग की पीड़ा का है। यह उसी की कसक है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि गुरुनानक देव पूर्णरूप से परमात्मा की भक्ति में लीन थे। संगीत प्रेम में वह अपने आपको पूरी तरह से समर्पित कर देना चाहते थे। नानक जब अपनी बहन से अलग किराये के घर मे रहते थे तब वह साधारण भोजन कर लेते थे। रात्रि में देर तक प्रार्थना करते, ईश्वर स्तुति के भजन गाते रहते और भजनों में अपने

आप को पूर्ण रूप से लीन रखते। पहले नानक की छोटी सी भक्त मण्डली हुआ करती थी। परन्तु वह धीरे–धीरे बढ़ती गई। बड़ी मात्रा में लोग उस मण्डली में जुड़ते गये। विवाह के बाद सुलक्खणी जी रात्रि में नाम–कीर्तन में शामिल होने वालों का भोजन बनाती। गुरुनानक देव के संगीत प्रेम का अंदाजा इसी बात से लगया जा सकता है कि उन्होंने जितने भी उपदेश दिए वह सभी रागों में बध है जैसे– सिरी रागु, माझ रागु, गउड़ी रागु, आसा रागु, गूजरी रागु, बिहागड़ा रागु, सोरठि रागु, धनसारी रागु, तिलंक रागु, सूही रागु, बिलावत रागु, रामकली रागु, मारू रागु, तुखारी रागु, भैरउ रागु, बसंत रागु, सारंग रागु, मलार रागु, परभाती रागु ये सभी गाने वाले पद है। इन्हें पूर्ण रूप से भजनों के रूप में गाया जा सकता है। गुरु नानक देव के समय में मुसलमानों का शासन था। उस समय के शासकों को संगीत से कोई लगाव नहीं था। बाबर एक कट्टरपंथी शासक था उसने कला का विरोध किया। पर उस समय गुरुनानक देव ने संगीत का महत्त्व बताया और लोगों को भजन कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया। नानक के भजनों में निरीह भक्ति–निर्भर संत का जीवन प्रतिफलित हुआ है। गुरुनानक देव के पदों में ईश्वरीय भक्ति के साथ–साथ सामाजिकता धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। उनकी रचनाओं में मानव की शूद्र सीमाओं और स्वार्थपरता, असत्य–प्रियता, अर्थ लोलुपता, कामुकता आदि का चित्रण विवेचन और विश्लेष्ण हुआ है और उसका निदान भी मिलता है।

जब मरदाना की कन्या का विवाह था तब दहेज की वस्तुओं को लेने के लिए भागीरथ नामक व्यक्ति को लाहौर भेजा गया। उसकी भेंट दुकान के स्वामी मनसुख नामक व्यक्ति से हुई। भागीरथ ने गुरु जी के बारे में बताया। नाम सुनते ही उसके मन में मिलने की इच्छा जगी। उनकी दुकान में चूड़े के अतिरिक्त सभी वस्तुएँ मिल गई पर चूड़ा नहीं मिला। मनसुख ने अपने घर से चुड़ा लाकर भागीरथ को दिया और गुरु जी के दर्शन के लिए प्रार्थना करने लगा और भागीरथ के साथ सुल्तानपुर आ गया। वहीं वह शिष्य बन गया और नानक के गीतों को लेख–बद्ध किया। गुरु जी के लेखों का सबसे पहले लिखित रूप उसी के द्वारा दिया गया। लाहौर में उनके गाने के लिए एक संगत की स्थापना की गई। गुरुनानक देव ने परमात्मा की भक्ति करने का संदेश दिया और उनके मुख से भक्ति में गीत स्वतः प्रवाहित होने लगते थे।

"कोटि कोटि मेरी आरजा पवणु पिअणु अपिआउ ।।
चंदू सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सुउण न थाउ ।
भी तेरी कीमती ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।
साचा निरंकारु निज थाइ ।।
सुणि सुणि आखणु आखण जे भावै करेतमाइ ।
कुसाकटिआ वार वार पीसणी पिसा पाइ ।
अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जा़उ ।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडू आखा नाउ ।
पंखी होइ कै जे भवा सै आसमानी जाउ ।
नदरी कैसै न आवऊ ना किछु पिआ नाखाउ ।।
भी तेरी कीमती ना पावै हउ केवडू आखा नाउ ।।
नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ।।

मसु तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ।।
भी तेरी कीमति ना पावै हउ केवडू आखा नाउ ।।"[7]

नानक ईश्वर की भक्ति में कहते है कि मेरी आयु क़रोडों वर्ष हो जाये और पवन ही मेरा भोजन हो जाये। कन्दरा में बैठे हुए सूर्य चन्द्रमा को भी न देख पाऊ और सपने में भी सोने ना पाऊ अर्थात् लगातार जागता रहूँ। आगे कहते है कि मैं तुम्हारें नाम को कितना बड़ा बताऊँ। गुणों का सुन–सुन कर वर्णन किये जाते है। यदि वह प्रसन्न होंगे तो खुद ही दर्शन कर देंगे। आगे कहते है कि मैं बार–बार काट दिया जाउँ तथा टुकड़े–टुकड़े बना दिया जाउँ चाहे तो चक्की में पीस दिया जाऊँ, अग्नि से जला जलाया दिया जाऊँ, भस्म से साथ पानी में घोल दिया जाऊँ तब भी मैं आपकी महिमा का पता नहीं लगा सकूँगा और आपके नाम का पूर्णरूप से ना गुणगान कर सकूँगा। यदि मैं पक्षी की तरह आसमान में उड़ जाऊ ना मैं वहा खाऊं न पीऊ तब भी मैं आपकी महिमा का अंत ना ही पा सकूँगा। आगे नानक जी कहते है कि मेरे पास बहुत सारे कागज़ हो और ढेर सारी बुद्धि हो, ढेर सारा धन हो, और यदि में उसे वायु की गति से भी लिखता जाऊँ तो भी आपकी महिमा का वर्णन नहीं कर पाऊँगा।

एक बार की बात है कि एक सज्जन नाम का व्यक्ति जो बहुत ही दुष्ट था वह अपने ठग साथियों की सहायता से सुप्त पथिकों की हत्या कराके और उन्हें लूट लेता। पथिकों को परलोक भेजकर सुबह अपने साथियों को तीर्थ यात्रियों का वस्त्र पहन कर स्वयं हाथ में माला लेकर बाहर आता तथा एक कालीन बिछवा कर उस पर नमाज़ पढ़ने लगता। एक दिन गुरु नानक रात्रि में बहुत देर तक जागते रहे। जब प्रतीक्षा करके सज्जन अधीर हो उठा तब वह कमरे के अंदर नज़र डालने के लिए द्वार पर आया और उसने देखा मरदाना रबाब बजा रहा था, नानक प्रेम में मग्न गीत गा रहे थे। उस दृश्य ने सज्जन का हृदय पकड़ लिया, मधुर संगीत ने उसके अंतराल को तरंगित कर दिया। उसके हृदय की अशान्ति शांत हो गई और उसने अपने मन में उदित होती हुई एक नवीन चेतना का अनुभव किया और उसने गुरु जी के चरणों में गिर कर माफी माँगी। इस प्रकार संगीत में वो शक्ति है जो दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में परिवर्तन ला सकती है। गुरुनानक देव की वाणी में एक विशेष प्रकार कि अनुभूति है जो मनुष्य के हृदय को परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। मन के सारे द्वेष अहंकार को मिटा देती है और शांति का अनुभव करती है। जिस से व्यक्ति के भीतर मानवता का संचार होता है।

"गुरुनानक ने परमात्मा को सत्य–रूप माना है। वह अतीत का सत्य है, वर्तमान का है भविष्य का भी। वह विकलातीत सत्य है :

आदि सचु ,जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी सचु।

सत्य का अर्थ ही 'है' है। परम्परा–क्रम से हम जिस सच्चिदानन्द को सुनते आये है उसके तीन तत्व है; सत्, चित, आनन्द। उसकी सत्ता त्रिकाल में है। इसलिए वह सत् है। काल हमारी सीमित दृष्टि का आभासित तत्व है। इसलिए केवल यह कहना कि वह अतीत, वर्तमान और भविष्य से बना रहता है।"[8]

गुरुनानक देव ने गीतों में अपने आप को इस क़दर विलीन कर लिया कि 'मैं' और 'तुम' का द्वंद ही खत्म हो गया। संगीत एक ऐसा माध्यम है जिस से मानव जुड़ कर भक्ति में लीन होकर मन को शुद्ध कर लेता है। जातियों का भेद मिट जाता है। नानक ने

'ना कोई हिन्दू ना कोई मुसलमान' का संदेश दिया तो उनकी वाणी सुन कर लोग अभिभूत हो गये।

"मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ।।
अवलि अउलि दिनु करि मिठा मसकल माना मालु मुसावै ।।
होइ मुसलीमु दीन मुहाणै मरण जीवन का भरमु चुकावै ।।
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै ।।
तउ नानक सरब जिआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै ।।"[9]

मुसलमान कहलाना मुश्किल है, यदि कोई अपने आपको मुसलमान कहलाना चाहता है सबसे पहले अपने धर्म के नियमों को हृदय में बैठाना चाहिए और अपने आपको गर्व से युक्त कर लेना चाहिए। मुसलमान वही कहला सकता है, जो इस्लाम के प्रवर्तक द्वारा दिखाए रास्ते पर चले, मरण जीवन की भ्रांति समाप्त कर दे। परमात्मा पर विश्वास रखे, अपने आप को ईश्वर को समर्पित कर दे। दया–भाव रखे वही मुसलमान कहला सकता है। हिन्दू और मुसलमान सब नवाब से कहने लगते थे कि नानक के ओंठों पर परमात्मा बोलता है।

गुरु जी ने श्रवण को ज्ञान के लिए आवश्यक बताया है जैसे "श्रवण से ही मनुष्यों, देवताओं और परमात्मा के गुण रूपी सरोवर का थाह मिलता है। श्रवण के ही फलस्वरूप मनुष्य शेख, पटि और पातशाह बन जाते हैं। श्रवण से ही ज्ञानान्धों को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। श्रवण से परमात्मा के असीम स्वरूप का बोध होता है और उसकी अथाह गति हाथ में आ जाती है।"[10]

निष्कर्ष – संगीत का जो माधुर्य नानक की वाणी में है वह शायद ही किसी अन्य संत कवि में होगा उनकी कविता तालबध्य, तुकांत एवं संगीतबध्य है। रबाबी मरदाना हर समय उनके साथ–साथ था। मरदाना साज पर सुर निकालता था गुरुदेव रच–रच कविता गाते थे। इस तरह कविता और संगीत गंगा–यमुना की तरह साथ–साथ चलते रहे। उनकी कविता रागों में बँधी हुई शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। उसमें लोकसंगीत का भी समावेश किया गया है, लोक–धुनों को भी शास्त्रीय रूप दे दिया गया है। अनुप्रास एवं समुचित वर्ण–योजना द्वारा नाद–सौंदर्य उत्पन्न करके संगीतात्मकता की संवृद्धि भी यत्र–तत्र की गई है। गुरु नानक देव जी ने अपने पूरे जीवन को मानव कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। भजन कीर्तन गीतों के माध्यम से अपने आपको समर्पित कर दिया गुरु नानक देव ने अपने आप को इस तरह प्रेम और भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वंदना, दास्यभाव, सख्य भाव, आत्म निवेदन इन तत्व को आधार बनाकर ईश्वरीय भक्ति की और नानक ने लोगों में नये जीवन का संचार किया है, जिसका आधार प्रेम, करुणा, दया, मानवता, विनम्रता, श्रम, भक्ति हो और यही संदेश दिया। जिस से मानव का कल्याण हो सके और काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, को त्यागने के लिए कहा। नानक ने संगीत के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त कर लिया और उन्हीं में वह समाहित हो गए और अपने पीछे अपनी वाणियों को छोड़ गए जो आज तक गायी जाती है जिन से लोगों के मन को शांति का अनुभव होता है।

संदर्भ सूची :–

1. जग्गी, डा० रत्नसिंह (संपा०), गुरुनानक रचनावली, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला प्रकाशन, संस्करण 1970 (सीरी रागु), पृष्ठ संख्या – 28
2. आसा रागु (वार), पृष्ठ संख्या – 298
3. चतुर्वेदी परशुराम, उत्तर भारत की सन्त परम्परा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या – 211–212
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, चिन्तामणि, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या –18
5. जग्गी, डा० रत्नसिंह (संपा०), गुरु नानक रचनावली, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला प्रकाशन, संस्करण 1970, रागु सोरठि, पृष्ठ संख्या – 344
6. मलार रागु, पृष्ठ संख्या – 716
7. रागु सिरी रागु, पृष्ठ संख्या – 24–26
8. द्विवेदी मुकुन्द, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1998, पृष्ठ संख्या – 239
9. जग्गी, डा० रत्नसिंह (संपा०), गुरुनानक रचनावली, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला प्रकाशन, संस्करण 1970 रागु माझ (सलोकु), पृष्ठ संख्या – 110
10. मिश्र, जयराम, श्री गुरुग्रन्थ–दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या – 237

श्री गुरु नानक वाणी में प्रयुक्त लोक काव्य–रूपों का परिचय

पवनदीप कौर*

मध्यकालीन धर्म साधना में गुरु नानक देव जी का गौरव पूर्ण स्थान है। गुरु नानक देव जी अपने समस्त जीवन में जन कल्याण के लिए ही अग्रसर रहे। जहाँ एक ओर वे धर्म के पुनरूद्धारक, सत्य के अन्वेषक थे, वहाँ दूसरी ओर समाज के उन्नयन में निर्भीक जन नायक थे। गुरु जी की काव्य विचारधारा से उनका व्यक्तित्व जाना जा सकता है। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व मानव जाति के अभ्युदय के लिए है। इसी कारण उनकी काव्य विचारधारा से मानव जाति के दर्शन होते हैं। गुरु जी की काव्य विचारधारा की अपनी एक शैली है, एक रूप है जो उनके निजी अनुभव पर आधारित है। उनकी काव्य शैली का रूप स्वतंत्र है इसीलिए उन्होंने अपने विचारों को प्रकट करने के लिए लोक का आश्रय लिया। लोक का आश्रय लेने के कारण उनका काव्य समाज में जन प्रिय हुआ। गरु नानक देव जी ने लोक में प्रचलित काव्य रूपों को आधार बनाकर वाणी के संदेश को जन–जन वाहक बनाया। गुरु नानक देव जी के समय जो लोक काव्य प्रचलित था उसकी ध्वनि घरों से बाहर सुनाई देने लग गई थी। त्यौहारों, मेलों, खुशी, गमी और अनेक समाजिक समारोहों पर यह लोक काव्य लोगों की धड़कनों के साथ एक स्वर हो गुंजता था। पंजाबीयों के भरपूर, विलक्षण जीवन की तरह यह लोक काव्य भी अनेक रुपों वाला था। गुरु जी ने भी इन अनेक लोक काव्य–रूपों को अपनाया और वाणी के माध्यम से नए रूप में प्रस्तुत किया। ''जिस बर्तन में लोग कुएं का पानी पीते थे, उसी बर्तन में गुरु जी ने अमृत भर कर उनके आगे रखा।''[1] उनके द्वारा प्रयुक्त लोक काव्य रूप जहाँ एक ओर लोक के भावों, विचारों को प्रकट करते हैं वहाँ दूसरी ओर एक नयी विचार दृष्टि को भी प्रस्तुत करते हैं जो उनके द्वारा लोक काव्य रूपों को प्रदान की गई। इस शोध आलेख में गुरु नानक देव जी की वाणी में आए लोक काव्य रूपों का एक परिचय प्रस्तुत किया जाएगा कि कैसे लोक काव्य–रूप रूपांतरण की प्रक्रिया से होते हुए वाणी के साथ जुड़ते है और निहित संदेश को सम्प्रेषित करते हैं। गुरु नानक देव जी ने लोक काव्य को पूरी तरह से जीया था तथा इसका आनंद भी अनुभव किया था। लोगों के जीवन के साथ इन लोक काव्य रुपों की एकात्मकता अनुभव की और लोगों के जीवन के साथ एकात्मक हुए इन काव्य–रूपों को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

छंत :– छंत लोकप्रिय काव्य रूप है इसका विकास लोक काव्य रूप के शब्द 'छंद' से हुआ है। लोक में विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को छंद कहा जाता है। छंद लोक प्रसिद्ध तथा जनप्रिय काव्य रूप है। छंद मनोरंजन भरपूर गीत होते हैं जो

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

विवाह के समय दुल्हे से दुल्हन की सहेलियों तथा बहने सुनती हैं। ''छंद लोक–काव्य रूप होने के कारण अधिक प्रशंसात्मक होते हैं और खुशी के अवसर पर गाए जाते हैं।''[2] गुरु नानक देव जी ने मनोरंजन के लिए गाए जाने वाले इन गीतों को सुयोग्य रूप में आध्यात्मिक विचारों से ओत प्रोत कर प्रकट किया।

थिति :– थिति शब्द तिथि का उल्टा है। यह एक ऐसा लोक काव्य रूप है जिसकी रचना चंद्रमा की तिथियों के आधार पर होती है। ''थित चंद्रमा से सबंधित समय है। एक महीने में 15 थिता (तिथियां) सुदी तथा 15 वदी की होती हैं।''[3] यह एक पुरातन परंपरा है जिसमें चंद्रमा के घटने, बढ़ने के कारण रोशनी और अंधेरे पक्ष में किये गए कार्यों की विशेषता दरसायी जाती है। लोक परंपरा में रोशनी पक्ष और अंधेरा पक्ष दो शब्द मिलते हैं जिनमें थिति का वर्णन मिलता है। एकाम, पंचमी, एकादशी, पूर्णमाशी इत्यादि तिथियां महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। यह तिथियां एक चक्कर में चलती रहती हैं, इन्हीं के मिलने से महीने, ऋतु, साल तथा सदी बनती है। यह धारणा लोक में हमेशा से ही विद्यमान रही है कि विशेष दिन में किया गया दान उनके जीवन के लिए लाभकारी होगा। इसलिए लोग पंचमी के दिन धार्मिक स्थानों पर जाते हैं तथा दान करते हैं, पूर्णिमा के दिन खीर का सेवन करते हैं उनका मानना है कि ऐसा करने से शरीर रोगमुक्त रहता है। गुरु नानक देव जी ने थिति की रचनाओं में ऐसे मिथ्या विश्वासों का विचारों का खण्डन किया है और उस हर एक घड़ी, पल को शुभ माना है, जिसमें ईश्वर की स्तुति सच्चे हृदय से की गई हो। थिति काव्य रूप की रचना राग बिलावल में है और गुरू नानक देव जी ने इस लोक काव्य–रूप को आधार बनाया ताकि लोगों को सही मार्ग पर अग्रसर किया जा सके उन्होंने इन तिथियों से जुड़े कर्म कांडों के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए इस लोक काव्य – रूप के माध्यम से संदेश दिया।

पट्टी :– पट्टी का पंजाबी साहित्य में विशेष महत्व है। पट्टी से अभिप्राय गुरूमुखी लिपि के पैंतीस अक्षरों से है। पट्टी काव्य रूप फारसी की सीहरफी और संस्कृत के बावन अक्षरों की तरह ही एक ऐसा काव्य रूप है जिसकी प्रत्येक पंक्ति किसी अक्षर से आरंभ होती है। ''पट्टी एक ऐसी लोक धुन को कहा जाता था। जिसका आधार वर्णमाला के क्रमानुसार पैंतीस अक्षर होते थे। जब भी कोई बालक सीखता है तो वह प्रत्येक अक्षर 'पटियां' पर लिखता है।''[4] पट्टी का संबंध हर व्यक्ति की बाल्यकाल अवस्था से है क्योंकि विद्या का ज्ञान पट्टी के माध्यम से होता है। बच्चा पटियां पर पैतींस अक्षर लिखता है और ऊंची आवाज़ में एक–एक अक्षर को राग की तरह अलापता हुआ उन्हें याद करता है। बालक अक्षरों को पहचानने और लिखने के साथ–साथ कुछ आचार व्यवहार की बातें भी ग्रहण कर जाता था।''[5] जिस तरह वह राग अलापता है उससे यह लोक काव्य–रूप लोक की धुन से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। ''इस रचना में गुरु जी ने पंजाबी भाषा तथा गुरुमुखी लिपि के पैंतीस अक्षरों द्वारा क्रमानुसार दार्शनिक, धार्मिक, भावुक विचारों की अभिव्यक्ति की है।''[6] गुरु नानक देव जी ने पट्टी में सृष्टि

की रचना, सच्चे परमात्मा की उपमा, दार्शनिक ज्ञान, मौत आदि की शिक्षा दी है। गुरु नानक देव जी ने इस लोक काव्य–रूप की संभावनाओं को अनुभव किया इसीलिए इसको आध्यात्मिक विचारों को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया।

आरती :– हिंदु मत अनुसार 'आरती' एक धार्मिक रीत है। हिंदु लोग एक बड़ी थाली में सुगंधित धूप, दीया, फूल, फल लेकर अपने इष्ट की आरती उतारते हैं। ''आरती एक प्रकार कीर्तन का रूप है। इसकी गायन शैली सरल तथा सुगम होनी आवश्यक है। इस गीत शैली में भगवान की उपमा होती है, उसका यशोगान होता है।''[7] गुरु नानक देव जी ने ईश्वर की उपासना के लिए 'आरती' वाणी की रचना राग धनासरी के अंर्तगत की इस वाणी की रचना चार पदों में 'रहाउ' के साथ कर उन्होंने पारंपरिक आरती को बेवजह की रसम मानकर, अपनी रचना द्वारा आरती को नया संकल्प प्रदान किया।जिसमें उन्होंने ब्रह्य के विराट रूप का वर्णन किया है। आरती के माध्यम उन्होंने यह वर्णन किया है कि कैसे सम्पूर्ण ब्रह्याण्ड, आकाश, सूर्य, संपूर्ण कुदरत उस परमात्मा की आरती करने में लगी है जिसने सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया है। यह आरती गुरु जी ने जगन्नाथ पुरी के पंडितों को सुनाई थी और यह संदेश दिया था कि धर्म के भेद भाव में न पड़कर उस परमात्मा की आरती करो जिसने सारी कायनात का निर्माण किया है।

बारामांह :– बारामांह लोक काव्य–रूप बारह महीनों के समाजिक संदर्भ तथा प्राकृतिक वर्णन पर आधारित है। इसमें ग्यारह महीनों में विरह का वर्णन किया जाता है और आखिर के महीने में खुशियों का वर्णन मिलता है। ''बारामांह लोकगीतों का ही एक प्रकार है। इसमें प्रेमिका की विरह व्यथा वर्णन उसके अनुभव के अनुसार प्रत्येक ऋतु के अनुसार तथा प्रत्येक मास के अनुसार किया जाता है।''[8] बारहमांह वाणी की रचना राग तुखारी में की गई है। गुरु नानक देव जी ने बारामांह वाणी के माध्यम से जीव आत्मा रूपी स्त्री का वर्णन किया है जो हर घड़ी, बारह महीने अपने प्रियतम परमात्मा का मिलाप चाहती है। बारह महीनों के प्रकृति चित्रण के अंतर्गत बिरहा और वियोग के भावों को प्रकृति की विविधमयी सुंदरता को चित्रण करने वाला श्रृंगारमयी काव्य बारहमांह है।''[9] गुरु नानक देव जी ने इस काव्य रूप में वियोग और मिलाप दोनों का सम्मिलित प्रयोग कर, शांत विरह और खामोशी की प्रकृति के माध्यम से इस काव्य को नवीन रूप प्रदान किया है।

अलाहुणियां :– अलाहुणियां एक ऐसा लोक काव्य रूप हैं जिसमें व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके गुणों को, उसकी बातों को याद कर रूदन किया जाता है और साथ में ऐसे गीत अलापे जाते हैं जिसमें उस व्यक्ति का वर्णन हो। एक प्रकार से इन्हें मौत के गीत कहा जा सकता है। अलाहुणियां एक दुखमयी काव्य रूप है जो पंजाबी का लोक काव्य–रूप है। औरतों, मर्दों तथा बच्चों की अलाहुणियां अलग–अलग हैं। भिन्न–भिन्न अलाहुणी में उम्र और रिश्ते के साथ प्रयुक्त होने वाले शब्द तथा भावनाएं भी अलग–अलग हैं। काहन सिंह नाभा अनुसार, ''अलाहुणी उस्तुति की कविता है, जिसमें

किसी के गुण गाए जायें, खास तौर पर मृत्य प्राणी के गुण।''[10] यह गीत न तो ज्ञानवर्धक होते हैं न ही अध्ययनशील होते हैं गुरु जी ने राग वडहंस में पाँच अलाहुणियों की रचना की है इनकी रचना बंदों में की गई है। गुरु नानक देव जी ने इस शीर्षक अंर्तगत रचित वाणी में जो संदेश दिया है वह सांसरिक सुखों के लिए की गई लालसा का खण्डन करता है और झूठी माया का त्याग कर मनुष्य को मृत्यु के अटल सत्य से अवगत करवाता है। उन्होंने मौत का भय लोगों के दिलों से निकालकर नाम स्मरण कर शुभ कर्मों के माध्यम से परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग आसान करने का उपदेश दिया है।

पहरे :– पहरे लोक से संबंधित एक ऐसा काव्य रूप है जिसके माध्यम से लोग समय का अनुमान सूर्य चक्कर के आधार पर लगाते थे। पहर के हिसाब से समय को बांटते थे। चार पहर का दिन और चार पहर की रात मानी जाती थी। एक पहर तीन घंटे का माना जाता था। काहन सिंह नाभा के अनुसार, ''दिन रात का आंठवा भाग, तीन घंटे का समय।''[11] इस तरह समय मापने के लिए दिन रात के बारह–बारह घंटों को चार–चार पहरों में बाँट लिया जाता था। गुरु ग्रंथ साहिब में पहला राग सिरी राग है जिसमें पहरों की रचना की गई है। गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी में पहरे काव्य रूप का प्रयोग किया है और चार पहरों को आधार बनाकर गर्भ अवस्था, बाल अवस्था, जवानी तथा वृद्ध अवस्था का वर्णन किया है। गुरु नानक देव जी मनुष्य जीवन के विभिन्न पड़ावों को प्रकट करने के लिए इस लोक काव्य–रूप का प्रयोग कर मनुष्य को वणजारा कह और समय बीतने को 'पहर' कह सम्बोधित किया है। उन्होंने यह कहा है कि मनुष्य इस जन्म में वणजारे के रूप में परमात्मा के नाम का वणज करने आया है, उसे इन बीत रही अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इन पहरों में गुरु जी ने जीवन का परम लक्ष्य प्रभु मिलाप को कहा है तथा जीवन को व्यर्थ न गंवाकर जीवन के हर पड़ाव पर प्रभु का स्मरण करने की शिक्षा दी है।

कुचज्जी, सुचज्जी :–

कुचज्जी :– भारतीय संकल्प के अनुसार स्त्री के अच्छे या बुरे आचार व्यवहार का निर्णय उसके ससुराल में प्रवेश उपरांत ही लगाया जाता है। बुरे व्यवहार वाली, निषेधात्मक प्रवृति वाली स्त्री कुचज्जी मानी जाती है। काहन सिंह नाभा के अनुसार ''कुचज्जी से भाव बुरे आचार वाली''[12] गुरु नानक देव जी ने कुचज्जी शीर्षक अधीन रचित वाणी में उस स्त्री को कुचज्जी माना है जो अपनी कमज़ोरियों तथा गलतियों के कारण प्रभु से मिलाप नहीं कर पाती तथा प्रभु को प्रसन्न करने में असफल रहती है। गुरु नानक देव जी ने जीवात्मा को स्त्री तथा परमात्मा को पति के रूप में चित्रित किया है।यहाँ पर कुचज्जी से भाव मनमुख व्यक्ति से है जो द्वैत भाव, अहम के कारण अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख सहता है और परमात्मा से बिछुड़ जाता है।

सुचज्जी :– सुचज्जी, कुचज्जी के उल्ट शब्द है। सुचज्जी सभी कार्यों में निपुंन स्त्री को कहा जाता है। जो गुणों से भरपूर होती है और अपने गुणों का मान नहीं

करती। सुचज्जी से भाव गुरमुख व्यक्ति से है। सुचज्जी स्त्री का रूपक ऐसे जिज्ञासु व्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया है जो संसारिकता को पूर्ण रूप में त्याग देता है और परमात्मा के नाम में ही लीन रहता है। गुरु नानक देव जी ने इस वाणी में जीवात्मा के माध्यम से सुचज्जी की विशेषताओं का वर्णन किया है जो प्रभु मिलाप को उसकी देन समझती है। उसे दुख–सुख की चिंता नहीं है। वह केवल प्रभु वियोग को सहन नहीं कर सकती। गुरू जी ने ऐसी स्त्री को सुचज्जी माना है जो परमात्मा की ही इच्छा में प्रसन्न रहती है।

उपरोक्त दोनों रचनाएं राग सूही में लिखी गई है जिनमें कुचज्जी की रचना 16 तुकों में तथा सुचज्जी की रचना 10 तुकों में की गई है।

वार :– वार काव्य रूप पुरातन होने के साथ–साथ विशेष महत्वपूर्ण भी है। वार काव्य रूप योद्धा के युद्ध से सबंधित, यश से सबंधित प्रशंसात्मक गीत हैं। यह काव्य रुप वीर रस गाथा से सबंधित है। वार पंजाबी का प्रसिद्ध लोक काव्य–रूप है। वार लोकगीतों की ही तरह, ढाढीयों, भट्टों द्वारा गायी जाती रही है। यह ढाढ़ी भट्टों द्वारा क्षेत्रीय धुनों के अनुसार गायी जाती है। इस तरह वार काव्य रूप जो किसी विशेष दिन की घटना का ब्यान करता है जिसमें नायक की बहादुरी का गायन किया जाता है। गुरु नानक देव जी ने तीन वारां की रचना की है पहली वार माझ की है, दूसरी आसा की वार है तथा तीसरी मलार की वार है। माझ, आसा, मलार यह तीनों राग है जिसमें वार की रचना की गई है, वारां की रचना पउड़ी में की गई है और सलोक बद्ध रचना है। गुरु नानक देव जी ने वार के रूप को अपनाया लेकिन यश और योद्धा को उत्साहित करने वाले विषय को बिल्कुल बदल दिया। उन्होंने एक ऐसे युद्ध का वर्णन किया है जो गुरमुख और मनमुख व्यक्ति के बीच हैं। उन्होंने वार के विषय को आत्मिक और आध्यात्मिक बना दिया जिसमें मानव के बाहरीय और आंतरिक युद्धों द्वारा जीवात्मा को एक प्रेरणा दी है जिसके माध्यम से वह अपने माया, मोह, विभिन्न बाहरीय जंजालों से मुक्ति पाकर आंतरिक शांति को हासिल कर सकता है।

गुरु नानक देव जी रचित काव्य का मध्य युग के साहित्य में विशेष स्थान है। उनका आगमन पंजाबी साहित्य में अद्वितीय गौरव का धारणी है। पंजाब में साहित्य रचना की परंपरा ज्यादातर लोक आधारित ही रही है और जितने भी कवि या लेखक उस समय रचना करते थे उन्होंने ने भी लोक का ही आधार लिया उन्होंने अपने व्यक्तित्व को अलग स्थापित करने की जगह सामूहिक वेग के अधीन ही रखा। ऐसे में आम कवि तो लोक साहित्य के चलते प्रवाह में ऐसे समा गए जैसे समंदर में नदी नाले समा जाते हैं। गुरु नानक देव जी के समय समाज का वातावरण, धार्मिक अवस्था पतनग्रस्त थी। ऐसे में गुरु नानक देव जी की प्रेरणा के फलस्वरूप मानवीय जन जीवन तथा साहित्य में बहुत परिवर्तन हुआ। गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी के माध्यम से समाज में परिवर्तन किया मानव मन को धर्म भेदभाव, पाखंडो, झूठे दिखावे, आडम्बरों से मुक्त कर स्वतंत्रता

का जीवन जीने की शिक्षा दी और उन्होंने अपनी वाणी को जन साधारण तक संचारित किया। इसीलिए गुरु जी ने लोगों को समझ आने वाली बातों को ही अपनाया तांकि वह लोक की आवाज़ में, लोक की भाषा में, लोक को ही वाणी का संदेश सम्प्रेषित कर सके। गुरु नानक देव जी ने पट्टी, आरती, बारहमांह, पहरे, वार आदि लोक काव्य रूपों को अपनाकर और इनके रूपों को वाणी के माध्यम से अनुशासित कर आध्यात्मिक रंग में रंग दिया और काव्य के विषय वस्तु को लोक काव्य–रूप की प्रकृति के अनुकूल ढालकर प्रस्तुत किया। उन्होंने वाणी को काव्य के विषय, भाव, कलात्मक पक्ष, लोक काव्य के विभिन्न रूपों के साथ ऐसे एक स्वर में बांधा कि वाणी का एक छोर लोक की भूमि से और दूसरा छोर आध्यात्मिकता से सबंधित दिखता है। इस तरह गुरु जी द्वारा रचित वाणी में मानवता के हित का संदेश है इसी संदेश की पूर्ति के लिए गुरु साहिब लोक काव्य रूपी विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करते हैं। यह ऐसे लोक काव्य रूप हैं जो लोक मन, भाषा लोक की जीवन शैली, व्यवहार के साथ ओत–प्रोत हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वणजारा बेदी, सोहिंदर सिंह, लोक तत्व ते गुरु नानक, नैश्नल पब्लिशरज, नई दिल्ली, 1983, पृ–144.
2. हरबंस सिंह, गुरु नानक देव की काव्य कला, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1985, पृ–228.
3. वही, पृ–245.
4. वही, पृ–237.
5. वणजारा बेदी, सोहिंदर सिंह, लोक तत्व ते गुरु नानक, नैश्नल बुकशॉप, दिल्ली, 1983, पृ–131.
6. नरूला, डी. एस, गुरु नानक संगीतज्ञ, न्यू बुक कम्पनी, जालन्धर, 1978, पृ–35.
7. (संपादक) दलजीत सिंह, गुरु नानक जोत ते सरूप, देवदूत प्रकाशन, लुधियाना, तिथि नहीं, पृ–173.
8. नरूला, डी. एस, गुरु नानक संगीतज्ञ, न्यू बुक कम्पनी, जालन्धर, 1978, पृ–37.
9. अमृतपाल कौर, गुरमति काव्य : स्वरूप, सिद्धांत और स्थिति, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 2014, पृ–112.
10. नाभा, काहन सिंह, गुरशब्द रत्नाकर महानकोश, इन्साईक्लोपीडिया ऑफ सिक्ख लिटरेचर, भाषा विभाग, पटियाला, 1960, पृ–85.
11. वही, पृ–729.
12. वही, पृ–336.

श्री गुरू नानक देव की दृष्टि में कादर की कुदरत

सुरिन्द्र सिंह*

संसार में आज जो कुछ प्रेम–भाव, श्रद्वा, समानता–बन्धुत्व, कर्तव्य–भाव देखने को मिलता है कहीं न कही वो भक्तिकाल की देन है क्योकि यह काल सबके लिये प्रेरणा का युग था। यह काल संतो–महात्माओं, गुरूओं का था। मध्ययुग में ऐसे ही महान व्यक्तित्व का अवतार हुआ,जिनका नाम था गुरू नानक देव जी। जिन्होने धरती पर फैले अज्ञानता रूपी अधंकार का नाश करने के लिये अपनी आवाज बुलंद की जुलम व अत्याचार के विरूद्व अपनी आवाज उठाई। आज तक जो कोई पीर पैगंबर या संत महात्मा नही कर सका गुरू नानक जी ने वो सब कर दिखाया फिर चाहे वो राजनीति के खिलाफ हो या औरत जाति के पक्ष में आवाज उठाना हो। गुरू जी के आगमन पूर्व लोगो का विश्वास एक अकाल पुरख में न होकर अवतारों में था। मन्दिर, मस्जिद,उनके लिये श्रद्वा के स्थान थे। व्रत रखना, समाधियां लगाना, कुण्डलिनी धारण करना, योग, तंत्र–मंत्र देह को कष्ट देकर तप करने, मृर्ति पूजा, बलि देना आदि कर्मकाण्डों में लोगो की आस्था थी जब गुरू नानक देव जी ने समाज की ऐसी बुरी दशा देखी तब वे रह न सके और लोगो को ज्ञान देने के लिये घर से यात्रा पर निकल पडे। भाई गुरदास जी के अनुसार

''बाबा देखै धिआनु धरि जलती सभि पृथ्वी दिसि आई।''[1]

गुरू जी अनुसार जीव तभी दुखी है क्योंकि उसने अपने आप को किरत,कुदरत और ज्ञान से दूर कर लिया है ।

गुरू नानक देव जी की पूरी मानवता को सबसे बडी देन नवीनता और प्रकृति से जोडकर प्राचीन काल से चली आ रही रूढि ग्रस्त परंपराओं से तोडना और उन्हे उन्नति ओर समृद्वि का मार्ग दिखाना रही है। वे ऐसे महान क्रांतिकारी धार्मिक नेता थे जिनकी विचारधारा समय, स्थान और विषयवस्तु के पक्ष से बहुत विशाल और विश्वव्यापी घेरेवाली थी। गुरू जी ने सभी मनुष्यों को एक मुकम्मल फलसफा दिया जिसका उददेश्य मनुष्य के जीवन में सर्वपक्षी इंकलाब लाना था। आपकी विचारधारा इतनी शक्तिशाली थी कि वो निरंतर विकासशील और संघर्षशील रही।

भाई गुरदास जी ने गुरू नानक देव जी के जीवन को समझकर ये सत्य कहा कि गुरू जी ने अपनी जिंदगी के कीमती 25 वर्ष दुनिया के तीर्थो और सामाजिक केन्द्रो पर घूम कर आम मनुष्य का मुख अंधविश्वास की ओर से फेरकर एक अकालपुरख की तरफ लगा ऐसी करामात दिखाई जिस पर संसार गर्व करते हुए कहता है कि गुरू नानक की सोच ने लोगो को कादर की कुदरत से जोड दिया।गुरू नानक केवल सिक्खो के प्रथम गुरू नही बल्कि सभी धर्मो और जातियों के गुरू है उनकी विचारधारा मानववादी है जो पूरी मानव जाति को प्रभावित करने वाली है। गुरू नानक की विचारधारा के प्रमुख तत्व है –किरत और कुदरत।गुरू नानक अपने इर्द–गिर्द दिख रही संसार की भरपूरता

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

रंग बिरंगी कुदरत को अन्य धर्मो की तरह माया या भ्रम नही मानते उनके लिये तो यही कुदरती सत्य है जिसका मानव अटूट अंग है ।

''कुदरति बरतै रूप अरू रंगा''[2]

अर्थात

जो हमें अपने चारों और रंग बिरंगा पासार दिखाई दे रहा है वो ये कादर द्वारा रचित कुदरत ही तो है जो भ्रान्ति–भ्रान्ति के रूप रंग बदलकर सबका पालन पोषण कर रही है ।

''जो दीसै सो सगल तूंहै पसरिआ पासारु''[3]

गुरू नानक से पहले अन्य धर्मो के प्रचारक दुनिया को माया या भ्रम–जाल कह कर त्यागने की बात करते है यहां तक कि परिवार और अन्य रिश्तों को भी अहमियत नही देते वो तो सिर्फ अपने आप से जुडने की बात कहते है जो कि निरा स्वार्थ है पर गुरू नानक ने लोगो को कुदरत की सच्चाई से अवगत करवा कर उससे जोडा और इससे घुलमिल कर रहने की प्रेरणा दी इसी कुदरत के रंग बिरंगे रूपो को जानने हेतु गुरू जी ने देश विदेश का भ्रमण किया। उन्होने स्वयं गृहस्थी को अपना कर गतिशील जीवन और कुदरत दोनों को मान सम्मान दिया तथा इसे अपनी रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बनाया।कुदरत से छेडछाड न कर उसे ज्यों का त्यों अपनाने की शिक्षा भी आपने दी।मनुष्य को कुदरत ने जैसा बनाया वो उसे उसी रूप में कबूल करना चाहिए उससे छेडछाड नही करनी चाहिए पर आधुनिक मानव अपने इस रूप और आकर प्रकार से छेड छाड करने लगा है जिस कारण वो सदैव दुखी रहता है कुदरत द्वारा प्रदान शारीरिक रूप को बदलने की उसकी सोच उसे रोगो के घेरे में डाले जा रही है। कुदरत दवारा दी गई सौगातों को ही मनुष्य ने किरत करके अपने योग्य बनाया है मानव विकास के इतिहास में मानव ने कुदरत को समझा, जाना और फिर पैदावार हुई। मानव शरीर का विकास भी कुदरत में ही रहकर हुआ है।

जब तक किसी भी धर्म का प्रादुर्भाव नही हुआ था तब तक इन्सान प्रकृति के रूपों से ही भयभीत हुआ उसे भगवान मान उसी की पूजा करता था। सृष्टि के आंरभ से ही आदि मानव कुदरत की गोद में रह कर पला बढा उसके लिये वो इष्टदेव थी जिसकी वो संभाल करता था। कुदरत से जुडकर वो अपने आप को सुरक्षित समझता था प्रकृति का आदर सम्मान वो आदि मानव कितना करता था जिसे आज का मानव अज्ञानी कहने लगा है। अज्ञानी वो आदि मानव नही बल्कि आधुनिक मानव है जो अपने आप को कुदरत से दूर कर उसको हानि पहुँचा रहा है जो कि उसकी प्राणदायिनी है कुदरत के अथाह भण्डार को फोलने की उसकी लग्न लगातार जारी रही जिस कारण वो मानव खुश था। पर जैसे जैसे मानव ने कुदरत से नाता तोड मशीनी युग से नाता जोडना शुरू किया त्यों त्यों वो दुखी होता चला गया।

''त्रेते युग के अवतार भगवान राम, द्वापर के कृष्ण जी थे जिनको भगवान मान लोगो ने उनकी आराधना की लेकिन इनसे पहले सतयुग के अवतार हंस थे जिसको लोगो ने ईश्वर की उपाधि दी जिससे ये अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय के लोग प्रकृति की महान शक्तियों को पूजा करते थे''[4] पर युग बदलते लोगों का रिश्ता प्रकृति से टूट मानव शरीर और देवताओ की पाषाण प्रतिमाओ से जुड गया। परन्तु कलयुग के अवतार गुरू नानक देव जी ने मनुष्य को फिर से कुदरत से जोडा उसमें

ईश्वर का वास दिखाकर उसका महत्व प्राणी मात्र को समझा उसकी संभाल करने की और उस को अग्रसर किया। गुरू जी को अपने चारो ओर फैली कायानात में से अकाल पुरख के दर्शन हुए जिसको उन्होने दीदार रूप में प्रवान किया। जिज्ञासु के मन में हमेशा ही यह जानने की इच्छा बनी रहती है कि परमात्मा कौन है? उसे कैसे मिला जा सकता है? कुदरत के बदलते रंग–रूपों के बारे में भी उसके मन में तरह–तरह के सवाल उठते रहते है।जिनका स्पष्ट जवाब गुरू नानक देव जी ने अपनी वाणी दवारा दिया है

''बलिहारी कुदरित वसिआ। तेरा अंतु न जाई लखिआ।''[5]

ईश्वर अपनी रची प्रकृति मे ही बसा हुआ है, दोनो एक दूसरे मे निवास करते है बिल्कुल उसी तरह जिस तरह तिल में तेल और चकमक में आग का निवास है थोडा प्रत्यन करने पर तिल में से तेल और चकमक में से आग पैदा हो जाते है बिल्कुल उसी प्रकार प्रकृति से जुडकर उसे खेजने पर गुरू नानक जी की तरह उसमें से उसके सृजनकर्ता प्रभु की झलक साफ रूप में दिखाई देने लगती है और जिस प्रकार कोई भी प्राणी उस ईश्वर का अंत नही पा सकता उसी प्रकार उसकी रची कुदरत का अंत पाना भी नामुमकिन है ।

गुरू जी के फलसफे अनुसार संसार को सृजनकर्ता एक है और कदरत का उस एक अकाल पुरख से अलग अपना कोई दूसरा वजूद नही है। कुदरत उस अकाल पुरख की सृजना का एक पहलु है वो अकाल पुरख सत्य है अपनी कुदरत के विभिन्न पहलुओ और रंगो को जानने वाला वो स्वयं है :

''जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।''[6]

इसीलिए कुदरत को उस कादर की 'इह जग सचे की है कोठडी' के तौर पर स्वीकार किया गया है और यह भी सत्य है कि उस सच्चे की इस सच्ची कोठडी को झूठ कैसे कहा जा सकता है अर्थात उसकी कुदरत को कयोंकि :

''सचे तेरे खंड सचे ब्रहामंड। सचे तेरे लोअ सचे आकार।''[7]

गुरू नानक जी द्वारा बताए इस सिद्वान्त को जिस किसी ने समझ लिया वो पूरी दुनिया, कायनात, संपूर्ण ब्राहमांड को एकता के सूत्र में बंधा हुआ देखने लगता है। जिस कुदरत को गुरू जी ने एक सूत्र में बंधा हुआ स्वीकार किया उसी कुदरत की खोज करने वाले विज्ञानी स्टीफन हाकिनज ने कुदरत के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि यह धरती एक नियमावली में बंधी हुई है और कोई अन्य ऐसी शक्ति नही जिसे माना जा सके। यह गुरू नानक जी की सोच थी जिसे विज्ञानियों ने भी स्वीकार कर मुहर लगाई।

कुदरत का जर्रा–जर्रा कुदरत बनाने वाले कादर की प्रशंसा में गीत गाता सुनाई देता है। झरने, आकाश–पाताल, फूल, वनस्पति, हवा, पानी,पेड–पौधें, कलरव करते पक्षी, लहराते फूल–घास सभी उसी कादर की प्रशंसा में उसके गुण गाये जा रहे है :

''गावनि तुधनों पवण पाणी बैसंतरू।
गवनि तुधनों खाणी चारे।''[8]

उन्होने प्रकृति से अनेको बिंबों–प्रतीको को लेकर उनका प्रयोग अपनी वाणी मे किया जो कि उनका जीव और वनस्पति के प्रति प्रेम भाव दिखाता है। उन्होने अपना संदेश देने हेतु वृक्षों, पशु–पक्षियों ,फूलों के दृष्टांत अपनी वाणी में प्रयोग किये है। ईश्वर के सुंदर स्वरूप को इस कुदरत के रूपों में देखते हुए कहा है :

''आपे भवरा फूल बेलि।।
आपे संगति मीत मेलि।।''[9]

भंवरे में निवास करने वाला भी आप है फिर फूल बेल पत्तों में भी खुद निवास करता है और भंवरे रूप में उन पर मंडराता भी खुद है। ये उसकी रची कायनात अजीब है। हर जगह हर रूप में वही है। गुरू नानक का असल में वही राम है जो कुदरत के जरे–जरे में रमा हुआ है।

कुदरत की रक्षा करनी ये अन्य जीवों से ज्यादा मनुष्य की जिम्मेदारी है इसका ज्ञान गुरू जी ने मानव को इस तरह करवाया कि बिना पेड–पौधों के उसकी जिंदगी व्यर्थ है क्योंकि उसकी सांसों का आधार ही यह पेड–पौधें है। यदि पेड होगें तभी उसका जीवन खुशियों से हरा–भरा होगा। अमरता का प्रतीक अमृत की प्राप्ति इन्ही दवारा संभव है। यथा :

सफलिउ बिरखु अमृत फलु पावहि।''[10]
और
सफलिउ बिरखु हरीआवला छाव घणेरी होई।
लाल जवेहर माणकी गुरू भंडारै सोइ।''[11]

अकालपुरख परमात्मा ने मानवीय जीवन के विकास हेतु अन्य जीवों और बनस्पति की उत्पति की है। तभी तो गुरू नानक देव जी ने प्रकृति को हीरे, लाल, जवाहरों से भी कही ज्यादा कीमती बताया है उनकी प्रीति कुदरत में निवास किए पक्षियों से भी उतनी ही है जितनी अन्य जीवों और वनस्पति से, वे लिखते है :

''पंखीं होय कै जे भवा से असमानी जाउ।''[12]

प्रमात्मा के आदेशानुसार चलने वाले मनुष्य का मन भी कादर की रची कुदरत को अपनाकर अपना मार्ग बनाता है। उन्होने अपनी वाणी में पपीहे का दृष्टांत दे उस जैसी प्रीति ईश्वर से करने का उपदेश दिया। इसी प्रकार कमल पुष्प का जिक्र कर उन्होने बार–बार कुदरत के प्रति असीम प्रेम को प्रकट किया है। कुदरत में कादर के दर्शन कर गुरू जी ने पवन को गुरू,पानी को पिता और धरती को माता के बराबर दर्जा देकर इनके महत्व पर प्रकाश डाला है।

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस रात दुई दाई दाइआ खेले सगलु जगतु।''[13]

उनके अनुसार जिस प्रकार मनुष्य हवा के बिना थोडा समय भी जीवित नही रह सकता हवा उसके लिये प्राणदायिनी है। हवा जितना महत्व ही गुरू का है, जिस प्रकार गुरू के बिना उद्वार नही हो सकता उसी प्रकार हवा बिना जीवन की कल्पना नही हो सकती। पिता का प्रत्येक प्राणी के जीवन में बहुत महत्व है। पिता पालन–पोषण का आधार है उसी तरह पानी भी जिन्दगी का मुख्य आधार है तभी गुरू जी ने समझाते हुए पानी को पिता के समान बताया है। धरती को जननी जैसा बताकर उसका जीवन में महत्व बताया है। कुदरत के अधीनस्थ चल रहे दिन–रात के चक्कर को दाई और दाये जैसा बताकर समझाने की कोशिश की है कि जिस प्रकार दाई और दाया बच्चे को खिला–पिला कर उनकी देख भाल करके उन्हे बडा करते है बिल्कुल उसी प्रकार कुदरती नियम इन्सान का पालन–पोषण बखूबी करते है। पर इसमें कोई अंदेशा नही कि आधुंनिक मानव इन सबका तिरस्कार कर इनसे केवल अपना स्वार्थ सिद्व करने में लगा

हुआ है जिससे आज के पर्यावरण को सबसे ज्यादा हानि पहुच रही है। हवा, पानी, धरती सब प्रदूषित होते जा रहे है, दिन–रात का संतुलन बिगडने लगा है। पर इन्सान ये नही सोचता कि कुदरत के अलग–अलग रूपों से छेड छाड करने पर नुकसान केवल उसी का हो रहा है। गुरू जी ने इन्सान को कुदरत का ज्ञान देकर उससे केवल तो केवल उसी की भलाई के लिये जोडा। पर आधुनिक मानव प्रकृति से नाता तोड मशीनों से जितना जुडता जा रहा है वो उतना ही बीमारियों का शिकार होता जा रहा है।

गुरू नानक जी ने जिस कुदरत में अपने कादर के दर्शन किए उसकी मुख्य विशेषता ये है कि वो किसी से भी भेदभाव नही करती। उसके लिये तो सभी अमीर–गरीब, उॅच नीच जाति से संबंधित, सभी मजहबों के लोग एक बराबर है। वो तो सृष्टि के सभी प्राणियों से एक जैसा व्यवहार कर सबकी एक जैसी देखभाल करती है। यही कुदरत अपने अलग–अलग रूपों में अकाल पुरख प्रमात्मा की आरती उतारती दिखाई देती है। गगन रूपी थाल में सूर्या चन्द्रमा रूपी दो दीपक जल रहे है और तारे मोतियों की तरह थाल की साज–सजावट को बढा रहे है। मलय पर्वत की सुगन्धित हवा अगरबती के समान चारों और अपनी महक बिखेर रही है। चलती मन्द–मन्द हवा जैसे चवर झुलाने का कार्य कर रही है। हे ईश्वर! कायनात का जर्रा–जर्रा तेरी कितनी सुन्दर आरती उतार रहा है। गुरू नानक देव जी ने मन्दिरो में होती झुठी आरती का खंडन कर साक्षात प्रमात्मा के दर्शन इस कुदरत के चारों और फैले कण–कण में से जन– जन को करवा दिये।

''गगन में थालु रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलयानलो पवणु चवरो करे , सगल बनराय फुंलत जोती ।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।''[14]

गुरू नानक जी का निरंकार प्रमात्मा अनंत–असीम है जो कि इसी अनंत–असीम कुदरत के जरे–जरे में मौजूद है। कायनात में व्यापत सभी गुण नानक के निरंकार के ही तो है जिससे जुडकर मानव की सोच बदलती है उसका विकास होता है। गुरू जी का फरमान है :–

''सची तेरी सिफति सची सालाह।
सची तेरी कुदरति सचे पातशाह।''[15]

अनंत असीम ईश्वर की तरह कुदरति भी अनंत और असीम है जिसके बारे में केवल इसका सृजनकर्ता ही जानता है ।

''आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ।।''[16]

कुदरत को अपना सिंहासन बना कादर ने इस पर निवास किया हुआ है ।

''आपीनै आपु साजिउ आपीनै रचिउ नाउ ।
दुयी कुदरति साजिअै करि आसणु डिठो चाउ।''[17]

इसके लिये उसे किसी का सहारा भी नही लेना पडा कुदरत को बना कादर सारी कुदरत के विधि विधानों को खुद चलाता है। जिस प्रकार सनातन धर्म की मान्यता है कि विष्णु सुष्टि का पालन करता हे, ब्रहाा कुदरत की रचना करता है और शिव संहारक है। इनके उल्ट गुरमति विचारधारा इन सबका कर्ता उस अकाल पुरख प्रमात्मा को ही मानती है ।

अंडज जेरज उतभुजा खाणी सेतजांह।।

सो मिति जाणै नानका सरां मेरा जंतागा।।
नानक कंत उपाइकै संभाले सभनाह।।
थ्जन करतै करणा कीआ चिंत भि करणी ताह।।''[18]

दृश्यमान जगत में विशाल कुदरत का पसारा फैला हुआ है। यह संपूर्ण जगत कादर की कुदरत है। कुदरत से इस भांति जुडने के कारण ही गुरू जी को पर्यावरण प्रेमी कहा गया। उन्होने कुदरत में कादर के दर्शन कर दोनो की खूब प्रशांसा की। कुदरती नियमों के अंतर्गत ही हवा, पानी, अग्नि, धरती सब प्रकट हुएः–

''कुदरति दिसै कुदरति सुणीअै। कुदरति भउ सुख सारू।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारू।
कुदरति बेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारू।
कुदरति खाणा पीणा पैनणु कुदरति सरब पिआरू।
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान।
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति जीअ जहान।
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरू कुदरति धरती खाकु।
सभ तेरी कुदरति तूं कादरू करता पाकी नाई पाकु।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु।।''[19]

कुदरत की ये असीमता मानव चिंतन से परे है। यह पासारा इतना विशाल है कि इसका अंदाजा तक नही लगाया जा सकता। आधुनिक युग का दार्शनिक और विज्ञानी भी इसका अंत पाने में असफल रहा है। कुदरत कादर दवारा रचित एक ऐसा अनमोल खजाना है जिसकी कीमत मानवीय पैमानों के दवारा अंकित नही की जा सकती क्योकि यदि मनुष्य इसका मूल्य आंकने भी लगे तो भी उस दिशा मे कुछ कह नही सकता है।

कुदरति करि कै वसिआ सोय।।
वखत वीचारे सु बंदा होय।।''[20]

गुरूवाणी में कुदरत का यह समूचा पसारा उस अकालपुरख के अधीनस्थ दिखाकर उसी के आदेशानुसार चलते दिखाया गया है।

भै विचि पवणु वहै सदवाउ।।
भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।
कोह करोडी चलत न अंतु।।''[21]

कुदरत और मानव का रिश्ता अटूट है जन्म से मरण तक वो किसी न किसी रूप में कुदरत से जुडा हुआ है। मानव को जीने योग्य भी कुदरत ने ही बनाया है और उसकी उत्पति का आधार भी कुदरत है। कुदरत के खास अंगों जैसे हवा, पानी, मिटटी, अग्नि और आकाश से मिलकर ही मानव देह विकसित हुई है।

पंच ततु मिलि काइया कीनी ।।
तिसि महि राम रतनु लू चीनी।।''[22]

यदि कोई व्यक्ति जीवो या कुदरत को तुच्छ मानता हो तो उसे यह समझ लेना चाहिए कि उसका नानक मार्ग से कोई संबंध नही है आज का मनुष्य कुदरत का सबसे बडा बैरी बनकर इसे संजोने की बजाये नष्ट किये जा रहा है। हवा , पानी, धरती को

प्रदूषित कर रहा है। आज जब गुरू जी का 550वां प्रकाश पर्व बडी धूम–धाम से पुरे विश्व में मनाया गया है तब ये तभी गुरू साहिब को असल में याद करना होगा जब हम सभी उनके बताये मार्ग पर चलें कुदरत से अपना सही तालमेल बनाये रखे और 550 वीं जयंती पर हर गांव, शहर में 550 पौधे लगाकर धरती को हरा–भरा बनाकर पर्यावरण की रक्षा करें और उस कादर के श्रृंगार को और भी ज्यादा बढाये। असल में तो तभी बढ चढ कर मनाया गया प्रकाश पर्व सफल होगा ।

अंत में गुरू नानक देव जी की महिमा को 1740 ई. के लगभग दीवान सूरत सिंह द्वारा लिखित कविता की कुछ पंक्तियों द्वारा प्रकट करते है :

जिसका है नानक शाह जी।
तिसको कैसी परवाह जी।
जिसका गुरू हमराहु जी।
कबहूँ नही गुमराह जी।
बखसदु है बदकार का।
दातार है नादार का।
शाफी है हर बीमार का।
आप दिखावे राह जी।''[23]

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. वारां भाई गुंरदास सटीक, भाई वीर सिंह साहित सदन, वार 1, पाउडी 24, पृष्ठ 19,
2. गुरू ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ सं. 367
3. गुरू ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ सं. 51
4. भाई गुरदास, ज्ञानी सरदूल सिंह, भाषा विभाग पंजाब पटियाला, पृष्ठ सं.128
5. गुरू ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ सं. 469, सलोक महला,
6. वही, जपुजी साहिब, पृष्ठ सं. 8
7. गुरू ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ सं. 463
8. वही, पृष्ठ सं. 6
9. वही, बसंत महला1, पृष्ठ सं. 1190
10. वही, श्री राग महला1, पृष्ठ सं. 5
11. वही, श्री राग महला1, पृष्ठ सं. 14
12. वही, श्री राग महला1, पृष्ठ सं. 14
13. वही, सलोक जपुजी साहिब, पृष्ठ सं. 8
14. वही, धनासरी महला1, पृष्ठ सं. 663
15. वही, पृष्ठ सं. 463
16. वही, पृष्ठ सं. 53
17. वही, सलोक महला1, पृष्ठ सं. 463

18. वही, पृष्ठ सं. 467
19. वही, पृष्ठ सं. 464
20. वही, पृष्ठ सं. 83
21. वही, पुष्ठ सं. 464
22. वही, पृष्ठ सं. 1030
23. पंजाबी ट्रिब्यून, विरासत, 23 अक्तूबर 2019, लेख –गुरू नानक महिमा –डा0 परमवीर सिंह, पृष्ठ स. 7

समाज सुधारक : श्री गुरु नानक देव

कमलजीत कौर*

हिंदी साहित्य में भक्ति काल एक अहम् स्थान रखता है। भक्ति काल को स्वर्ण युग भी कहा जाता है भक्ति काल में चार काव्य धाराएं मिलती हैं। सगुण भक्ति में रामाश्रयी शाखा और कृष्णाश्रयी शाखा, निर्गुण भक्ति में ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों में कबीर, धर्मदास,गुरु नानक, दादू दयाल सुंदरदास इत्यादि कवि हुए हैं। जिन्होंने भक्ति के साथ–साथ समाज को नई दिशा प्रदान की है। इन भक्त कवियों में श्री गुरु नानक देव जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

गुरु नानक देव जी का जन्म सन् 1469 इसी को तलवंडी रायभोय जिला शेखुपुरा (पाकिस्तान) में हुआ है। भारत और अन्य देशों में गुरु नानक देव जी का प्रकाश पर्व कार्तिक की पूर्णिमा को मनाया जाता है। गुरु नानक देव जी को संत, भक्त और शांति के प्रतीक के रूप में पेश किया गया है। लेकिन उनकी शख्सियत का महान पक्ष समाज सुधारक के रूप में भी सामने आता है। गुरु नानक देव जी संत के अतिरिक्त महान् मानववादी चिंतक भी रहे हैं।उनका जीवन सिर्फ धर्म के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा अपतु उन्होंने उस समय के समाज के हर पक्ष को उभारा है। उन्होंने पक्षपात, अन्याय, जुल्म के विरोध में न्याय और एकता की आवाज को उठाया है। गुरु नानक देव महान पीर गुरु थे। जिस समय उनका जन्म हुआ भारत अनेकों कुरीतियों में ग्रस्त था। उस समय समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति बहुत ही गंभीर थी। समाज धर्म के आधार पर बैठा हुआ था। शासक ही शोषक बने हुए थे। जनता पाखंडों और अंधविश्वासों में उलझी हुई थी। राजाओं की यातना और छुआछूत से देश के लोगों का बुरा हाल था। पथ प्रदर्शक आध्यात्मिक प्रवृत्ति से लिप्त गुरु नानक देव ने जनमानस को सही मार्ग दिखाया। गुरुनानक ने 1499 ई.से लेकर 1522 ई. के समय में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में चार उदासियां अर्थात यात्राएं की है। उन्होंने बाईस वर्ष यात्राएं की हैं। नानक देव ने 974 पद और श्लोक की रचना की है। उनकी वाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है। जपुजी साहिब, आसा की वार, सिद्ध गोसटि, पट्टी, दक्खनी ऊँकार,पहरे –तिथि, बारह माह, सुचज्जी– कुचज्जी आदि प्रसिद्ध रचनाएं हैं। गुरु नानक देव लोक लहर के मुखी हैं। उनकी वाणी आम वर्ग के हित के लिए लिखी गई है।

डॉ स्वराज सिंह लिखते हैं, गुरु नानक देव जी एक लासानी धार्मिक मुखी के अतिरिक्त महान् मानववादी चिंतक भी थे।... उन्होंने अपने आपको सिर्फ धर्म के क्षेत्र तक ही नहीं रखा बल्कि उन्होंने अपने समकालीन समाज के हर पक्ष को उजागर किया[1]

युगपुरुष गुरु नानक देव जी का जब इस संसार में आगमन हुआ तो समाज जाति–पति के बंधनों में बुरी तरह फंसा हुआ था। समाज का ज्यादातर वर्ग मजदूर वर्ग से संबंधित था और उन्हें तुच्छ अछूत कहा जाता था। इस गरीब वर्ग को उच्च कुल की सेवा करनी पड़ती थी। गुलाम लोगों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता था।गुरु नानक देव जी ने समाज में प्रचलित नाम बराबरी के विरुद्ध बुनियादी मांगों के

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

लिए आवाज उठाई। उन्होंने सच्चाई और पवित्र जीवन को मानव की सबसे बड़ी शक्ति सुखी जीवन का रास्ता माना। गुरु नानक देव जी कहते हैं –

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।।
नानक तिन के संगि साथि वडिया सिऊ किया रीस।।[2]

गुरु नानक देव जी ने सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगों के अधिकारों की बात की है। गरीब लोगों पर जुल्म कर रहे समय के राजाओं के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलंद किया है। गुरु जी कहते हैं –

कलि काती राजे कासाई धरम पंख कर उड़रिया।।
कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चडिया।।[3]

अर्थात् कलयुग का दौर है। राजे कसाई का रूप ले चुके हैं। लोगों को कसाई की भांति तड़पा रहे हैं। दया और संतोष धर्म से खत्म हो चुकी है। झूठ का अंधेरा छाया है। सच्चाई का चांद कहीं नजर नहीं आ रहा। गुरुजी ने राजाओं की तुलना भेड़िए से की है जो मासूम लोगों का खून पी रहे हैं।

राजे सीह मुकदम कुते।। जाइ जगाइन्हि बैठे सुते।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ।।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।।[4]

राजे भेड़िए बन गए हैं और उनके मंत्रियों ने कुत्तों का रूप धार लिया है। राजे और मंत्री मिलकर लोगों की शांति को भंग कर रहे हैं। नौकर लोगों को जख्मी करते हैं खून और मांस मंत्री चाट रहे है।

जे जावा पति लथी जाए।।
सभ हराम जेता किछु खाए।।[5]

गुरुजी दबे हुए लोगों के साथ खड़े हुए उन्होंने गरीब लोगों को अपने अधिकारो के लिए लड़ने को प्रेरित किया ताकि जीवन से कलंकता मिट सके।

जे रतु लगै कपडै जामा होइ पलीतु।।
जो रतु पीवहि माणसा तिन कयो निरमल चीतु।।[6]

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि खून जब कपड़ों पर लग जाता है तो वह खराब हो जाते हैं। लोग उन्हें फेंक देते हैं। लेकिन जिस गरीब लोगों के खून को समय के राजा पी रहे हैं तो उनका ह्रदय पवित्र कैसे हो सकता है। गुरु नानक देव जी ने पिछडे हुए लोगों के साथ बुरा व्यवहार करने वालों की सख्त निंदा की है।

गुरु नानक ने समाज में औरत को उच्च दर्जा दिया है। उन्होंने और मर्द को एक दूसरे का हिस्सा माना है। दोनो मिलकर एक इकाई बनते हैं। दोने एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

पुरख में नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रहम गियानी।[7]

अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान रखने वाला ही बता सकता है कि पुरुष में स्त्री और स्त्री में पुरुष है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के साथ ही पैदा हुए हैं और यही कुदरत का रूप है। गुरुनानक देव ने समाज में स्त्री को उच्च स्थान दिया है और लोगों को उसका आदर करने को कहा है।

भंडि जमीए भंडि निमीए भंडि मंगणु बीआह।।
भंडहु हौवे दोस्ती भंडहु चलै राह।।

भंडु मुआ भंड भालीऐ भंडि हौवे बंधान।।
सो किउ मंदा आखिऐ जितु जंमहि राजान।।
भंडहु ही भंडु ऊपजै बाझु न कोइ।।
नानक भंडै बाहरा एकौ सचा सोई।।[8]

मनुष्य का जन्म स्त्री से ही होता है। स्त्री के पेट में ही उसका शरीर बनता है। स्त्री से सगाई और विवाह होता है। उसके साथ से ही संसार की उत्पत्ति का राह खुलता है। अगर स्त्री मर जाती है और स्त्री को ढूंढा जाता है। औरत के कारण ही और रिश्तों से संबंध जुड़ते हैं। जिस स्त्री से राजा पैदा होते हैं, फिर उसे बुरा कहना अच्छा नहीं है। औरत से ही औरत पैदा होती है। कोई मनुष्य स्त्री के बिना पैदा नहीं हो सकता। केवल एक सच्चा प्रभु है जो स्त्री के पेट से पैदा नहीं हुआ। गुरु जी ने स्त्री की भूमिका को समाज के सामने बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

गुरु नानक देव जी ने धार्मिक संस्थाओं में आ रही गिरावट का भी ढंग सुंदर ढंग से वर्णन किया है–

सरमु धरमु दुई छपि खलोए कूडु फिरै परधानु वे लाले।।[9]

शर्म धर्म की आड़ में छिप गई है और झूठ चारों और प्रधान बन गया है। सच्चाई का कोई निशान नहीं है। गुरु नानक देव ने पूरी मानवता को एक माना है। उन्होंने समस्त संसार को एक रूप में देखा है जिसमें अपने पराए का कोई भेदभाव नहीं है–

सभै साझीवाल सदाइन्हि तू किसै न दिसहि बाहरा जीऊ।।[10]

मनुष्य के लिए ऐसे भाईचारे का आधार बनाया है। जिसमें कोई बाहर नहीं है। सभी साथ में हैं। गुरु नानक देव का सिद्धांत धर्म जाति रंग के आधार पर बंटी लोगों को बंटे लोगों को एक साथ जोड़ने का है ।

गुरु नानक देव ने समाज की हर परेशानी को समझा और उसे दूर करने का प्रयत्न किया। संसार में व्याप्त अंधविश्वास, कपट और कर्म कांडओं को देखा। चारों ओर बेचैनी और घबराहट का पसार था। लोगों में ठग्गी और चालाकी को देखकर उन्होंने अनुभव किया कि सच्चाई का सूर्य अस्त हो चुका है।

धार्मिक मुखी, ब्राह्मण काजी, योगी जिन्होने समाज को सही सेध देने की वही समाज को उजाड़ रहे थे ।

कादी कूडु बोलि मलु खाए।।/ब्राह्मण नावै जीआ धाए ।।
जोगी, जुगत ना जाणै अंध।।/तीने उजाड़े का बंध।।[11]

लोगों को समझाने वाले खुद ही भटके हुए थे। आपने इस ओर लोगों को जागरूक किया। समाज का ढांचा इतना बिगड़ा हुआ था कि लोग नए कपड़े पहन नहीं सकते थे। तीर्थ यात्रा और नदी पार करने के लिए कर दिया जाता था। समाज हिंदू और मुसलमान दो श्रेणियों में बंटा हुआ था। शुद्र से कुत्ते की दशा भी अच्छी थी। कुत्ता गांव के कुए से पानी पी सकता था लेकिन शूद्रों को आज्ञा नहीं थी। गुरु नानक ने इस बुराई का खंडन किया और छोटी जाति के मरदाने को अपने साथी के रूप में चुना।

अगै जाति न जोरु है, अगै जीऊ नवे।। जिन की लेखै पति पवै, चंगे सेई केए।।[12]

गुरु नानक ने लोगों को उपदेश देते हुए कहा के जाति पाति से कोई छोटा बड़ा नहीं होता। बल्कि श्रेष्ठ मनुष्य वह होता है जिसके कार्य अच्छे हो। मनुष्य का बड़ा

छोटा होना उसके कार्य पर निर्भर करता है। प्रभु के दर पर आदर अच्छे कर्मों से मिलता है। बड़ी जाति का होने से नहीं मिलता।

सभौ सूतकु भरमु है, दूजै लगै जाए।। जमण मरणी हुक्मु है, भाणै आवै जाए।।[13]

उन्होंने समाज में पैदा हो रहे हैं झूठ आंडबरों पर भी चोट की है। जिस घर में बच्चे का जन्म होता था उसे सूतक घर समझा जाता था।जिस घर में कोई मर जाता था उसे पातक वाला घर समझा जाता था ।गुरु नानक देव ने कहा कि सूतक पातक मन के वहम है। जन्म मरण प्रभु के हाथ में है।

सचु वरतु संतोख तीरथु, गियानु धयानु इसनान।।[14]

वे कहते हैं कि मन को शांत और पवित्र करना ही सबसे बड़ा तीर्थ है। दिखावा करने से कोई धर्मी नहीं बन सकता। व्रत रखने की कोई जरूरत नहीं है। जीभ से अच्छे वचन बोल रहे हे तो वही व्रत है। तीर्थों पर भ्रमण करने से कुछ नहीं होता। मानव की मुक्ति तो प्रभु में अपना ध्यान लगाने से मिलती है। गले में माला लटका कर हम परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते।

मायाधारी, अति अन्ना बोला।। सबदु न सुणई, बहु रोल घचोला।।[15]

गुरु नानक नहीं भाई लालू की सच्ची के किरत का सम्मान किया है। उन्होंने गलत तरीके से कमाए धन का खंडन किया है। मायाधारी लोगों को अंधा तक कह दिया है। उन्होंने धन का अभिमान करने वालों की सख्त निंदा की है।

जाति जनमु नही पूछीए, सच घरु लेहु बताए।।
सा जाति,सा पति है,जेहे करम कमाए।।[16]

गुरु नानक बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि के मालिक और महान् चिंतक थे ।उन्होंने छुआछूत को खत्म करने की आवाज उठाई।उनका मानना था कि जाति से कोई बड़ा छोटा नहीं होता। बडा छोटा हमारे अच्छे बुरे कार्य पर निर्भर करता है।

फकड़ जाति फकड़ नाऊ।। सभना जीआ ईका छाऊ।।[17]

समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि परमात्मा की नजर में सभी समान हैं। वे किसी को बड़े छोटे के रूप में नहीं देखता। उनका मानना था कि प्रभु ही हमारा पिता है और हम सब उसकी औलाद हैं। उसके लिए कोई बड़ा छोटा नहीं है। उन्होंने सभी को साथ में जोड़ने का प्रयत्न किया।

एकु पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुर हाई।।[18]

समस्त संसार का पिता एक ही है और हम सब उसकी संतान हैं।

अव्वल अल्लाह नूरु उपाइआ कुदरत के सब बंदे।।
एक नूर ते सभ जग उपजिआ कउन भले को मंदै।।[19]

सबसे पहले अल्लाह (परमात्मा) प्रकट हुआ है। उसकी शक्ति से ही मनुष्य पैदा हुए हैं। एक जैसी मिट्टी से सभी बने हैं अर्थात् अच्छे बुरे का कोई भ्रम नहीं है। गुरु नानक देव का सिद्धांत संपूर्ण विश्व को एकता के आधार पर बांध कर रखने का है। उन्होंने प्रभु के निर्गुण रूप को अपने भक्ति का आधार बनाया।उनकी विश्वास है कि संपूर्ण सृष्टि में ही प्रभु का वास है। जिसका रंग,रूप, आकार नहीं है ,निर्गुण एक अडिग सच्चाई है। यह अकाल निरआकार है। जिसे गुरु नानक देव ने निरंकार कहा है। इस प्रकृति के तिनके तिनके में परमात्मा विराजमान है।

डॉक्टर स्वराज कहते हैं कि गुरु नानक का निर्गुण और सगुण का संकल्प उनके अनेकता में एकता के सिद्धांत का आधार बनता है।[20]

बलिहारी कुदरत वसिआ।।[21]

इस प्रकृति का सम्मान ही प्रभु का सम्मान करना है। गुरु नानक की वाणी मनुष्य को प्रकृति से जोड़ती है।

पवण गुरू पानी पिता माता धरति महतु।।[22]

वायु को गुरु पानी को पिता और पृथ्वी को मां के रूप में देखा है। गुरु नानक देव जी ऐसे युग पुरुष रहे हैं जिन्होंने समाज में लोगों के अधिकारों और बराबरी के लिए कार्य किया। उन्हें अंधविश्वासों से निकलकर एक प्रभु में यकीन करना सिखाया। लोगों को मेहनत मजदूरी करने और मिल बांट कर खाने की सीख दी। समाज सुधारक के रूप में उन्होंने समाज को सही दिशा प्रदान की है।निर्गुण प्रभु के बारे में मूल मंत्र में वे कहते हैं कि प्रभु एक है सदा रहने वाला है ।हर एक की रचना करने वाले सृजनहार को किसी का भय नहीं है। किसी के साथ लड़ाई झगड़ा भी नहीं है। वह जन्म मरण से परे हैं।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. स्वराज, गुरु नानक साहिब की ब्राहमंडी सोच, सप्त ऋषि पब्लिकेशन, चंडीगढ़, 2012 पृष्ठ 43
2. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 15
3. वही पृष्ठ 145
4. वही पृष्ठ,1288
5. वही पृष्ठ,142
6. वही पृष्ठ,140
7. वही पृष्ठ, 879
8. वही पृष्ठ,473
9. वही पृष्ठ,722
10. वही पृष्ठ, 97
11. वही पृष्ठ,662
12. वही पृष्ठ, 469
13. वही पृष्ठ, 472
14. वही पृष्ठ, 1245
15. वही पृष्ठ, 313
16. वही पृष्ठ, 1330
17. वही पृष्ठ, 83
18. वही पृष्ठ,611

19. वही पृष्ठ,1349
20. सिंह,डॉक्टर स्वराज , गुरु नानक साहिब की ब्राहमंडी सोच, सप्त ऋषि पब्लिकेशन, चंडीगढ़,पृष्ठ 37
21. गुरु ग्रंथ साहिब,पृष्ठ 469
22. वही पृष्ठ 8

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ : ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪਰਿਪੇਖ

ਡਾ. ਕੁਲਦੀਪ ਸਿੰਘ*

ਮਹਾਨ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਉਹੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੇ ਸਮੇਂ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਤੀਨਿਧ ਘਟਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਨਾ ਸਿਰਫ ਕਲਾਮਈ ਰੂਪ ਵਿਚ ਚਿਤਰੇ ਸਗੋਂ ਪ੍ਰਤੀਕਰਮ ਵਜੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਨਿਰਪੱਖ ਤੇ ਸੱਚੀ-ਸੁੱਚੀ ਪਰਖ-ਪੜਚੋਲ ਵੀ ਕਰੇ। ਮੱਧਕਾਲ ਵਿਚ ਅਜਿਹੀ ਹੀ ਮਹਾਨ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਦਾ ਆਗਮਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਵਜੋਂ ਸਤਿਕਾਰ ਦੇਂਦੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਆਗਮਨ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਜਗਤ ਵਿਚ ਇਕ ਨਵੇਂ ਦੌਰ ਦਾ ਆਗਾਜ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਵਿਸ਼ਵ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਸਮਾਜਕ ਕਲਿਆਣ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਸਮਝਿਆ ਅਤੇ ਕੌਮੀ-ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਸਾਂਝ ਤੇ ਤਰੱਕੀ ਲਈ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਜ਼ਰੂਰੀ ਮਹੱਤਤਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੁੱਚੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵਿਚੋਂ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ, ਭਗਤ, ਕਵੀ, ਗਾਇਕ (ਨਾਨਕ ਸਾਇਰੁ ਏਵ ਕਹਤੁ ਹੈ ਸਚੇ ਪਰਵਦਗਾਰਾ।।) ਸਮਾਜਕ ਆਗੂ ਤੇ ਪੈਗੰਬਰ ਵਾਲੇ ਗੁਣਾਂ ਦੀ ਝਲਕ ਤੇ ਅਦੁੱਤੀ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਵਾਲੇ ਗੁਣਾਂ ਦਾ ਚਮਤਕਾਰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ (ਨੀਚਾ ਅੰਦਰਿ ਨੀਚ ਜਾਤਿ ਨੀਚੀ ਹੂ ਅਤਿ ਨੀਚੁ।। ਨਾਨਕ ਤਿਨ ਕੈ ਸੰਗਿ ਸਾਥਿ ਵਡਿਆ ਸਿਉ ਕਿਆ ਰੀਸ।।) ਸਾਂਝ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਤਰਜਮਾਨੀ ਤੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਅਗਵਾਈ ਕੀਤੀ। ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਤੁਛ ਤੇ ਨੀਚ ਭਾਵਾਂ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਕਰਕੇ, ਆਤਮਿਕ ਬਰਾਬਰੀ ਦਾ ਬਲ ਦੇਣਾ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਮਹਾਨ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਤੇ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਹੀ ਕਮਾਲ ਸੀ। ਇਸੇ ਕਾਰਣ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਗੁਣਾਤਮਕ ਅਤੇ ਗਿਣਾਤਮਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਮਹਾਨ ਤੇ ਵੱਡਮੁੱਲੀ ਦੇਣ ਹੈ।

ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਕਾਲ ਤੋਂ ਹੀ ਪਰਮਾਤਮਾ, ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਤੇ ਪ੍ਰਾਣੀ ਧਰਮ-ਦਰਸ਼ਨ ਤੇ ਚਿੰਤਨ ਦੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ੇ ਰਹੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਫਿਲਾਸਫੀ ਨੇ ਵੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਇਕ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦਿਸ਼ਾ ਤੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ-ਫਿਲਾਸਫੀ ਨਿਰੋਲ ਸਿਧਾਂਤਕ, ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਆਧਾਰ ਨਹੀਂ ਸਿਰਜਦੀ ਸਗੋਂ ਇਹ ਵਿਵਹਾਰਕ ਪੱਖ ਉਪਰ ਜ਼ਿਆਦਾ ਬਲ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਫਿਲਾਸਫੀ ਨੇ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦੇ ਮਨੋਰਥ, ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਵਿਚਲੇ ਸੰਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਸਮਾਜਿਕ ਪਰਿਪੇਖ ਵਿਚ ਰੱਖ ਕੇ ਵਿਚਾਰਿਆ ਤੇ ਸਥਾਪਿਤ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਵਿਗਿਆਨ ਤੇ ਸਮਾਜਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਦੀ ਆਪਣੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਰੋਕਾਰਾਂ/ਸੰਦਰਭਾਂ ਨਾਲ ਨਵੀਨ ਵਿਆਖਿਆ ਹੁੰਦੀ ਰਹੀ ਹੈ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਇਸ ਤੋਂ ਨਵੀਂ ਸੇਧ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਾਰਣ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਪ੍ਰਾਸੰਗਿਕਤਾ ਸਦੀਵੀ ਤੇ ਸਮਕਾਲੀ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਹਰ ਸਮੇਂ ਤੇ ਸਥਾਨ ਤੇ ਪ੍ਰਾਸੰਗਿਕ ਹੈ। ਸਮੁੱਚੀ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡੀ ਚੇਤਨਾ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਤਮ ਜੀਵ ਮੰਨਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਫਿਲਾਸਫੀ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਉੱਚੀਆਂ-ਸੁੱਚੀਆਂ ਤੇ ਸਚਿਆਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਬਣਨ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਆ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਾਰੀ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਚਾ ਦਰਜਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਸੋਚ ਤੇ ਸਮਝ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਅੰਦਰ ਹੀ ਜੀਣ, ਥੀਣ ਤੇ ਵਿਕਾਸ ਕਰਨ ਦੀਆਂ ਅਪਾਰ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਮੌਜੂਦ ਹਨ। ਪਰੰਤੂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਮਨੁੱਖ ਮਨੁੱਖੀ ਹੋਂਦ ਦੇ ਮੂਲ ਨਾਲੋਂ ਟੁੱਟਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਕੌਮੀ ਅਤੇ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਏਕਤਾ ਖੰਡਿਤ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਵੇਲੇ ਵੀ ਕੌਮੀ ਏਕਤਾ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਸਮੱਸਿਆ ਸੀ। ਇਸ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਹੱਲ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸੱਚ ਨੂੰ ਸੱਚ ਅਤੇ ਗਲਤ ਨੂੰ ਗਲਤ ਕਹਿੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਆਤਮਿਕ ਵਿਕਾਸ ਤੇ ਬਲ ਦਿੱਤਾ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਬਹੁ-ਧਰਮੀ, ਬਹੁ-ਭਾਸ਼ਾਈ, ਬਹੁ-ਕੌਮੀ ਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਦੋ ਧਰਮਾਂ ਦੇ ਆਪਸੀ ਵਖਰੇਵੇਂ ਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਧਰਮਾਂ ਦੇ ਆਂਤਰਿਕ

*ਅਸਿਸਟੈਂਟ ਪ੍ਰੋਫ਼ੈਸਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ, ਕੁਰੂਕਸ਼ੇਤਰ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਕੁਰੂਕਸ਼ੇਤਰ।

ਖੋਖਲੇਪਨ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਨੂੰ ਸਮਝਿਆ ਤੇ ਦੇਖਿਆ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਹਿੰਦੂਆਂ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਦੀ ਆਪਸੀ ਏਕਤਾ ਅਤੇ ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ ਲਈ ਸਫਲ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ। ਸ਼ਾਇਦ ਏਸੇ ਲਈ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ''ਬਾਬਾ ਨਾਨਕ ਸ਼ਾਹ ਫਕੀਰ, ਹਿੰਦੂ ਕਾ ਗੁਰੂ, ਮੁਸਲਮਾਨ ਕਾ ਪੀਰ।'' ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਧਰਮਾਂ ਵਿਚਲੇ ਅੰਤਰ ਵਿਤਕਰੇ ਨੂੰ ਨਾ ਸਿਰਫ ਦੂਰ ਕੀਤਾ ਸਗੋਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅੰਦਰਲੇ ਖੋਖਲੇਪਨ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦੇ ਹੋਇਆਂ ਧਾਰਮਿਕ ਆਗੂਆਂ ਦੁਆਰਾ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਗੁਮਰਾਹ ਕਰਕੇ ਆਪ ਫਾਇਦਾ ਉਠਾਉਣ ਦੇ ਪਾਜ਼ ਨੂੰ ਵੀ ਉਘਾੜਿਆ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਸ਼ੇਖ, ਕਾਜ਼ੀ, ਮੁੱਲਾ, ਜੋਗੀ ਅਤੇ ਪੰਡਿਤ ਸਭ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਕੁਰੀਤੀਆਂ ਤੇ ਗਲਤ ਰਵਾਇਤਾਂ ਲਈ ਨਿੰਦਿਆ ਵੀ ਅਤੇ ਖ਼ਬਰਦਾਰ ਵੀ ਕੀਤਾ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਦੱਸਿਆ ਕਿ ਇਥੇ ਨਾ ਕੋਈ ਹਿੰਦੂ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਕੋਈ ਮੁਸਲਮਾਨ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਤਾਂ ਬਾਬਰ ਵਰਗੇ ਜਾਬਰ ਨੂੰ ਜਿਸ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਕੋਈ ਬੋਲਣਾ ਤਾਂ ਦੂਰ ਸਾਹ ਵੀ ਨਹੀਂ ਸੀ ਕੱਢ ਸਕਦਾ ਦਲੇਰਾਨਾ ਬੇਬਾਕੀ ਨਾਲ ਕਿਹਾ :

ਪਾਪ ਕੀ ਜੰਞ ਲੈ ਕਾਬਲਹੁ ਧਾਇਆ ਜੋਰੀ ਮੰਗੈ ਦਾਨੁ ਵੇ ਲਾਲੋ।।
ਸਰਮੁ ਧਰਮੁ ਦੁਇ ਛਪਿ ਖਲੋਏ ਕੂੜੁ ਫਿਰੈ ਪਰਧਾਨੁ ਵੇ ਲਾਲੋ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 722)

ਕਿਸੇ ਵੀ ਦੇਸ਼ ਦੀ ਸ਼ਾਂਤੀ, ਖੁਸ਼ਹਾਲੀ ਅਤੇ ਬਚਾਅ ਲਈ ਏਕਤਾ ਦਾ ਹੋਣਾ ਬਹੁਤ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਕੌਮੀ, ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਏਕਤਾ ਦਾ ਮਤਲਬ ਇਕਸਾਰਤਾ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ। ਇਸ ਵਿਚ ਇਕ ਦੂਜੇ ਦੀ ਮਦਦ, ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਕਰਨ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ, ਇਕੋ ਜਿਹੀਆਂ ਰੁਚੀਆਂ, ਉਮੀਦਾਂ ਅਤੇ ਡਰ, ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਵੰਡਣਾ, ਆਪਸੀ ਸਮਝ, ਖਿਮਾ ਕਰਨਾ ਅਤੇ ਪਿਆਰ ਕਰਨਾ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਅਫਸੋਸ ਦੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਕੌਮੀ/ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੀ ਘਾਟ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਕੌਮੀ/ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਏਕਤਾ ਦਾ ਵਿਚਾਰ ਸਿੱਖੀ ਦੀ ਨੀਂਹ ਰੱਖਣ ਸਮੇਂ ਹੀ ਆ ਗਿਆ ਸੀ ਜਦੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਕਿਹਾ ਸੀ :

ਸਭ ਮਹਿ ਜੋਤਿ ਜੋਤਿ ਹੈ ਸੋਇ ।।
ਤਿਸ ਕੈ ਚਾਨਣਿ ਸਭ ਮਹਿ ਚਾਨਣੁ ਹੋਇ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 663)

ਫਕੜ ਜਾਤੀ ਫਕੜ ਨਾਉ ।।
ਸਭਨਾ ਜੀਆ ਇਕਾ ਛਾਉ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 83)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਵਿਅਕਤੀ, ਧਰਮ, ਜਾਤ-ਪਾਤ, ਰੰਗ-ਰੂਪ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਨਹੀਂ ਰੱਖਿਆ, ਅਸਲ ਵਿਚ ਉਹ ਕਪਟ ਵਿਦਿਆ (Hypocracy) ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਸੀ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਹਿੰਦੂਆਂ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਨੂੰ ਇਕੋ ਜਿਹਾ ਸਤਿਕਾਰਿਆ। ਇਸ ਕਾਰਨ ਕੌਮੀ ਅਤੇ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਹਿੰਦੂ-ਮੁਸਲਮਾਨ ਏਕਤਾ ਦੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਮਿਸ਼ਨਰੀ ਸਨ। ਇਹ ਧਰਮ ਤਾਂ ਇਕ ਮੁਖੌਟਾ ਨੇ ਤੇ ਇਸ ਮੁਖੌਟੇ ਪਿੱਛੇ ਅਸਲ 'ਚ ਇਕ 'ਇਨਸਾਨ' ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਉਹ ਹੈ ਜੋ ਜਪ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਗਿਆਨ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਵੰਡਦਾ ਹੈ। ਰੱਬ ਦਾ ਜਾਪ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਖੱਤਰੀ ਉਹ ਹੈ ਜੋ ਬਹਾਦਰੀ ਦੇ ਕੰਮ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪੁੰਨ ਦਾਨ ਅਤੇ ਖੁੱਲ ਦਿਲੀ ਦੀ ਮਿਸਾਲ ਹੈ। ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੁਸਲਮਾਨ ਉਹ ਹੈ ਜੋ ਅਸ਼ੁੱਧੀਆਂ ਛੱਡ ਕੇ ਸਾਰੇ ਇਨਸਾਨਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਦਇਆ ਰਖਦਾ ਹੈ। ਵਿਹਾਰਕ ਰੂਪ 'ਚ ਇਸ ਏਕਤਾ ਦੀ ਮਿਸਾਲ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਖੁਦ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਏਸ ਮਿਸਾਲ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰਖਦਿਆਂ ਹੋਇਆ ਹਿੰਦੂ ਭਾਈ ਬਾਲਾ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਭਾਈ ਮਰਦਾਨਾ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰਕ ਯਾਤਰਾ ਲਈ ਚੁਣਿਆ। ਉਸ ਵੇਲੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਜੁਲਣ ਦੇ ਸਾਧਨ ਬਹੁਤ ਘੱਟ ਸਨ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਆਪ ਉੱਤਰ, ਦੱਖਣ, ਪੂਰਬ ਅਤੇ ਪੱਛਮ ਵਲ ਯਾਤਰਾਵਾਂ ਕਰਕੇ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਅਤੇ

ਇਕ ਰੱਬੀ ਜੋਤ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ। ਪੂਰਬ ਵਿਚ ਨਾਗਾਲੈਂਡ, ਦੱਖਣ ਵਿਚ ਲਕਸ਼ਦੀਪ, ਸ਼੍ਰੀਲੰਕਾ, ਉੱਤਰ ਵਿਚ ਕਸ਼ਮੀਰ, ਮਾਨਸਰੋਵਰ, ਪੱਛਮ ਵਿਚ ਬਗਦਾਦ ਤੱਕ ਦੀਆਂ ਇਹ ਯਾਤਰਾਵਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੀ ਕੌਮੀ/ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਸੂਝ ਬੂਝ ਸੰਬੰਧੀ ਸਮਝ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੇ ਉਤਕ੍ਰਿਸ਼ਟ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਨੂੰ ਪੈਦਾ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਦੂਰ ਦੁਰਾਡੇ ਦੇ ਇਸਲਾਮੀ ਦੇਸ਼ ਜਿਵੇਂ ਮੱਕਾ, ਮਦੀਨਾ, ਹਿੰਦ, ਬੋਧੀ ਦੇਸ਼ ਤਿੱਬਤ, ਨੀਲੋਨ ਅਤੇ ਨੇਪਾਲ ਵੀ ਨਹੀਂ ਛੱਡੇ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਹ ਸਿਰਫ ਇਕ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਵਿਅਕਤੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਇਕ ਸੰਸਥਾ ਹਨ ਇਸੇ ਕਰਕੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਅੱਜ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਸ਼ਿੱਦਤ ਨਾਲ ਯਾਦ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਗੋਰਖਮ ਤੇ ਪੁੱਜ ਕੇ ਗੋਰਖਮਤ ਦੇ ਜੋਗੀਆਂ ਨੂੰ ਸ਼ੁੱਧ ਅਤੇ ਅਧਿਆਤਮਕ ਜੀਵਨ ਤੋਂ ਸੱਖਣੇ ਨਿਰੇ ਭੇਖ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਦੇ ਖੋਖਲੇਪਨ ਦੀ ਆਲੋਚਨਾ ਕਰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਕਿਹਾ :

ਜੋਗੁ ਨ ਖਿੰਥਾ ਜੋਗੁ ਨ ਡੰਡੈ ਜੋਗੁ ਨ ਭਸਮ ਚੜਾਈਐ।।
ਜੋਗੁ ਨ ਮੁੰਦੀ ਮੂੰਡਿ ਮੁਡਾਇਐ ਜੋਗ ਨ ਸਿੰਙੀ ਵਾਈਐ।।
ਅੰਜਨ ਮਾਹਿ ਨਿਰੰਜਨਿ ਰਹੀਐ ਜੋਗ ਜੁਗਤਿ ਇਵ ਪਾਈਐ।।
ਗਲੀ ਜੋਗੁ ਨ ਹੋਈ।।
ਏਕ ਦ੍ਰਿਸਟਿ ਕਰਿ ਸਮਸਰਿ ਜਾਣੈ ਜੋਗੀ ਰਹੀਐ ਸੋਈ।।੧।।ਰਹਾਉ

(ਸੂਹੀ ਮਹਲਾ ੧, ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 730)

ਪੁਰੀ ਦੇ ਸਥਾਨ ਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਜਗਨਨਾਥ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਮੰਦਰ ਦੀ ਯਾਤਰਾ ਕੀਤੀ । ਉਹ ਉਸ ਸਮੇਂ ਮੂਰਤੀ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਆਰਤੀ 'ਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਨਹੀਂ ਹੋਏ ਅਜਿਹਾ ਨਾ ਕਰਨ ਦਾ ਕਾਰਣ ਪੁੱਛਣ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਰੱਬ ਦੇ ਅਣਦਿਸਦੇ ਪੂਜਾ ਅਸਥਾਨ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਕੁਦਰਤ ਇਕ ਅਦਭੂਤ ਆਥਣ ਦਾ ਗੀਤ ਗਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਸਨਮੁਖ ਬਣਾਉਟੀ ਆਰਤੀ ਕਰਨ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੈ :

ਗਗਨ ਮੈਂ ਥਾਲੁ ਰਵਿ ਚੰਦ ਦੀਪਕ ਬਨੇ
ਤਾਰਿਕਾ ਮੰਡਲ ਜਨਕ ਮੋਤੀ ।।
ਧੂਪ ਮਲਿਆਨਲੋ ਪਵਣੁ ਚਵਰੋ ਕਰੇ
ਸਗਲ ਬਨਰਾਇ ਫੂਲੰਤ ਜੋਤੀ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 663)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਹਿਮਾਲਿਆ ਵਾਲੇ ਪਾਸੇ ਜੋਗੀ ਸਾਧੁਆਂ ਨੂੰ ਮਿਲੇ ਜਿਹੜੇ ਕੰਦਰਾਵਾਂ/ਗੁਫਾਵਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦੇ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਕਿਹਾ ਕਿ ਉਹ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਰਹਿ ਕੇ, ਸਮਾਜਕ ਸਬੰਧ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਕੇ ਸਮਾਜਕ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਵਧੇਰੇ ਸਹਾਹਿਤਾ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਲਈ ਖੋਖਲੇ ਭੇਖ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਅਤੇ ਸਖਤ ਤਪੱਸਿਆ ਕਰਨ ਦੀ ਥਾਂ ਉਹ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੀ ਸੇਵਾ ਵਿਚ ਲਾਉਣ। ਜੋਗੀਆਂ ਦੇ ਇਹ ਪੁੱਛਣ ਤੇ ਕਿ ਥੱਲੇ ਮੈਦਾਨਾਂ ਵਿਚ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਹਾਲਾਤ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਕਿਹਾ :

'ਬਾਬੇ ਕਹਿਆ ਨਾਥ ਜੀ ਸਚ ਚੰਦਰਮਾ ਕੂੜ ਅੰਧਾਰਾ।।
ਕੂੜ ਅਮਾਵਸ ਵਰਤਿਆ, ਤਉ ਭਾਲਣ ਚੜਿਆ ਸੰਸਾਰਾ।।
ਪਾਪ ਗਿਰਾਸੀ ਪ੍ਰਿਥਮੀ ਧੌਲ ਖੜਾ ਧਰ ਹੈਨ ਪੁਕਾਰਾ।।
ਸਿਧ ਛਪ ਬੈਠੇ ਪਰਬਤੀ ਕੌਣ ਜਗਤ ਕੋ ਪਾਰ ਉਤਾਰਾ।।
ਜੋਗੀ ਗਯਾਨ ਵਿਹੂਣਿਆ ਨਿਸਦਿਨ ਅੰਗ ਲਗਾਇਨ ਛਾਰਾ।।
ਬਾਝੁ ਗੁਰੂ ਡੁਬਾ ਜਗੁ ਸਾਰਾ।।

(ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ, ਵਾਰ ਪਹਿਲੀ, ਸਲੋਕ 29)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੀ ਵਿਦਵਤਾ ਦਾ ਅੰਤ ਨਹੀਂ ਪਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ । ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਮਤ ਦੇ ਤਿੰਨ ਧੁਰੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਵਿਚ ਅਟੁੱਟ ਵਿਸ਼ਵਾਸ, ਸਮਾਜ ਸੇਵਾ, ਸਿਮਰਨ ਦਾ ਵਿਸਮਾਦ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਅਨੁਭਵ ਤੇ ਤਜ਼ਰਬੇ ਤੋਂ ਘੜੇ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਬੇਸ਼ਕ ਅਖੰਡ ਭਾਰਤ ਨਾਲ ਸੀ ਪਰੰਤੂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਮੰਤਵ ਸਰਬਸਾਂਝੀ ਦੁਨੀਆਂ ਨਾਲ ਵਧੇਰੇ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਉਹ ਵਿਦਿਆ ਦੇ ਮਨੋਰਥ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਬਣਾਉਣ ਅਤੇ ਅੰਤਰਰਾਸ਼ਟਰੀ ਮਾਨਵਵਾਦੀ ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਦੇਖਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਵਿਦਿਆ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖੀ ਧਰਮ ਨੂੰ ਮਾਨਵਵਾਦ ਦੇ ਰੂਪ 'ਚ ਦੇਖਦੇ ਹਨ। ਵਿਦਿਆ ਅਜਿਹੇ ਸੰਕਲਪ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਮਨੁੱਖ 'ਚ ਪਰਉਪਕਾਰ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਪ੍ਰਬਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਵਿਦਿਆ ਵਿਚਾਰੀ ਤਾਂ ਪਰਉਪਕਾਰੀ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 356)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤ ਇਨਸਾਨ ਅੰਦਰ ਮਨੁੱਖੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਬਰਾਬਰੀ ਵਾਲਾ ਊਚ ਨੀਚ ਤੇ ਜਾਤ-ਪਾਤ ਰਹਿਤ ਮਾਨਵ ਪੱਖੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਵਾਲਾ ਸਮਾਜ ਉਸਾਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਸਨ। ਇਸ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖੀ ਜਾਤੀ ਨੂੰ ਸਾਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਦੀ ਭਲਾਈ ਲਈ ਸੋਚਣ ਦੀ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਦਿੱਤੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਮਨੁੱਖੀ ਸੋਚ, ਜੋ ਬਿਨਾਂ ਕਿਸੇ ਕਿਸਮ ਦੀ ਲਾਗ-ਈਰਖਾ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਵੇ, ਹਾਲਾਤ ਨੂੰ ਭਲੀ ਭਾਂਤ ਸਮਝਣ ਦੀ ਬੁੱਧੀ, ਕਸ਼ਟ ਬਰਦਾਸ਼ਤ ਕਰਨ ਦੀ ਭਾਵਨਾ, ਹਰ ਇਕ ਸਮੁਦਾਇ ਦੀ ਭਲਾਈ ਵੱਲ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਭਾਂਤ ਦੀ ਜੁੰਮੇਵਾਰੀ, ਹਰ ਧਰਮ, ਜਾਤ-ਪਾਤ ਤੇ ਰੰਗ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਸਤਿਕਾਰ ਆਦਿ ਅਸੂਲਾਂ ਤੇ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਸਮੁੱਚੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਨਾ ਸਿਰਫ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ ਸਗੋਂ ਵਿਹਾਰਕ ਰੂਪ 'ਚ ਆਪਣੇ ਮਨੁੱਖੀ ਕਿਰਦਾਰ ਰਾਹੀਂ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਇਹ ਕਰਕੇ ਵੀ ਦਿਖਾਇਆ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਜੋਗੀਆਂ, ਸੰਨਿਆਸੀਆਂ, ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ, ਸੇਖਾਂ, ਮੋਲਵੀਆਂ ਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਅਸੂਲਾਂ ਬਾਰੇ ਸੁਸਿੱਖਿਅਤ ਵੀ ਕੀਤਾ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਦਲੀਲਾਂ ਸੁਣ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਾਨਵਤਾਂ ਦੀ ਭਲਾਈ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕਰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਨਿਰਪੱਖ ਸੋਚ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਆ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਕਿਹਾ :

ਜੋਗੁ ਨਾ ਭਗਵੀ ਕਪੜੀ ਜੋਗੁ ਨ ਮੈਲੇ ਵੇਸਿ।।
ਨਾਨਕ ਘਰਿ ਬੈਠਿਆ ਜੋਗੁ ਪਾਈਐ ਸਤਿਗੁਰ ਕੈ ਉਪਦੇਸਿ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨੇ 1420-21)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚਾਰਾਂ ਅਤੇ ਅਸੂਲਾਂ ਦੀ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਅਜਿਹੀ ਸੋਚ ਘੜਨ ਲਈ ਕੌਮੀ/ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਵਿਦਿਆ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦੇਣ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਧਰਮ, ਵਿਦਿਆ ਤੇ ਨੈਤਿਕਤਾ ਨੂੰ ਮਾਨਵਵਾਦੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਵਿਚ ਸਹਾਈ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ।ਮਨੁੱਖੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਸੇਧ ਦੇ ਕੇ ਰਾਸ਼ਟਰੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਸੋਚ ਨਾਲ ਜੋੜਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦਾ ਟੀਚਾ ਸਾਧਾਰਨ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਦੁਨੀਆਂ ਦੀਆਂ ਤੰਗ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਕਰਕੇ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੇ ਭਲੇ ਲਈ ਘੜਨਾ ਸੀ। ਉਹ ਮਨੁੱਖੀ ਜਾਤੀ ਦੀਆਂ ਬਰਾਬਰੀ ਦੀਆਂ ਕੀਮਤਾਂ 'ਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰੱਖਦੇ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਮਾਜ ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਚਾਰ ਵਰਣਾਂ (ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ, ਕਸ਼ਤ੍ਰੀ, ਵੈਸ਼ ਤੇ ਸ਼ੂਦਰ) ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ ਵਿਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ ਦਾ ਸਖ਼ਤ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿਚ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ :

ਜਾਤਿ ਦਾ ਗਰਬੁ ਨਾ ਕਰੀਅਹੁ ਕੋਈ ।।
ਬ੍ਰਹਮ ਬਿੰਦੇ ਸੋ ਬ੍ਰਾਹਮਣੁ ਹੋਈ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 1127)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਖੁਦ ਸੱਚਾ ਤੇ ਸੁਚਾ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕੀਤਾ ਤੇ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਵੀ ਇਸ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕੀਤਾ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਕਿਹਾ ਕਿ ਸੱਚ ਨੂੰ ਜਾਣ ਲੈਣਾ ਹੀ ਕਾਫੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਸਗੋਂ ਇਸ ਨੂੰ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਪੂਰਨਤੌਰ ਤੇ ਵਸਾਉਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ :

ਸਚਹੁ ਓਰੈ ਸਭੁ ਕੋ ਉਪਰਿ ਸਚੁ ਆਚਾਰੁ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 62)

ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਧਾਰਮਿਕ ਬਾਹਰੀ ਦਿਖਾਵੇ, ਪਾਖੰਡ ਤੇ ਕੱਟੜਪਨ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕੀਤਾ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਜਨੇਊ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਸਬੰਧੀ ਵਿਚਾਰ ਦੀ ਕਟੱੜਤਾ ਨੂੰ ਨਾ ਸਿਰਫ ਖਾਰਿਜ਼ ਕੀਤਾ ਸਗੋਂ ਇਸ ਸਬੰਧੀ ਇਕ ਨਵੀਨ ਤੇ ਤਾਰਕਿਕ ਵਿਚਾਰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ :

ਦਇਆ ਕਪਾਹ ਸੰਤੋਖੁ ਸੂਤੁ ਜਤੁ ਗੰਢੀ ਸਤੁ ਵਟੁ ।।
ਏਹੁ ਜਨੇਊ ਜੀਅ ਨਾ ਹਈ ਤ ਪਾਡੇ ਘਤੁ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 471)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਰਸਮਾਂ ਤੇ ਰਵਾਇਤਾਂ ਨੂੰ ਤੋੜਨ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕੀਤਾ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੱਚ ਨਾਲ ਕੋਈ ਸਬੰਧ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਵਹਿਮਾਂ, ਭਰਮਾਂ ਤੇ ਜਾਤਪਾਤ ਵਿਚ ਫਸੇ ਹਿੰਦੂਆਂ ਨੂੰ ਅਤੇ ਧਾਰਮਕ ਕੱਟੜਪਨ, ਅਤਿਵਾਦ ਤੇ ਤਸ਼ੱਦਦ ਦੀਆਂ ਵਲਗਣਾਂ ਵਿਚ ਘਿਰੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਨੂੰ ਨਾ ਸਿਰਫ਼ ਬਾਹਰ ਕੱਢਿਆ ਸਗੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸੱਚਾ ਅਧਿਆਤਮਕ ਰਾਹ ਵੀ ਦੱਸਿਆ ।

ਗਉ ਬਿਰਾਹਮਣ ਕਉ ਕਰ ਲਾਵਹੁ ਗੋਬਰਿ ਤਰਣੁ ਨ ਜਾਈ।।
ਧੋਤੀ ਟਿਕਾ ਤੈ ਜਪਮਾਲੀ ਧਾਨੁ ਮਲੇਛਾਂ ਖਾਈ ।।
ਅੰਤਰਿ ਪੂਜਾ ਪੜਹਿ ਕਤੇਬਾ ਸੰਜਮੁ ਤੁਰਕਾ ਭਾਈ।।
ਛੋਡੀਲੇ ਪਾਖੰਡਾ।।ਨਾਮਿ ਲਇਐ ਜਾਹਿ ਤਰੰਦਾ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 471)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਬੁੱਤ ਪੂਜਾ ਦੀ ਮੁਖਾਲਫ਼ਤ ਕਰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਬੁਤ ਪੂਜਾ ਅਤੇ ਪੱਥਰਾਂ ਦੀ ਪੂਜਾ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕੀਤਾ ਜੋ ਨਾ ਦੇਖ ਸਕਦੇ ਸੀ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਬੋਲ ਸਕਦੇ ਸੀ :

ਬੁਤ ਪੂਜਿ ਪੂਜਿ ਹਿੰਦੂ ਮੂਏ ਤੁਰਕ ਮੂਏ ਸਿਰੁ ਨਾਈ ।।
ਓਇ ਲੇ ਜਾਰੇ ਓਇ ਲੇ ਗਾਡੇ ਤੇਰੀ ਗਤਿ ਦੁਹੂ ਨ ਪਾਈ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 654)

ਇਨਸਾਨੀਅਤ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਚੰਗੀ ਆਚਰਨ ਉਸਾਰੀ ਉਪਰ ਜੋਰ ਦਿੱਤਾ ਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਕਰਾਮਾਤਾਂ ਜਾਂ ਜਾਦੂ ਟੂਣਿਆਂ ਨਾਲ ਇਨਸਾਨ ਉੱਚਾ ਨਹੀਂ ਉੱਠ ਸਕਦਾ :

ਮਨਿ ਮੈਲੇ ਸੂਚਾ ਕਿਉ ਹੋਇ।। ਸਾਚਿ ਮਿਲੈ ਪਾਵੈ ਪਤਿ ਸੋਇ।।
ਆਚਾਰਾ ਵੀਚਾਰੁ ਸਰੀਰਿ।। ਆਦਿ ਜੁਗਾਦਿ ਸਹਿਜ ਮਲੁ ਧੀਰਿ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 686)

ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਚੰਗੀ ਆਚਰਨ ਉਸਾਰੀ ਕਰਕੇ ਇਨਸਾਨ ਨੂੰ 'ਸਚਿਆਰਾ' ਬਣਾਉਣ ਤੇ ਜ਼ੋਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਵਿਚ ਇਹ ਆਤਮ-ਪਰਾਪਤੀ ਦਾ ਇਕ ਪੜਾਅ ਹੈ। ਇਸ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਲਈ ਵਿਦਿਆ ਨੇ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਉਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਸੇਵਾ ਤੇ ਵੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ੋਰ ਦਿੱਤਾ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਸੇਵਾ ਤੋਂ ਬਗੈਰ ਹੱਥ ਪੈਰ ਕਿਸੇ ਵੀ ਕੰਮ ਦੇ ਨਹੀਂ ਹਨ ਤੇ ਸਾਰੇ ਦੂਸਰੇ ਕੰਮ ਕਾਰ ਵੀ ਨਿਰਫਲ ਹਨ :

ਆਪੁ ਗਵਾਇ ਸੇਵਾ ਕਰੇ ਤਾ ਕਿਛੁ ਪਾਏ ਮਾਨੁ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 474)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨਿਮਾਣਿਆਂ ਤੇ ਨਿਤਾਣਿਆਂ ਦੇ ਹਮਦਰਦ ਤੇ ਸਾਥੀ ਸਨ। ਬਾਬਰ ਦੇ ਹਮਲੇ ਕਾਰਨ ਗਰੀਬਾਂ ਤੇ ਨਿਮਾਣਿਆਂ ਨੂੰ ਹੋਏ ਕਸ਼ਟ ਦੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਭਰਪੂਰ ਨਿੰਦਿਆ ਕੀਤੀ :

ਖੁਰਾਸਾਨ ਖਸਮਾਨਾ ਕੀਆ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨੁ ਡਰਾਇਆ ।।
ਆਪੈ ਦੋਸੁ ਨ ਦੇਈ ਕਰਤਾ ਜਮੁ ਕਰਿ ਮੁਗਲੁ ਚੜਾਇਆ ।।
ਏਤੀ ਮਾਰ ਪਈ ਕਰਲਾਣੈ ਤੈਂ ਕੀ ਦਰਦੁ ਨ ਆਇਆ ।।
ਕਰਤਾ ਤੂੰ ਸਭਨਾ ਕਾ ਸੋਈ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 360)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਇਸਤਰੀਆਂ ਨਾਲ ਲਿੰਗ ਭੇਦ ਦੇ ਆਧਾਰ ਉਤੇ ਹੁੰਦੇ ਵਿਤਕਰੇ ਦਾ ਨਾ ਸਿਰਫ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ ਸਗੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਮਾਣ ਬਖ਼ਸ਼ਿਆ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਰੁਤਬਾ ਵਧਾਇਆ। ਇਸਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਮਰਦਾਂ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਰੁਤਬਾ ਦਿੰਦੇ ਹੋਏ ਧਰਮ ਦੇ ਕੰਮਾਂ ਵਿਚ ਲਗਾਇਆ। ਇਸਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਸੰਗਤ ਵਿਚ ਬੈਠ ਕੇ ਕੀਰਤਨ ਤੇ ਗੁਰਮਤਿ ਵਿਚਾਰਾਂ ਕਰਨ ਵਿਚ ਭਾਈਵਾਲ ਬਣਾਇਆ। ਪਰਦੇ ਦੀ ਰਸਮ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ । ਸੰਗਤ ਵਿਚ ਬੈਠਣ ਲਈ ਪਰਦੇ ਤੇ ਰੋਕ, ਆਦਮੀ ਦਾ ਲੰਗਰ ਦੀ ਸੇਵਾ ਲਈ ਰਸ਼ਦ ਲਿਆਉਣਾ, ਇਸਤਰੀਆਂ ਦਾ ਖਾਣਾ ਬਣਾਉਣਾ, ਸਤੀ ਦੀ ਰਸਮ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰਨਾ ਆਦਿ ਬਾਰੇ ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਧਰ ਤੇ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਲਿਆਉਣ ਵਾਲੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਭਾਰਤੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਸੰਤ ਸਨ। ਆਸਾ ਦੀ ਵਾਰ ਵਿਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਕਥਨ ਹੈ :

ਸੋ ਕਿਉ ਮੰਦਾ ਆਖੀਐ ਜਿਤੁ ਜੰਮਹਿ ਰਾਜਾਨ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 473)

ਇਸ ਸਭ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਵਿਅਕਤੀ ਕਿਹੋ ਜਿਹਾ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ? ਉਸ ਵਿਚ ਕਿਹੋ ਜਿਹੇ ਗੁਣ ਹੋਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਹਨ? ਆਦਿ ਬਾਰੇ ਵੀ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਵਿਚਾਰ ਕੀਤੀ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਆਦਰਸ਼ਕ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਚ ਸੱਚ, ਨਿਡਰਤਾ, ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਦੁਸ਼ਮਣੀ ਨਾ ਰੱਖਣਾ, ਸਾਰੀ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਪਿਆਰ ਕਰਨਾ, ਸਵੱਛਤਾ, ਇਨਸਾਫ, ਖੁੱਲ੍ਹਦਿਲੀ ਤੇ ਦਿਆਲੂਪਣ, ਮਿਠਾਸ, ਗ੍ਰਿਹਸਤ ਜੀਵਨ ਦੀ ਪਾਲਣਾ ਆਦਿ ਗੁਣਾਂ ਦਾ ਹੋਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।

ਸਚ–

ਸਚੁ ਸਭਨਾ ਹੋਇ ਦਾਰੂ ਪਾਪ ਕਢੈ ਧੋਇ ।।
ਨਾਨਕ ਵਖਾਣੈ ਬੇਨਤੀ ਜਿਨ ਸਚੁ ਪਲੈ ਹੋਇ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 468)

ਨਿਡਰਤਾ–

ਖੁਰਾਸਾਨ ਖਸਮਾਨਾ ਕੀਆ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨੁ ਡਰਾਇਆ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 360)

ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਦੁਸ਼ਮਣੀ ਨਾ ਰਖਣਾ–

ਗੁਰਮੁਖ ਵੈਰ ਵਿਰੋਧ ਗਵਾਵੈ।।
ਗੁਰਮੁਖ ਸਗਲੀ ਗਣਤ ਮਿਟਾਵੈ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 942)

ਸਵੱਛਤਾ –

ਸੂਚੇ ਇਹ ਨ ਆਖੀਅਹਿ ਬਹਨਿ ਜਿ ਪਿੰਡਾ ਧੋਇ।।
ਸੂਚੇ ਸੇਈ ਨਾਨਕਾ ਜਿਨ ਮਨਿ ਵਸਿਆ ਸੋਇ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 472)

ਇਨਸਾਫ –

ਏਤੀ ਮਾਰ ਪਈ ਕਰਲਾਣੈ।।ਤੈ ਕੀ ਦਰਦੁ ਨਾ ਆਇਆ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 360)

ਖੁੱਲ੍ਹਦਿਲੀ ਤੇ ਦਿਆਲੂਪਣ –

ਸਜਣਸੇਈ ਨਾਲਿ ਮੈ ਚਲਦਿਆ ਨਾਲਿ ਚਲੰਨਿ।।
ਜਿਥੈ ਲੇਖਾ ਮੰਗੀਐ ਤਿਥੈ ਖੜੇ ਦਿਸੰਨਿ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 729)

ਪੁੰਨ ਦਾਨ ਅਨੇਕ ਨਾਵਣ ਕਿਉ ਅੰਤਰ ਮਲੁ ਧੋਵੈ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 243)

ਮਿਠਾਸ–

ਜੇ ਸਉ ਵਰ੍ਹਿਆ ਮਿਠਾ ਖਾਜੈ ਭੀ ਫਿਰਿ ਕਉੜਾ ਖਾਇ ।।
ਮਿਠਾ ਖਾਧਾ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵੈ ਕਉੜਤਣੁ ਧਾਇ ਜਾਇ ।।
ਮਿਠਾ ਕਉੜਾ ਦੇਵੈ ਰੋਗ ਨਾਨਕ ਅੰਤਿ ਵਿਗੁਤੇ ਭੋਗ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 1243)

ਮਿਠਤੁ ਨੀਵੀ ਨਾਨਕਾ ਗੁਣ ਚੰਗਿਆਈਆ ਤਤੁ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 470)

ਗ੍ਰਿਹਸਤ ਜੀਵਨ ਦੀ ਪਾਲਣਾ –

ਸਤਿਗੁਰ ਕੀ ਐਸੀ ਵਡਿਆਈ ।।
ਪੁਤ੍ਰ ਕਲਤ੍ਰ ਵਿਚੇ ਗਤਿ ਪਾਈ ।।

(ਸ.ਗੁ.ਗ੍ਰੰ.ਸ., ਪੰਨਾ 661)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਉਦਾਸੀਆਂ ਵਿਚ ਜਿਸ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਜੋ ਵੀ ਉਣਤਾਈ ਸੀ ਉਸ ਨੂੰ ਦੱਸਿਆ, ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਹਿੰਦੂਆਂ ਵਿਚ ਸੀ ਭਾਵੇਂ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਵਿਚ, ਭਾਵੇਂ ਭਾਰਤੀਆਂ ਵਿਚ ਸੀ ਭਾਵੇਂ ਦੂਸਰੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਵਿਚ ਸੀ ਭਾਵੇਂ ਕਾਜ਼ੀਆਂ ਵਿਚ, ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਉੱਚੀਆਂ ਜਾਤੀਆਂ ਵਿਚ ਸੀ ਭਾਵੇਂ ਨੀਵੀਆਂ ਜਾਤੀਆਂ ਵਿਚ, ਭਾਵੇਂ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਵਿਚ ਸੀ ਭਾਵੇਂ ਰਾਜਿਆਂ ਵਿਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਉਸਦਾ ਖੰਡਨ ਮੰਡਨ ਕਰਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਚੰਗੀਆਂ ਕੀਮਤਾਂ ਵਿਕਸਤ ਕਰਨ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਆਪਣੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਏਨੇ ਘਟ ਵਸੀਲੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਵੀ ਜਿਸ ਵਿਚ ਨਾ ਰੇਲ ਸੀ ਨਾ ਮੋਟਰਾਂ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਪੱਕੀਆਂ ਸੜਕਾਂ, ਨਾ ਸੰਚਾਰ ਦੇ ਸਾਧਨ ਹਨ ਨਾ ਟਰਾਂਸਪੋਰਟ ਦੇ ਸਾਧਨ ਫਿਰ ਵੀ ਲੱਖਾਂ ਮੀਲ ਦੇਸ-ਦੇਸਾਂਤਰਾਂ ਦਾ ਰਟਨ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਵਿਕਸਤ ਕੀਤਾ।ਅਸਲ 'ਚ ਇਸ ਪਿੱਛੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਮਨੋਰਥ ਇਹ ਵੀ ਸੀ ਕਿ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੰਸਾਰਕ ਰਟਨ ਕਰਕੇ ਹੀ ਇਨਸਾਨੀ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨੂੰ ਸਪੱਸ਼ਟ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਨੁੱਖ ਤੰਗ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦੇ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਘੇਰੇ ਵਿਚ ਚਲਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਇਹ ਵੇਖਣ ਵਿਚ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਪੱਛਮੀ ਵਿਕਸਿਤ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਦੁਨੀਆਂ ਨੂੰ ਘੁੰਮ ਕੇ ਦੇਖਣ ਦਾ ਚਾਅ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਮੰਨਦੇ ਹਨ ਕਿ ਦੂਸਰੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦਾ ਜਿੰਨਾਂ ਵੀ ਭਰਮਣ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ ਉਨਾਂ ਹੀ ਵਿਅਕਤੀ ਮਾਨਸਿਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਵੱਧ ਵਿਕਸਿਤ ਹੋਵੇਗਾ। ਵਿਕਸਿਤ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਆਪਸ ਵਿਚ ਗੱਲਬਾਤ ਕਰਨਾ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਵਧੇਰੇ ਵਿਕਸਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਇਸ ਪੱਖ ਤੋਂ ਕਿੰਨੇ ਵਿਕਸਿਤ ਹੋਏ ਹੋਣੇ ਇਸ ਦੀ ਮਿਸਾਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦੇ ਅਧਿਐਨ ਤੋਂ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਲਗਾਈ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਉਪਰੋਕਤ ਵਿਚਾਰ ਚਰਚਾ ਉਪਰੰਤ ਇਹ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਵਰਤਮਾਨ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਜਿੱਥੇ ਸਮੁੱਚੇ ਵਿਸ਼ਵ 'ਚ ਹਰ ਪਾਸੇ ਵੰਨ-ਸੁਵੰਨੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਦਾ ਸੰਕਟ ਹੈ ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਆਪਸੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਤੇ ਏਕਤਾ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਭਾਵੇਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਨਾਅਰੇ ਹੇਠ ਰੋਟੀ, ਕਪੜੇ ਤੇ ਮਕਾਨ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਭਾਵੇਂ ਭਾਸ਼ਾਈ ਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਬਦਲਾਓ, ਭਿੰਨਤਾ ਤੇ ਰਲਗੱਡਤਾ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਆਰਥਕ ਸੰਕਟ ਕਾਰਣ ਵੱਧ ਰਹੀਆਂ ਕੀਮਤਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਕੰਪਿਊਟਰ, ਵਿਗਿਆਨ ਤੇ ਸੂਚਨਾ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਦੇ ਯੁੱਗ 'ਚ ਢਹਿ ਢੇਰੀ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਮਨੁੱਖੀ ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਸਮੁੱਚੇ ਵਿਸ਼ਵ 'ਚ ਮੈਡੀਕਲ ਖੋਜਾਂ-ਕਾਢਾਂ ਦੀ ਬਹੁਤਾਤ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੱਧ ਰਹੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਬਿਮਾਰੀਆਂ ਦੇ ਪ੍ਰਕੋਪ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਪਾਣੀ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਵਿਸ਼ਵ ਪਰਿਆਵਰਣ ਸਮੱਸਿਆ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਅਤਿਵਾਦ ਦੀ ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਭਿੰਨ-ਭਿੰਨ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪਰਮਾਣੂ ਹਥਿਆਰਾਂ ਨਾਲ ਲੈਸ ਕਰਕੇ ਨਿਜੀ ਸੁਰੱਖਿਆ ਤੇ ਦੂਸਰੇ ਦੇਸ਼ ਨੂੰ ਡਰਾਉਣ ਤੇ ਦਬਾਉਣ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਸੁਨਾਮੀ, ਹੜਾਂ, ਸੁੱਕੇ ਤੇ ਭੂਕੰਪ ਕਾਰਣ ਹੋਏ ਜਾਨ-ਮਾਲ ਦੇ ਨੁਕਸਾਨ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ, ਕਰਜ਼ੇ ਹੇਠ ਦੱਬੇ ਕਿਸਾਨਾਂ ਦੀ ਖੁਦਕੁਸ਼ੀ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੀ ਗੱਲ ਹੋਵੇ ਆਦਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਭ ਵਿਚੋਂ ਨਿਕਲਣ ਲਈ ਆਤਮਕ ਬਲ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਤੇ ਚਿੰਤਨ ਵਿਚੋਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਕੌਮਾਂਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਵਸਤੂ ਅਤੇ ਰੂਪ ਦੋਹਾਂ ਪੱਖਾਂ ਤੋਂ ਵਿਸ਼ਵ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਵੱਡਮੁੱਲੀ ਦੇਣ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਸੰਵਾਦ-ਜੁਗਤ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਬਾਣੀਆਂ ਦੇ ਸਮੁੱਚੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚੋਂ ਵੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੀ ਸੰਵਾਦ ਕਲਾ ਦੀ ਜੁਗਤ ਤੋਂ ਇਹ ਸਹਿਜੇ ਅੰਦਾਜਾ ਲਗਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਮਾਜਕ ਕਲਿਆਣ ਅਤੇ ਪਰਉਪਕਾਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ/ਅਸੂਲਾਂ ਨੂੰ ਸਿਰਫ਼ ਸਿਧਾਂਤਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਹੀ ਨਹੀਂ ਚਿਤਰਿਆ ਸਗੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵਿਹਾਰਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਵੀ ਅਮਲ 'ਚ ਲਿਆਂਦਾ ਹੈ। ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਇਹ ਹੋਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਚਿਰ-ਸਥਾਈ ਸਮਾਜ-ਕਲਿਆਣ ਦੇ ਮਹੱਤਵ ਨੂੰ ਸਮਝਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰ ਕੌਮਾਤਰੀ ਪੱਧਰ ਤੇ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ।

ਵਾਤਾਵਰਨ ਚਿੰਤਨ: ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਮਹੱਤਵ

ਹਰਮੇਲ ਸਿੰਘ*

ਇਕੀਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਕਸਿਤ-ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਅਤੇ ਸੂਖਮ ਤਕਨੀਕੀ ਮੁਹਾਰਤ ਦੀ ਸਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸਦੀ ਦੀਆਂ ਮੁੱਖ ਚੁਣੌਤੀਆਂ, ਮਾਰੂ ਹਥਿਆਰਾਂ ਨਾਲ ਵਧ ਰਿਹਾ ਜੰਗ ਦਾ ਖਤਰਾ, ਆਰਥਿਕ ਅਸਮਾਨਤਾ ਦਾ ਸਿਖਰਲੀ ਹੱਦ ਤੱਕ ਵਧਣਾ ਅਤੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦਾ ਸੰਕਟ ਹਨ।ਇਹਨਾਂ ਤਿੰਨੋਂ ਸੰਕਟਾਂ ਦੀ ਆਪਸ ਵਿੱਚ ਬੁਨਿਆਦੀ ਸਾਂਝ ਪੱਛਮੀ ਜੀਵਨ-ਜਾਚ ਦਾ ਲਕੀਰੀ ਵਿਕਾਸ ਵਿੱਚ ਯਕੀਨ ਹੈ। ਹੁਣ ਇਹ ਪੱਛਮੀ ਜੀਵਨ-ਜਾਚ ਵਿਸ਼ਵ ਪੱਧਰ ਉੱਪਰ ਫੈਲ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਇਸ ਜੀਵਨ- ਜਾਚ ਨਾਲ ਜੁੜੀਆਂ ਚੁਣੌਤੀਆਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਪੂਰੇ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀ-ਮੰਡਲ ਲਈ ਹੋਂਦਮੂਲਕ ਸੰਕਟ ਪੈਦਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਯੂਵਲ ਨੋਅਹ ਹਰਾਰੀ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਦਹਾਕਿਆਂ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖਤਾ ਪਰਮਾਣੂ ਯੁੱਧ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਜਿਸ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੇ ਹੋਂਦਮੂਲਕ ਖਤਰੇ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰੇਗੀ, ਉਹ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦਾ ਪਤਨ ਹੋਵੇਗਾ। ਮਨੁੱਖ ਗਲੋਬਲ ਜੀਵ-ਮੰਡਲ ਨੂੰ ਕਈ ਪੱਖਾਂ ਤੋਂ ਅਸਥਿਰ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਵਾਤਾਵਰਨ ਵਿਚੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਤੋਂ ਜ਼ਿਆਦਾ ਸਰੋਤ ਲੈ ਰਹੇ ਹਾਂ ਅਤੇ ਇਸ ਵਿੱਚ ਵੱਡੀ ਮਾਤਰਾ ਵਿੱਚ ਕੂੜਾ ਅਤੇ ਜ਼ਹਿਰਾਂ ਭਰ ਕੇ ਇਸ ਦੀ ਮਿੱਟੀ, ਪਾਣੀ ਅਤੇ ਹਵਾ ਮੰਡਲ ਦੀ ਬਣਤਰ ਨੂੰ ਵਿਗਾੜ ਰਹੇ ਹਾਂ। ਸਭ ਤੋਂ ਡਰਾਉਣੀ ਗੱਲ ਮੌਸਮ ਤਬਦੀਲੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਅਨੁਕੂਲ ਢਲਣਾ ਔਖਾ ਹੋ ਜਾਵੇਗਾ। ਜੇਕਰ ਅਸੀਂ ਗਰੀਨ ਹਾਊਸ ਪ੍ਰਭਾਵ ਵਾਲੀਆਂ ਗੈਸਾਂ ਨੂੰ ਅਗਲੇ ਵੀਹ ਸਾਲਾਂ ਚ ਨਾਟਕੀ ਢੰਗ ਨਾਲ ਘੱਟ ਨਾ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਗਲੋਬਲ ਔਸਤ ਤਾਪਮਾਨ 2 ਡਿਗਰੀ ਸੈਲਸੀਅਸ ਹੋਰ ਵਧ ਜਾਵੇਗਾ, ਜਿਸ ਨਾਲ ਮਾਰੂਥਲ ਵਧਣਗੇ, ਗਲੇਸ਼ੀਅਰ ਖੁਰ ਜਾਣਗੇ, ਸਮੁੰਦਰਾਂ ਦੇ ਤਲ ਦਾ ਪੱਧਰ ਵਧ ਜਾਵੇਗਾ, ਹਰੀਕੇਨ ਅਤੇ ਤੂਫ਼ਾਨਾਂ ਦਾ ਖਤਰਾ ਹੋਰ ਵਧ ਜਾਵੇਗਾ। ਇਹਨਾਂ ਆਫ਼ਤਾਂ ਨਾਲ ਖੇਤੀਬਾੜੀ ਉਤਪਾਦਨ ਬੁਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋਵੇਗਾ, ਕਈ ਖੇਤਰ ਮਨੁੱਖਾਂ ਲਈ ਰਹਿਣਯੋਗ ਨਹੀਂ ਰਹਿਣਗੇ, ਲੱਖਾਂ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਪਲਾਇਨ ਕਰਨਾ ਪਵੇਗਾ।[1] ਮੌਸਮ ਤਬਦੀਲੀ ਕਾਰਨ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਹੋਰਨਾ ਜੀਵਾਂ ਦੀ ਸਿਹਤ ਉੱਪਰ ਮਾਰੂ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪੈ ਰਹੇ ਹਨ। ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਜੀਵ-ਜੰਤੂਆਂ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਜਾਤੀਆਂ ਲੁਪਤ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਬਹੁਤੀਆਂ ਦੇ ਤੇਜ਼ੀ ਨਾਲ ਲੁਪਤ ਹੋਣ ਦੀ ਸੰਭਾਵਨਾ ਹੈ। ਆਲਮੀ ਤਪਸ਼ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਪੂਰੀ ਧਰਤੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਸਾਹਮਣੇ ਹੋਂਦਮੂਲਕ ਸੰਕਟ ਪੈਦਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ ਮਾਡਲ ਦੁਆਰਾ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ, ਖਪਤ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਨੇ ਧਰਤੀ ਦੇ ਸੰਸਾਧਨਾਂ ਉੱਪਰ ਦਬਾਓ ਹੋਰ ਵਧਾਅ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਕਟ ਦੇ ਮੂਲ ਵਿੱਚ ਯੂਰਪ ਵਿੱਚ ਆਈ ਗਿਆਨਕਰਨ (Enlightenment) ਦੀ ਲਹਿਰ ਨੂੰ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਚਰਚ ਦੀ ਸੱਤਾ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਕਰਵਾ ਕੇ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਰਾਹ ਤੋਰਿਆ ਸੀ। ਇਸ ਲਹਿਰ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਹੇਠ ਮਨੁੱਖ ਨੇ ਬਹੁਤ ਜ਼ਿਆਦਾ ਪਦਾਰਥਕ ਤਰੱਕੀ ਤਾਂ ਕੀਤੀ, ਪਰ ਉਹ ਮਕਾਨਕੀ ਨਿਖੇੜਵਾਦ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਗਿਆ।ਉਸ ਨੇ ਤਰਕ ਅਤੇ ਗਿਆਨ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੀ ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਜਿਹੜਾ ਰਾਹ ਚੁਣਿਆ, ਉਸ ਨਾਲ ਉਹ ਤਰਕ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨਕ ਸੱਚ ਤੋਂ ਪਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਭਾਵੁਕ ਸੰਸਾਰ ਨਾਲੋਂ ਟੁੱਟ ਗਿਆ। ਇਸ ਤਰਕ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ ਪਿੱਛੇ ਨਿਊਟਨ ਅਤੇ ਡੇਕਾਰਟ ਆਦਿ ਦੇ ਗਣਿਤ ਅਤੇ ਭੌਤਿਕ ਵਿਗਿਆਨ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਸਨ, ਜਿੰਨਾਂ ਦਾ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਸੀ, ਭੌਤਿਕ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਪਹੁੰਚ ਦਾ ਯੂਰਪੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀਵਾਦ ਅਤੇ ਜੀਵਨ ਫਲਸਫੇ ਉੱਪਰ ਡੂੰਘਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਿਆ।[2] ਕੁਝ ਵਿਦਵਾਨ ਤਾਂ ਇਸ ਤੋਂ ਵੀ ਪਿੱਛੇ ਪੱਛਮੀ ਫਲਸਫੇ ਅਤੇ ਧਰਮ ਵਿੱਚ ਮਨ/ਸਰੀਰ ਦੀ ਦਵੈਤ ਨੂੰ ਮਾਨਵ-ਕੇਂਦਰਤਾ (Anthropocentrism) ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਨੂੰ ਅਧੀਨ ਕਰਨ ਅਤੇ ਲੁੱਟਣ ਦਾ ਕਾਰਨ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਨਿਖੇੜਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ ਮਾਡਲ

* ਅਸਿਸਟੈਂਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਸਕੂਲ ਆਫ ਓਪਨ ਲਰਨਿੰਗ, ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ।

ਨੇ ਪੱਛਮੀ ਗੋਰੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਮਾਡਲ ਵਜੋਂ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਕੇ ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਨਸਲੀ ਵਿਤਕਰੇ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੱਤਾ। ਵਾਲ ਪਲੰਮਵੁਡ ਨੇ ਕਿਹਾ ਹੈ ਕਿ ਆਦਮੀ/ਔਰਤ, ਮਨੁੱਖ/ਕੁਦਰਤ, ਤਰਕ/ਭਾਵਨਾ ਦਾ ਸਿਰਫ ਵਖਰੇਵਾਂ ਹੀ ਮਨੁੱਖ-ਕੇਂਦਰਤਾ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਪੈਦਾ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ ਸਗੋਂ ਇਸ ਮਾਡਲ ਦਾ ਮਾਲਕੀ ਵਾਲਾ ਪੱਖ ਜੋ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਯੂਰਪੀ-ਅਮਰੀਕਨ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਵਖਰੇਵੇ ਤੋਂ ਅਗਾਂਹ ਵਿਰੋਧੀ ਅਤੇ ਗੋਰੇ ਪੱਛਮੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਵਧੀਆ ਹੋਣ ਦੀ ਸੋਚ ਵਿੱਚੋਂ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਧਰੁਵੀਕਰਨ ਅਤੇ ਪੱਕੀ ਵੰਡ ਅਕਸਰ ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਆਪਸੀ ਸਹੀ ਸੰਬੰਧਾਂ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਨੇ ਮਨ/ਸਰੀਰ ਦੀ ਦਵੈਤ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਪੱਛਮੀ ਦਰਸ਼ਨ ਮਨ ਨਾਲ ਤਰਕ ਨੂੰ ਜੋੜਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਦਰਸ਼ਨ ਵਿੱਚ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖ ਨਾਲ ਜੋੜ ਕੇ, ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਪਸ਼ੂਆ ਨਾਲੋਂ ਬੇਹਤਰ ਹੋਣ ਦਾ ਤਰਕ ਸਿਰਜਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਪਸ਼ੂਆਂ ਨੂੰ ਮਨ ਵਿਹੂਣੇ ਸਰੀਰ ਹੀ ਸਮਝਿਆ ਗਿਆ। ਉਸਨੇ ਤਰਕ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਵਿਚਕਾਰ ਲਿੰਗ ਆਧਾਰਿਤ ਦਵੈਤ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਉਹ ਵਿਗਿਆਨ ਜਾਂ ਤਰਕ ਨੂੰ ਰੱਦ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਪਰ ਉਹ ਉਹਨਾਂ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕਰਦੀ ਹੈ, ਜੋ ਕੁਦਰਤ ਤੇ ਤਰਕ ਨੂੰ ਇੱਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਵਿਰੋਧ ਵਿੱਚ ਖੜ੍ਹਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦੀਆ ਸਮਾਨਤਾਵਾਂ ਅਤੇ ਵਖਰੇਵਿਆਂ ਦੀ ਪਛਾਣ ਦੀ ਹਮਾਇਤੀ ਹੈ। ਤਰਕ ਨੂੰ ਇਸ ਦੀ ਮਰਦਾਨਗੀ ਵਾਲੀ ਪਛਾਣ ਤੋਂ ਬਚਾ ਕੇ ਅਸੀਂ ਧਰਤੀ ਦੇ ਜੀਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਸਾਨੂੰ ਦੂਜਿਆਂ ਦੇ ਦੂਜੇਪਣ ਅਤੇ ਸਾਡੀ ਧਰਤੀ ਨਾਲ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਸਮਝਣਾ ਚਾਹੀਂਦਾ ਹੈ।[3] ਵਾਈਟ ਲਿਨ ਅਪਣੇ ਇਕ ਲੇਖ (Historical Roots of Ecological Crisis) ਵਿਚ ਪੱਛਮੀ ਮਨੁੱਖ-ਕੇਂਦਰਿਤ ਈਸਾਈਅਤ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਆਪੀ ਈਕੋਲਾਜੀਕਲ ਸੰਕਟ ਦੀ ਜੜ੍ਹ ਮੰਨਦਾ ਹੈ। ਉਸਦਾ ਵਿਚਾਰ ਹੈ ਕਿ ਪੱਛਮੀ ਇਸਾਈ ਮਤ ਅਤੇ ਯਹੂਦੀ ਮਤ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਦਵੈਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਉੱਤਮ ਨਸਲ ਮੰਨਦੇ ਹੋਏ ਉਸਨੂੰ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਲੁੱਟ ਕਰਨ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਅਧਿਕਾਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ ਸਾਇੰਸ ਅਤੇ ਤਕਨੀਕੀ ਵਿਕਾਸ ਸਾਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਚਿਰ ਵਾਤਾਵਰਨ ਸੰਕਟ ਵਿੱਚੋਂ ਨਹੀਂ ਕੱਢ ਸਕਦਾ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਚਿਰ ਅਸੀਂ ਨਵਾਂ ਧਰਮਿਕ ਫਲਸਫਾ ਨਹੀਂ ਅਪਣਾਉਂਦੇ ਜਾਂ ਪੁਰਾਣੇ ਧਰਮ ਬਾਰੇ ਨਵਾਂ ਨਹੀਂ ਸੋਚਦੇ। ਈਸਾਈਅਤ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਉਹ ਜ਼ੈਨ-ਬੁੱਧਵਾਦ ਵੱਲ ਦੇਖਦਾ ਹੈ, ਜੋ ਉਸ ਮੁਤਾਬਕ ਸਭ ਧਰਮਾਂ ਤੋਂ ਵੱਧ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਪੱਖੀ ਪਹੁੰਚ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਉਸਦਾ ਮੰਨਣਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਪੂਰਬੀ ਬਦਲ ਨੂੰ ਪੱਛਮ ਲਈ ਅਪਣਾਉਣਾ ਵਿਵਹਾਰਕ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ। ਇਸ ਲਈ ਉਹ ਸੇਂਟ ਫਰਾਂਸਿਸ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਪੱਛਮ ਲਈ ਢੁਕਵਾਂ ਮੰਨਦਾ ਹੈ, ਜਿਸਨੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਬਾਦਸ਼ਾਹੀ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਰੱਬ ਦੇ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ ਸਾਰੇ ਜੀਵਾਂ ਦੇ ਲੋਕਤੰਤਰ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਸੀ।[4]

ਪੱਛਮੀ ਚਿੰਤਕਾਂ ਨੇ 1960 ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦੇ ਵਿਗਿਆਨ ਅਤੇ ਤਰਕ ਰਾਹੀਂ, ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਮੁਕਤੀ ਕਰਨ ਦੇ ਮਹਾਂਬਿਰਤਾਂਤ ਉੱਪਰ ਸਵਾਲ ਖੜ੍ਹੇ ਕਰਨੇ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤੇ ਸਨ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਲਹਿਰ ਅਤੇ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਅੰਦੋਲਨ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੇ ਮੁੱਦੇ ਉੱਪਰ ਵਾਤਾਵਰਨ (ਗਰੀਨ) ਲਹਿਰ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਗਈ ਸੀ। ਇਸ ਲਹਿਰ ਦਾ ਮੁੱਢ ਰਾਚੇਲ ਕਾਰਸਨ ਦੀ ਸਾਹਿਤਕ ਸ਼ੈਲੀ ਚ ਲਿਖੀ ਪੁਸਤਕ (Silent Spring) ਨਾਲ ਅਮਰੀਕਾ ਵਿਚ ਬੱਝਿਆ ਸੀ। ਉਸ ਨੇ ਅਮਰੀਕਾ ਵਿਚ ਖੇਤੀਬਾੜੀ ਵਿਚ ਵਰਤੇ ਜਾਣ ਵਾਲੇ ਕੀਟਨਾਸ਼ਕਾਂ ਦੇ ਮਨੁੱਖੀ ਸਿਹਤ ਅਤੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਤੇ ਪੈਣ ਵਾਲੇ ਮਾੜੇ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਇਸ ਪੁਸਤਕ ਨੇ ਕੀਟਨਾਸ਼ਕ ਜ਼ਹਿਰ ਬਣਾਉਣ ਵਾਲੀਆਂ ਕੰਪਨੀਆਂ ਅਤੇ ਸਰਕਾਰ ਵਿਰੁੱਧ ਲੋਕ ਲਹਿਰ ਖੜ੍ਹੀ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ।[5] ਲੀਓ ਮਾਰਕਸ ਨੇ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ (The Machine in Garden) ਵਿੱਚ ਅਮਰੀਕੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਸ਼ੀਨਾਂ ਦੀ ਵਧਦੀ ਵਰਤੋਂ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਕੁਦਰਤ ਨਾਲੋਂ ਟੁੱਟਣ ਕਾਰਨ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਪੈਦਾ ਹੋਏ ਤਣਾਅ ਬਾਰੇ ਲਿਖਿਆ ਹੈ। ਉਸ ਨੇ ਅਮਰੀਕੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਸ਼ੀਨਾਂ ਦੇ ਵਧਦੇ ਹੋਏ ਸੱਤਾਵਾਦੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਉਹਨੇ ਪ੍ਰਸਥਿਤਿਕੀ ਜਟਿਲਤਾ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖ ਦੁਆਰਾ ਇਸਨੂੰ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕੰਟਰੋਲ ਨਾ ਕਰ ਸਕਣ ਦੀ

ਅਸੰਭਵਤਾ ਦੇ ਸੱਚ ਅਤੇ ਅਮਰੀਕੀ ਕਲਚਰ ਵਿੱਚ ਇਸ ਨੂੰ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਨ ਦੇ ਹੱਠ ਨੂੰ ਉੱਥੋਂ ਦੇ ਕਲਚਰ ਦਾ ਮੂਲ ਤਣਾਵ (Root Conflict) ਦੱਸਿਆ ਹੈ।[6] ਵਾਤਾਵਰਨ ਲਹਿਰ ਦੀ ਪੱਛਮੀ ਮੀਡੀਆ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਕਾਫੀ ਚਰਚਾ ਹੋਈ ਹੈ। ਪਰ ਸਾਹਿਤ ਚਿੰਤਨ ਵਿੱਚ ਇਸ ਬਾਰੇ ਚਰਚਾ 1990 ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਹੀ ਪ੍ਰਮੁੱਖਤਾ ਨਾਲ ਹੋਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ। 1992 ਈਸਵੀ ਵਿੱਚ ਪੱਛਮੀ ਸਾਹਿਤ ਐਸੋਸ਼ੀਏਸ਼ਨ ਦੀ ਮੀਟਿੰਗ ਵਿਚ ਐਜ਼ਲੇ (Association for the study of Literature and Environment) (ASLE) ਨਾਮ ਦੀ ਸੰਸਥਾ, ਸਕੌਟ ਸਲੋਵਿਕ ਦੀ ਪ੍ਰਧਾਨਗੀ ਹੇਠ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੇ ਆਪਸੀ ਸਬੰਧਾਂ ਦਾ ਅਧਿਐਨ ਕਰਨ ਦੇ ਮਕਸਦ ਨਾਲ ਹੋਂਦ ਵਿਚ ਆਈ। 1993 ਈਸਵੀ ਵਿਚ ਪੈਤਰਿਕ ਮਰਫ਼ੀ ਨੇ (Interdisplinary Studies in Literature and Environment (ISLE) ਨਾਮ ਦਾ ਖੋਜ-ਜਨਰਲ ਇਸ ਕਾਰਜ ਲਈ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰਕੇ, ਇਸ ਕਾਰਜ ਨੂੰ ਵਿਧੀਵਤ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੰਗਠਿਤ ਕੀਤਾ। ਇਸ ਵਿੱਚ ਵਾਤਾਵਰਨ, ਸਾਹਿਤ ਸਿਧਾਂਤ, ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਸਮਝ, ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਦਵੈਤ ਆਦਿ ਮਸਲੇ ਵਿਚਾਰੇ ਜਾਣੇ ਆਰੰਭ ਹੋਏ। ਵਾਤਾਵਰਨ ਚਿੰਤਕਾਂ ਨੇ ਅਮਰੀਕਾ ਵਿਚ ਕੁਦਰਤ ਬਾਰੇ ਲਿਖੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ, ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਲਿਖਤਾਂ ਅਤੇ ਰੋਮਾਂਚਿਕ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਅਧਿਐਨ ਵਸਤੂ ਬਣਾਉਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ। ਉਦਯੋਗਿਕ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਨਾਕਾਰਾਤਮਕ ਪ੍ਰਭਾਵਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਵਜੋਂ ਗੈਰ-ਉਦਯੋਗਿਕ ਮੂਲ ਅਮਰੀਕਨ ਕਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦੇ ਅਧਿਐਨ ਵੀ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਏ। ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਗੋਰੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਉਸਾਰੇ ਉਦਯੋਗਿਕ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਪ੍ਰਵਚਨ ਸਾਹਮਣੇ ਆਏ। ਵਾਤਾਵਰਨ ਨਿਆਂ ਲਹਿਰ (Environment Justice Movement) ਨੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ ਮਾਡਲ ਦੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਅਤੇ ਗਰੀਬ ਵਿਰੋਧੀ ਹੋਣ ਦੇ ਪੱਖਾਂ ਨੂੰ ਉਭਾਰਿਆ। ਉਹਨਾਂ ਨਸਲ, ਲਿੰਗ, ਜਮਾਤ ਅਤੇ ਨਵ-ਬਸਤੀਵਾਦ ਦੇ ਮਸਲਿਆਂ ਨੂੰ ਵਾਤਾਵਰਨ ਚਿੰਤਨ ਰਾਹੀਂ ਸਮਝਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ।[7] ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ 1990 ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਸਾਹਿਤ ਅਧਿਐਨ ਦੀ ਇੱਕ ਨਵੀਂ ਅਧਿਐਨ ਵਿਧੀ ਹੋਂਦ ਵਿੱਚ ਆਈ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ (Ecocriticism) ਸਾਹਿਤ ਅਧਿਐਨ ਦੀ ਉਹ ਵਿਧੀ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਪੜਚੋਲ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਈਕੋ ਸ਼ਬਦ ਈਕੋਲਾਜੀ (Ecology) ਤੋਂ ਲਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਜਰਮਨੀ ਦੇ ਜੀਵ ਵਿਗਿਆਨੀ ਅਰਨਸਟ ਹੈਕਅਲ (Ernst Haeckel) ਨੇ ਯੂਨਾਨੀ ਸ਼ਬਦ (Oikos) ਤੋਂ ਜਿਸਦਾ ਅਰਥ ਘਰ, ਰਹਿਣ ਦੀ ਥਾਂ ਜਾਂ ਅਵਾਸ ਸੀ, ਤੋਂ ਜਰਮਨ ਸੰਕਲਪ (Okologie) ਘੜਿਆ ਗਿਆ ਸੀ, ਜਿਸ ਲਈ ਅੰਗਰੇਜੀ ਵਿਚ (Ecology) ਸੰਕਲਪ ਵਰਤਿਆ ਜਾਣ ਲੱਗ ਗਿਆ।[8] ਜਦੋਂ ਪਰਸਥਿਤੀ ਵਿਗਿਆਨ (Ecology) ਦੀ ਆਪਸੀ ਨਿਰਭਰਤਾ ਅਤੇ ਅੰਤਰ-ਸਬੰਧਤਾ ਦੀ ਸਮਝ ਨੂੰ ਸਹਿਤ ਆਲੋਚਨਾ ਵਿਚ ਵਰਤਿਆ ਗਿਆ ਤਾਂ ਇਸ ਨੂੰ (Ecocriticism) ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸਾਹਿਤ ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਇਸ ਸੰਕਲਪ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਵਰਤੋਂ 1978 ਈਸਵੀ ਵਿਚ ਵਿਲੀਅਮ ਰਿਉਕਰਟ ਨੇ ਆਪਣੇ ਇਕ ਨਿਬੰਧ (Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism) ਵਿਚ ਕੀਤੀ ਸੀ। ਉਹ ਪਰਸਥਿਤੀ ਵਿਗਿਆਨ (Ecology) ਦੇ ਸੰਕਲਪਾਂ ਰਾਹੀਂ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿਚ ਇਸ ਸੰਕਲਪ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਸੀ, ਹੁਣ ਇਸ ਸੰਕਲਪ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਵਾਤਾਵਰਣ ਦੇ ਆਪਸੀ ਸਬੰਧਾਂ ਦੇ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਅਧਿਐਨ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿੱਚ ਹੋਣ ਲੱਗ ਪਈ ਹੈ।[9] ਸ਼ੁਰੂਆਤੀ ਦੌਰ ਵਿਚ ਈਕੋ-ਆਲੋਚਕਾਂ ਨੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਅਧਿਐਨ, ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਅਤੇ ਉੱਤਰ-ਸੰਰਚਨਾਵਾਦ ਆਦਿ ਸਾਹਿਤ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕੀਤਾ। ਇਹਨਾਂ ਸਿਧਾਂਤਕਾਰਾਂ ਨੇ ਵੀ ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ ਨੂੰ ਇਕ ਫੈਸ਼ਨ ਕਹਿ ਕੇ ਰੱਦ ਕਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ। ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਅਧਿਐਨ ਦੇ ਸਮਰਥਕ ਵਿਦਵਾਨ ਵਾਤਾਵਰਨ ਸੰਕਟ ਨੂੰ ਉੱਤਰ-ਆਧੁਨਿਕਵਾਦੀਆਂ ਦਾ ਸਿਰਜਿਆ ਭਰਮ ਸਮਝਦੇ ਸਨ। ਉੱਤਰ-ਸੰਰਚਨਾਵਾਦੀ ਹਰ ਵਰਤਾਰੇ ਨੂੰ ਭਾਸ਼ਾਈ ਘਾੜਤ ਮੰਨ

ਕੇ ਅਸਲ ਦੀ ਕਿਸੇ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਹੋਂਦ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹਨ। ਸ਼ੁਰੂ ਵਿੱਚ ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤ ਸਿਧਾਂਤ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀਕਰਮ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਦੇ ਯਤਨ ਕੀਤੇ ਗਏ।[10]

ਪਰ ਹੁਣ ਈਕੋ-ਆਲੋਚਨਾ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਪੱਖ ਉੱਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਸੂਈਐਲਨ ਕੈਮਪਬੈਲ ਨੇ ਆਪਣੇ ਲੇਖ (The Land And The Language of Desire) ਵਿਚ ਉੱਤਰ ਸੰਰਚਨਾਵਾਦ ਅਤੇ ਗਹਿਨ ਈਕੋਲਾਜੀ ਦੇ ਸਾਂਝੇ ਤੱਤ ਪਹਿਚਾਨਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਉਹ ਦੋਵਾਂ ਨੂੰ ਇਤਿਹਾਸਕ ਅਤੇ ਸਮਕਾਲੀ ਮੰਨਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਮੁਤਾਬਕ ਪਹਿਲੀ ਸਾਂਝ ਤਾਂ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਦੋਵੇਂ ਪੱਛਮੀ ਮਾਨਵਵਾਦ (ਮਨੁੱਖ-ਕੇਂਦਰਿਤਤਾ) ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਦੂਸਰਾ ਉਹ ਦਰਜਾਬੰਦੀ ਪੈਦਾ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਸੰਕਲਪਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦੇ ਹਨ ਜਿਵੇਂ ਚੰਗਾ-ਬੁਰਾ, ਪਾਗਲਪਣ-ਤਾਰਕਿਕ, ਮਨੁੱਖ-ਪਸ਼ੂ, ਕੁਦਰਤ-ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਆਦਮੀ-ਔਰਤ ਆਦਿ। ਤੀਜਾ ਦੋਵੇਂ ਵਸਤੂਨਿਸ਼ਠਤਾ ਨੂੰ ਚੁਣੌਤੀ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਉਹਨਾਂ ਮੁਤਾਬਕ ਕੋਈ ਵੀ ਚੀਜ਼ ਵਸਤੂਗਤ ਹੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ। ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਪ੍ਰੋੜਤਾ ਲਈ ਉਹ ਸਾਪੇਖਤਾ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਅਤੇ ਕੁਆਂਟਮ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਵਰਤਦੇ ਹਨ। ਚੌਥਾ ਉਹ ਕਿਸੇ ਕੇਂਦਰੀ ਅਰਥ ਜਾਂ ਕੀਮਤ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਦੀ ਥਾਂ ਸਬੰਧਾਂ ਦੇ ਨੈਟਵਰਕ ਵਿਚ ਯਕੀਨ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਨੈਟਵਰਕ ਹੀ ਸਾਨੂੰ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਬਚਪਨ ਵਿਚ ਅਸੀਂ ਆਪਣੇ ਸਵੈ ਦੀ ਪਛਾਣ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਨੈਟਵਰਕ ਵਿਚ ਆਉਣ ਤੇ ਹੀ ਕਰਦੇ ਹਾਂ, ਭਾਵ ਸਵੈ ਦੇ ਪੈਦਾ ਹੋਣ ਨਾਲ ਹੀ ਅਸੀ ਮਾਂ ਨਾਲੋਂ ਸਾਂਝ ਗਵਾ ਲੈਂਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਘਾਟੇ ਵਿਚੋਂ ਹੀ ਇੱਛਾ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਥੇ ਉਸਦਾ ਮਤ ਹੈ ਕਿ ਸਾਰੀ ਇੱਛਾ ਮਨੁੱਖੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਅਸੀਂ ਸਿਰਫ਼ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਨੈਟਵਰਕ ਨਾਲ ਹੀ ਸਬੰਧ ਨਹੀਂ ਰੱਖਦੇ ਸਗੋਂ ਧਰਤੀ (Land) ਦੇ ਨੈਟਵਰਕ ਨਾਲ ਵੀ ਸਬੰਧਿਤ ਹਾਂ।[11] ਜੋਹਨ ਬੀ. ਫਾਸਟਰ ਨੇ ਅਪਣੀ ਪੁਸਤਕ ਮਾਰਕਸ'ਜ਼ ਈਕੋਲਾਜੀ (Marx's Ecology) ਵਿਚ ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਪੱਖ ਨੂੰ ਉਭਾਰਿਆ ਹੈ। ਉਸ ਮੁਤਾਬਕ ਮਾਰਕਸ ਉਸ ਵੇਲੇ ਦੇ ਸਮੁੱਚੇ ਪਰਿਦ੍ਰਿਸ਼ ਨੂੰ ਵੇਖ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਮਾਰਕਸ ਨੇ ਯੂਰਪੀ ਖੇਤੀਬਾੜੀ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਸੀ।ਮਾਲਥਸ ਦੇ ਜਨਸੰਖਿਆਂ ਦੇ ਵਾਧੇ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਅਧਾਰ ਬਣਾਕੇ ਖੇਤੀ ਉਪਜ ਵਿਚ ਵਾਧਾ ਕਰਨ ਲਈ ਹਰੀ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਦੀ ਲੋੜ ਲਈ ਖਾਦ ਦੀ ਲੋੜ ਪਈ।ਜਿਸ ਲਈ ਪੇਰੂ ਦੇ ਸਮੁੰਦਰੀ ਟਾਪੂਆਂ, ਜੋ ਜੀਵਾਂ ਦੀ ਰਹਿੰਦ ਖੂੰਹਦ ਤੋਂ ਬਣੇ ਸਨ, ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਹੋਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ। ਇਸ ਨਾਲ ਵਾਤਾਵਰਣ ਨੂੰ ਤਾਂ ਨੁਕਸਾਨ ਹੋਇਆ ਹੀ ਸਗੋਂ ਇਹਨਾਂ ਟਾਪੂਆਂ ਨੇ ਬਾਹਰੀ ਜਮੀਨਾਂ ਹਥਿਆਉਣ ਦੀ ਹੋੜ ਪੈਦਾ ਕਰ ਦਿੱਤੀ, ਜਿਸ ਨਾਲ ਬਸਤੀਵਾਦ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਪੈਦਾ ਹੋਈ। ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਉਦਯੋਗਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਕਾਰਨ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਵਿਚ ਸਸਤੀ ਮਜ਼ਦੂਰੀ ਦੀ ਲੋੜ ਪੂਰੀ ਕਰਨ ਲਈ ਖੇਤੀ ਵਿਚ ਲੱਗੀ ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤ ਨੂੰ ਕੱਢਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ। ਜਿਸ ਨਾਲ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਵਿਚ ਗੰਦੀਆ ਬਸਤੀਆਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈਆਂ, ਜਿਸ ਦਾ ਵੇਰਵਾ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਵੀ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਸ਼ਹਿਰੀਕਰਨ ਨਾਲ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਦਾ ਸੰਤੁਲਨ ਤਾਂ ਵਿਗੜਿਆ ਹੀ ਸਗੋਂ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿਚ ਵੀ ਕੁਦਰਤੀ ਖਾਦ ਦੀ ਘਾਟ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀ, ਜੋ ਪਸ਼ੂਆਂ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ ਮਲ ਤੋਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੁੰਦੀ ਸੀ।ਖੇਤੀ ਵਿਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਿਸਟਮ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਣ ਨਾਲ ਵੱਡੀ ਖੇਤੀ ਹੀ ਬਚਦੀ ਹੈ। ਛੋਟੀ ਖੇਤੀ ਨੂੰ ਵਿਧੀਵਤ ਢੰਗ ਨਾਲ ਉਜਾੜ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਲ ਮਜ਼ਦੂਰ/ਕਿਸਾਨੀ ਵਰਗ ਸਮਾਜ ਨਾਲੋਂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਟੁੱਟਦਾ ਸਗੋਂ ਕੁਦਰਤੀ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੀ ਬਜਾਇ ਸ਼ਹਿਰ ਦੇ ਆਰਜ਼ੀ ਅਤੇ ਮਕਾਨਕੀ ਵਾਤਾਵਰਨ ਵਿਚ ਚਲਾ ਜਾਣ ਕਾਰਨ ਸਾਂਝ ਵਿਹੂਣਾ ਜੀਵਨ ਜਿਉਣ ਲਈ ਮਜਬੂਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਜਿਸਨੂੰ ਮਾਰਕਸ ਸਮਾਜਿਕ ਮੈਟਾਬੋਲਿਜ਼ਮ ਵਿਚ ਦਰਾੜ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਦੇ ਰੂਪ ਸਮਝਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਕੁਦਰਤ ਨਾਲ ਸਹਿਹੋਂਦ ਵਾਲੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਸੁਤੰਤਰ ਮਜ਼ਦੂਰ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਜਦ ਕਿ ਸ਼ਹਿਰ ਵਿਚ ਆਈ ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤ ਨੂੰ ਉਹ ਅਲਹਿਦਗੀ (Alienation) ਦੀ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਈ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਪੁਸਤਕ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਵਿਚ ਫਾਸਟਰ ਮਾਰਕਸ ਦੀ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਸਮਝ ਨੂੰ ਉਸਦੀ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਸਮਝ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਮੰਨਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਮਾਰਕਸ ਦੇ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਯੂਨਾਨੀ ਵਿਦਵਾਨ ਈਪਿਕੁਰਸ

(Epicurus) ਬਾਰੇ ਲਿਖੇ ਥੀਸਿਸ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਉਸਦੀ ਸਮਝ ਨੂੰ ਅਰਸਤੂ ਦੇ ਕਾਰਨ-ਪ੍ਰਭਾਵ (Causal) ਵਾਲੀ ਫ਼ਿਲਾਸਫੀ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਲਗਾਤਾਰ ਤਬਦੀਲੀ ਵਾਲੀ ਫ਼ਿਲਾਸਫੀ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਮੰਨਦਾ ਹੈ। ਕਾਂਤ ਨੇ ਵਸਤੂ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿਚ ਹੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਸੀ। ਹੀਗਲ ਇਸਦੇ ਬਦਲ ਵਜੋਂ ਦਵੰਦਾਤਮਕਤਾ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਵਸਤੂ ਦੀ ਖੁਦਮੁਖਤਾਰ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਤਮਾ ਅਤੇ ਸਵੈ-ਅਨੁਭਵ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਉਰਬਾਮ ਨੇ ਦਵੰਦਵਾਦ ਦਾ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਮਨੁੱਖੀ ਸਾਰ ਤੱਤ (Human Essence) ਨੂੰ ਆਤਮਾ ਦੇ ਬਦਲ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਕਿਰਿਆ (ਪ੍ਰੈਕਟਿਸ) ਨਾਲ ਜੋੜਿਆ। ਪਰ ਅਜਿਹਾ ਕਰਦਿਆਂ ਵੀ ਉਹ ਆਪਣੇ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਭੌਤਿਕਵਾਦੀ ਧਾਰਨਾ ਪ੍ਰਤੀ ਸਮਰਪਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਤਿਆਗਦਾ। ਉਸਦੀ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਦਵੰਦਾਤਮਕਤਾ ਵਿਚ ਅਲਹਿਦਗੀ ਦੀ ਕੇਂਦਰੀ ਭੂਮਿਕਾ ਹੈ। ਜਦ ਪੱਛਮੀ ਮਾਰਕਸਵਾਦੀਆਂ (ਲੁਕਾਚ, ਗ੍ਰਾਮਸ਼ੀ ਆਦਿ) ਨੇ ਸਮਾਜਿਕ ਡਾਰਵਿਨਵਾਦ ਦੀ ਮਕਾਨਕੀਅਤਾ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥਵਾਦ ਦੇ ਘਟਾਓਵਾਦ ਤੋਂ ਪਾਰ ਜਾਣ ਲਈ ਇਸਦੀ ਪ੍ਰੈਕਟਿਸ ਤੇ ਜ਼ੋਰ ਦਿੰਦੇ ਸਮੇਂ ਇਸ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤੀ ਵਿਗਿਆਨ ਨਾਲੋਂ ਦੂਰ ਕਰਕੇ ਅਧਾਰ-ਉਸਾਰ ਦੇ ਸੰਕਲਪਾਂ ਰਾਹੀਂ ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਘੇਰੇ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਇਹ ਵਿਚਾਰਵਾਦੀ ਅਤੇ ਸੂਖਮ ਹੁੰਦਾ ਗਿਆ। ਇਹਨਾਂ ਵਿਚਾਰਕਾਂ ਨੇ ਏਗਲਜ਼ ਦੀ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਦਵੰਦਾਤਮਕਤਾ ਤੋਂ ਮਾਰਕਸ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਅਲੱਗ ਸਮਝਿਆ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖੀ ਕਿਰਿਆਵਾਂ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜਿਆ ਮੰਨਿਆ। ਸਿਰਫ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਦਖਲ ਵਾਲੀ ਕੁਦਰਤ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਰਹੇ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਅਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਘਾੜਤਾਂ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਹੋਰ ਗਿਆਨ ਦੀਆਂ ਵਸਤਾਂ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰ ਕੀਤਾ। ਮਾਰਕਸ ਉੱਪਰ ਜਰਮਨੀ ਦੇ ਉੱਘੇ ਖੇਤੀ ਰਸਾਇਣ ਵਿਗਿਆਨੀ ਜਸਟਿਨ ਵੌਨ ਲਾਈਵਿਗ ਅਤੇ ਚਾਰਲਿਸ ਡਾਰਵਿਨ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦਾ ਡੂੰਘਾ ਅਸਰ ਸੀ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਉਸਨੇ ਕ੍ਰਮਵਾਰ ਟਿਕਾਊ ਵਿਕਾਸ ਅਤੇ ਸਹਿ-ਉਤਪਤੀ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕੀਤੇ, ਜੋ ਇਕ ਪਾਸੇ ਰੱਬੀ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦੇ ਹਨ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਮਨੁੱਖ ਕੇਂਦਰਤਾ ਉੱਪਰ ਵੀ ਸਵਾਲ ਖੜਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਕੁਝ ਪੱਛਮੀ ਮਾਰਕਸਵਾਦੀਆਂ ਰੇਮੰਡ ਵਿਲੀਅਮਜ਼, ਈ. ਪੀ. ਥਾਮਸਨ ਦਾ ਪਦਾਰਥਕ-ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤ ਅਤੇ ਅਮਰੀਕਨ ਮਾਰਕਸੀ ਵਿਚਾਰਕਾਂ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਕੁਦਰਤ ਤੋਂ ਟੁੱਟੇ ਹੋਏ ਨਹੀਂ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜੌਹਨ ਫ਼ਾਸਟਰ ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੀ ਕੁਦਰਤ-ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਦਵੈਤ ਕਰਨ ਦੀ ਭ੍ਰਾਂਤੀ ਨੂੰ ਹੀ ਰੱਦ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ ਸਗੋਂ ਸਮਕਾਲੀ ਗਰੀਨ (ਵਾਤਾਵਰਨ) ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਪਦਾਰਥਕ ਅਤੇ ਦਵੰਦਵਾਦੀ ਅਧਾਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ।[12] ਇਸ ਚਰਚਾ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਵਾਤਾਵਰਨ ਸੰਕਟ ਦੇ ਪਰਿਪੇਖ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੰਕਟਾਂ ਨਾਲ ਨਜਿੱਠਣ ਲਈ ਪੁਰਾਣੇ ਸਿਧਾਂਤਾ ਦੀ ਨਵੀਂ ਕਿਸਮ ਦੀ ਵਿਆਖਿਆ ਸਾਹਮਣੇ ਆ ਰਹੀ ਹੈ। ਸਮਕਾਲੀ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਪਹਿਲਾਂ ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨਾਲ ਸਮਝੇ ਗਏ ਮੱਧਕਾਲੀ ਪ੍ਰਵਚਨਾਂ ਅਤੇ ਹਾਸ਼ੀਆਗਤ ਪ੍ਰਵਚਨਾਂ ਨੂੰ ਬਦਲੀਆਂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿੱਚ ਮੁੜ ਸਮਝਣ ਦੀ ਲੋੜ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਹੈ। ਇਸ ਖੋਜ ਪੇਪਰ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਵਾਤਾਵਰਨ ਸੰਕਟ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਕਾਰਨਾਂ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚੋਂ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਹੱਲ ਲਈ ਸੁਝਾਅ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇਗੀ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮੱਧਕਾਲ ਦੀਆਂ ਚੁਣੌਤੀਆਂ ਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਸਿੱਖ ਲਹਿਰ ਦੀ ਨੀਂਹ ਰੱਖੀ। ਉਹਨਾਂ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਦੇ ਰਾਜਨੀਤਕ, ਸਮਾਜਕ ਧਾਰਮਕ ਅਤੇ ਅਧਿਆਤਮਕ ਜੀਵਨ ਦਾ ਪੁਨਰ ਮੁਲਾਂਕਣ ਕੀਤਾ। ਉਹਨਾਂ ਸਮਾਜ ਦੇ ਜਾਤੀ ਭੇਦਭਾਵ, ਔਰਤ ਮਰਦ ਦੇ ਲਿੰਗਿਕ ਭੇਦਭਾਵ ਅਤੇ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪੁਜਾਰੀ ਵਰਗ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਸੱਤਾ ਦੇ ਗਠਜੋੜ ਦੇ ਅਮਾਨਵੀ ਵਿਵਹਾਰ ਦੀ ਤਿੱਖੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿੱਚ ਨਿਖੇਧੀ ਕੀਤੀ। ਉਹਨਾਂ ਬਹੁ-ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾ ਨੂੰ

ਅਪਣਾਉਣ ਦਾ ਸੱਦਾ ਦਿੱਤਾ। ਵੰਨ-ਸੁਵੰਨਤਾ ਵਾਲੇ ਲੋਕ ਸਮੂਹਾਂ ਦੀ ਸਹਿਹੋਂਦ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ ਦਿੱਤਾ। ਉਹਨਾਂ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਵਿਸ਼ਾਲ ਭੂ-ਖੰਡਾਂ ਦਾ ਭ੍ਰਮਣ ਕੀਤਾ। ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਜੀਵਨ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਵਰਗੀ ਵਿਸ਼ਾਲ ਸੀ। ਉਹਨਾਂ ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪਾਂ ਅਤੇ ਸੂਖਮ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਦਾ ਨਿੱਜੀ ਤਜ਼ਰਬਾ ਕੀਤਾ। ਇਸ ਤਜ਼ਰਬੇ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਭਾਵੁਕ ਸਾਂਝ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ।ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਕਰਤਾਰ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਨਵੇਂ ਢੰਗ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਉਹਨਾਂ ਵਲੋਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਮਨੁੱਖ ਨਾਲ ਅਤੇ ਹੋਰਨਾਂ ਜੀਵਾਂ ਨਾਲ ਰਿਸ਼ਤਾ ਵੀ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਸਾਡਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਧਿਆਨ ਖਿੱਚਦਾ ਹੈ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਵਾਤਾਵਰਨ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਭਾਰਤੀ ਧਰਮਾਂ ਅਤੇ ਦਰਸ਼ਨ ਵਿੱਚ ਮਿਲਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਚੇਤਨਾਂ ਨਾਲ ਤੁਲਨਾਕੇ ਇਸ ਦੀ ਵੱਖਰਤਾ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਨਾ ਤਾਂ ਰਿਗਵੇਦ ਵਾਂਗ ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਤੱਤਾਂ ਨੂੰ ਨਿਖੇੜ ਕੇ ਬਹੁ-ਦੇਵ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਕੇ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਹੁਕਮ ਜਾਂ ਅਦਵੈਤਵਾਦ ਨੂੰ ਭੰਗ ਕਰਦੀ ਹੈ ਨਾ ਹੀ ਸਾਂਖ ਦਰਸ਼ਨ ਵਾਂਗ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਅਤੇ ਪੁਰਸ਼ ਦੀ ਦਵੈਤ ਪੈਦਾ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਨਾ ਹੀ ਜੋਗੀਆਂ ਵਾਂਗ ਅੰਦਰੂਨੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਅਤੇ ਬਾਹਰੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦਾ ਨਿਖੇੜਾ ਕਰਕੇ, ਅੰਦਰੂਨੀ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਨੂੰ ਮਹਾਨਤਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਡਾ. ਹਰਬੰਸ ਸਿੰਘ ਨੇ ਰਿਗਵੇਦ, ਸਾਂਖ ਦਰਸ਼ਨ ਅਤੇ ਸ਼ੰਕਰਾਚਾਰੀਆ ਦੇ ਅਦਵੈਤ ਨਾਲ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਤੁਲਨਾ ਕਰਦਿਆਂ ਲਿਖਿਆ ਹੈ, ''ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਨੇ ਨਾ ਤਾਂ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਨੂੰ ਇਸਦਾ ਮਹੱਤਵ ਵਧਾਉਣ ਲਈ ਇਸ ਨੂੰ ਦੇਵ-ਰੂਪ ਮੰਨਿਆ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਇਸ ਦੇ ਮਹੱਤਵ ਨੂੰ ਅਲਪ ਕਰਨ ਲਈ ਇਸ ਨੂੰ ਮਾਇਆ ਹੀ ਆਖਿਆ, ਸਗੋਂ ਬ੍ਰਹਮ, ਜੀਵ ਆਤਮਾ ਅਤੇ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਨੂੰ ਅਦਵੈਤਵਾਦੀ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਚਿਤਵ ਕੇ ਇਸਦਾ ਯਥਾਰਥਿਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਵਿਗਿਆਨਿਕ ਅਤੇ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਮਹੱਤਵ ਦਰਸਾਇਆ।''[13] ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਏ ਮਾਇਆ ਸ਼ਬਦ ਬਾਰੇ ਡਾ. ਵਜ਼ੀਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਕੀਤਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਨੇ ਕਾਵਿਕ ਪ੍ਰਗਟਾਵੇ ਲਈ ਚਿੰਨ੍ਹ ਵਜੋਂ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਇਸ ਨੂੰ ਬੁਰਾਈ ਦੇ ਸੰਕੇਤਕ ਵਜੋਂ ਵਰਤਦੇ ਸਮੇਂ ਮੋਹ ਮਾਇਆ ਜਾਂ ਮਮਤਾ ਮਾਇਆ ਵਜੋਂ ਵੀ ਇਸਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਇਸਦਾ ਅਰਥ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਨ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਸ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਮਨੁੱਖੀ ਅਗਿਆਨਤਾ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ।[14] ਇਸ ਚਰਚਾ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਕੁਦਰਤ ਚੇਤਨਾ ਨਿਵੇਕਲੀ ਕਿਸਮ ਦੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਬ੍ਰਹਮ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਸਾਂਝ ਸਥਾਪਿਤ ਕੀਤੀ ਗਈ। ਇਸ ਸਾਂਝ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਖਾਸ ਕਿਸਮ ਦਾ ਸੰਤੁਲਨ ਬਣਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਤੁਲਨ ਵਿੱਚੋਂ ਹੀ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਸੰਤੁਲਿਤ ਵਿਕਾਸ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚਲੀ ਇਹ ਸਾਂਝ ਭਾਵੁਕ ਪੱਧਰ ਤੇ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਮਨ ਦੇ ਤਜ਼ਰਬੇ ਵਿੱਚੋਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਹੈ। ਇਸ ਸਾਂਝ ਦੀ ਨਵੀਂ ਭੌਤਿਕ ਵਿਗਿਆਨ ਦੀਆਂ ਸਥਾਪਨਾਵਾਂ ਨਾਲ ਕਾਫੀ ਵੱਡੇ ਪੱਧਰ ਤੇ ਨੇੜਤਾ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਦੋਵਾਂ ਦੀਆਂ ਪਹੁੰਚ ਵਿਧੀਆਂ ਦਾ ਕਾਫੀ ਵਖਰੇਵਾਂ ਹੈ। ਵਿਗਿਆਨਕ ਪਹੁੰਚ ਈਸ਼ਵਰ ਦੀ ਹੋਂਦ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਸਾਰੀ ਕੁਦਰਤ ਨੂੰ ਕਾਦਰ ਦੀ ਰਚਨਾ ਮੰਨਦੀ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਕੁਦਰਤ ਅਨਾਦੀ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਸਗੋਂ ਇਸਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਨੇ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਸੱਚੇ ਹੀ ਸਿਰਜਣਾ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਇਹ ਸੱਚੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਇਸ ਲਈ ਮਾਇਆ ਸ਼ਬਦ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਵੀ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਪਰ ਇਹ ਸ਼ੰਕਰਾਚਾਰੀਆ ਦੇ ਅਦਵੈਤ ਵਾਂਗ ਬ੍ਰਹਮ ਦੀ ਪਰਛਾਈ ਜਾਂ ਮਾਇਆ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਤੋਂ ਵੱਖਰੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿੱਚ ਹੋਇਆ ਹੈ।

ਕਰਿ ਕਰਿ ਵੇਖੈ ਸਿਰਜਣਹਾਰੁ। ਨਾਨਕ ਸੱਚੇ ਕੀ ਸਾਚੀ ਕਾਰ॥[15]

ਆਪੀਨੈ ਆਪੁ ਸਾਜਿਓ ਆਪੀਨੈ ਰਚਿਓ ਨਾਉ॥ਦੁਯੀ ਕੁਦਰਤਿ ਸਾਜੀਐ ਕਰਿ ਆਸੁਣ ਡਿਠੋ ਚਾਉ॥
ਸਚੀ ਤੇਰੀ ਸਿਫਤਿ ਸਚੀ ਸਾਲਾਹ॥ ਸਚੀ ਤੇਰੀ ਕੁਦਰਤਿ ਸਚੇ ਪਾਤਿਸਾਹ॥[16]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਮੁਤਾਬਕ ਰੱਬ ਸਾਰੀ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਅਤੇ ਇਸਦੇ ਜੀਵਾਂ ਨੂੰ ਪੈਦਾ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਜੀਵਨ ਦੀ ਵੰਨ-ਸੁਵੰਨਤਾ ਦੀ ਵਡਿਆਈ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਧਰਤੀ ਨੂੰ ਧਰਮ ਕਮਾਉਣ ਦਾ ਅਸਥਾਨ ਕਿਹਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਰੱਬ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਸਾਜਨਾ ਕਰਕੇ ਇਸ ਵਿੱਚ ਸਮਾਇਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਜੀਵਾਂ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਕਣ ਕਣ ਨਾਲ ਆਪਣੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾਂ ਇੱਕ ਭਾਵੁਕ ਰਿਸ਼ਤਾ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡਕ ਨਾਦ ਨੂੰ ਸਮਝਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਬ੍ਰਹਮ ਨਾਲ ਰਿਸ਼ਤਾ ਹੈ।ਇਸ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਪਛਾਣੇ ਬਿਨਾਂ ਅਸੀਂ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਖਪਤ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਮਾਡਲ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਹੀ ਕੁਦਰਤੀ ਸਾਧਨਾਂ ਦੀ ਅੰਨੇਵਾਹ ਲੁੱਟ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਸਾਨੂੰ ਕੁਦਰਤ ਵਿੱਚੋਂ ਸੱਚੇ ਰੱਬ ਦੀ ਸ਼ਨਾਖਤ ਕਰਨੀ ਪਵੇਗੀ। ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤੀ ਜੀਵਨ ਮੁਤਾਬਕ ਢਾਲ ਕੇ ਸੰਜਮ ਅਤੇ ਸਹਿਜ ਵਾਲਾ ਜੀਵਨ ਮਾਰਗ ਖੋਜਣਾ ਪਵੇਗਾ।

ਕੁਦਰਤਿ ਕਰਿ ਕੈ ਵਸਿਆ ਸੋਇ।[17]
ਨਾਨਕ ਸਚੁ ਦਾਤਾਰੁ ਸਿਨਾਖੁਤ ਕੁਦਰਤੀ।[18]

ਸਾਰੀ ਕੁਦਰਤ ਉਸ ਸੱਚੇ ਅਕਾਲਪੁਰਖ ਦੇ ਹੁਕਮ ਜਾਂ ਕਾਨੂੰਨ ਵਿਚ ਕਾਰਜਸ਼ੀਲ ਹੈ।ਜੇਕਰ ਮਨੁੱਖ ਇਸ ਕੇਂਦਰੀ ਨੁਕਤੇ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਪਛਾਣਦਾ ਤਾਂ ਉਹ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਕਾਦਰ ਨੂੰ ਮਕਾਨਕੀ ਢੰਗ ਨਾਲ ਸਮਝਦਾ ਹੋਇਆ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸਭ ਵਰਤਾਰੇ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਮੰਨ ਕੇ ਆਪਣੇ ਲਾਲਚ ਅਤੇ ਇਛਾਵਾਂ ਦਾ ਗੁਲਾਮ ਹੋ ਕੇ ਸੰਜਮ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ ਅਤੇ ਆਪ ਹੁਦਰੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਲੁੱਟ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਅੱਜ ਦਾ ਪੱਛਮੀ ਚਿੰਤਨ ਇਸ ਮਾਨਵ-ਕੇਂਦਰਤਾ ਦੇ ਬਦਲ ਵਜੋਂ ਹੀ ਕੁਦਰਤ-ਕੇਂਦਰਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਵਚਨ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਭੈਅ ਵਿਚਿ ਸੂਰਜ ਭੈ ਵਿਚਿ ਚੰਦ। ਕੋਹ ਕਰੋੜੀ ਚਲਤ ਨ ਅੰਤ॥[19]

ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ ਪੰਨੂੰ ਲਿਖਦੇ ਹਨ "ਹਰ ਕਣ ਦੈਵੀ ਹਸਤੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਹੈ। ਦੈਵੀ ਹਸਤੀ ਜੜ੍ਹ ਨਹੀਂ ਚੇਤਨ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਕੋਈ ਵੀ ਵਸਤੂ ਚੇਤਨਾਹੀਣ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦੀ। ਜੜ ਵਸਤਾਂ ਦੀ ਜੀਵਾਂ ਤੋਂ ਭਿੰਨਤਾ ਇਹ ਸਿੱਧ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਕਿ ਉਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਚੇਤਨਾ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਹੋ ਸਕਦਾ ਅਸੀਂ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਪਰਖਣ ਦੇ ਹਾਲੇ ਸਮਰਥ ਨਾ ਹੋਈਏ।"[20] ਆਇਨਸਟਾਈਨ ਨੇ ਕਿਹਾ ਸੀ ਕਿ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਬਾਰੇ ਸਭ ਤੋਂ ਸਮਝੋਂ ਬਾਹਰੀ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਸਮਝੋਂ ਬਾਹਰਾ ਹੈ। ਈ. ਐਚ ਕਾਰ ਨੇ ਕਿਹਾ ਹੈ ਕਿ ਫੋਟੋਨ ਕੋਲ ਵੀ ਚੇਤਨਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਬਾਰੇ ਵਿਗਿਆਨ ਨੂੰ ਸ਼ੱਕ ਹੈ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਮਨ ਉਸਨੂੰ ਮੰਨਦਾ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਇਸ ਦਵੈਤ ਦੇ ਭਰਮ ਵਿੱਚੋਂ ਨਿਕਲਣ ਲਈ, ਕੂੜ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣ ਲਈ ਹੁਕਮ ਪਛਾਨਣ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ।[21]

ਕਿਵ ਸਚਿਆਰਾ ਹੋਈਐ ਕਿਵ ਕੂੜੈ ਤੁਟੈ ਪਾਲਿ।
ਹੁਕਮਿ ਰਜਾਇ ਚੱਲਣਾ ਨਾਨਕ ਲਿਖਿਆ ਨਾਲਿ॥[22]

ਪੱਛਮ ਦਾ ਦਰਸ਼ਨ ਅਤੇ ਸੈਮਟਿਕ ਧਰਮ ਦਵੈਤ ਉੱਪਰ ਖੜ੍ਹੇ ਹਨ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਉਹ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰੀ ਭੂਮਿਕਾ ਵਿੱਚ ਲੈ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਉਸਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦਰਜਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਕੇ ਕੁਦਰਤ ਦਾ ਵਿਰੋਧੀ ਬਣਾ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਜਿਸ ਵਿੱਚੋਂ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਉੱਪਰ ਜਿੱਤ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਅਤੇ ਦੁਨੀਆਂ ਜਿੱਤਣ ਦੀਆਂ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਪੈਦਾ ਹੋਈਆ ਹਨ। ਜਿਸ ਵਿੱਚੋਂ ਧਰਮ ਯੁੱਧ, ਬਸਤੀਵਾਦ, ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਤਬਾਹੀ ਨੇ ਜਨਮ ਲਿਆ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਪੂਰਬੀ ਦਰਸ਼ਨ ਅਤੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਭਾਰਤੀ ਧਰਮਾਂ ਅਤੇ ਗੁਰਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਪਾ ਸਾਧਣ ਦੀ ਗੱਲ ਹੈ। ਸਬਰ ਸੰਤੋਖ ਵਾਲਾ ਜੀਵਨ ਅਪਣਾਉਣ ਦੀ ਗੱਲ ਕਹੀ ਗਈ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਦਰਜ਼ ਹੈ:

ਆਈ ਪੰਥੀ ਸਗਲ ਜਮਾਤੀ ਮਨਿ ਜੀਤੈ ਜਗੁ ਜੀਤੁ॥[23]

ਮਨ ਜਿੱਤਣ ਨਾਲ ਕਾਮ, ਕ੍ਰੋਧ, ਮੋਹ, ਲੋਭ, ਹੰਕਾਰ ਨੂੰ ਕਾਬੂ ਕਰਕੇ ਹੀ ਅਸੀਂ ਸਹਿਜ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਨਾਲ ਇੱਕਮਿਕਤਾ ਵਾਲਾ ਜੀਵਨ ਜਿਉਂ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਜੋ ਮਨੁੱਖ ਸਾਰੀ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦੇ ਜੀਵਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਸੱਜਣ ਮਿੱਤਰ ਸਮਝਦਾ ਹੈ ਅਸਲ ਵਿਚ ਉਹੀ ਆਈ ਪੰਥ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਜੇ ਆਪਣਾ ਮਨ ਜਿੱਤਿਆ ਜਾਏ, ਤਾਂ ਸਾਰਾ ਜਗਤ ਹੀ ਜਿੱਤਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕੇਵਲ ਉਸ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਨੂੰ ਪ੍ਰਣਾਮ ਕਰੋ, ਜੋ ਸਭ ਦਾ ਮੁੱਢ ਹੈ, ਜੋ ਸੁੱਧ ਸਰੂਪ ਹੈ, ਜਿਸ ਦਾ ਕੋਈ ਮੁੱਢ ਨਹੀਂ ਲੱਭ ਸਕਦਾ, ਜੋ ਨਾਸ-ਰਹਿਤ ਹੈ ਅਤੇ ਜੋ ਸਦਾ ਹੀ ਇਕੋ ਜਿਹਾ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਬ੍ਰਹਮ, ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖ ਵਿੱਚ ਦਵੈਤ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਦਰਿਆ ਵਿੱਚ ਮੱਛੀ ਵਰਗੀ ਸਥਿਤੀ ਹੈ। ਉਹ ਦਰਿਆ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਹੈ। ਉਹ ਦਰਿਆ ਤੋਂ ਵੱਖ ਨਹੀਂ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਦਰਿਆ ਨੂੰ ਕੁੱਝ ਹੱਦ ਤੱਕ ਦੀ ਜਾਣ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਪੂਰੇ ਦਰਿਆ ਨੂੰ ਜਾਨਣਾ ਅਤੇ ਸਮਝਣਾ ਅਤੇ ਕੰਟਰੋਲ ਕਰਨਾ ਉਸਦੇ ਵੱਸ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਬਹੁਤ ਹੀ ਭਾਵਪੂਰਤ ਢੰਗ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ-ਕੇਂਦਰਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਵਚਨ ਨੂੰ ਕਾਟੇ ਹੇਠ ਲੈ ਆਉਂਦੇ ਹਨ। ਇਸਦੀ ਬਜਾਇ ਕੁਦਰਤ(ਸਥੂਲ) ਅਤੇ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ (ਸੂਖਮ) ਦੀ ਕੇਂਦਰਤਾ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਦਾ ਅਹਿਸਾਸ ਕਰਵਾਉਂਦੇ ਹਨ;

ਕੁਦਰਤਿ ਕਵਣ ਕਹਾ ਵਿਚਾਰ॥[24]

ਸਾਰੇ ਜੀਵ ਜੰਤੂ ਅਕਾਲਪੁਰਖ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਹਨ। ਸਭ ਦਾ ਪਾਲਣਹਾਰ ਕਰਤਾਰ ਹੈ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਧਰਤੀ ਦੇ ਸਭ ਜੀਵ ਜੰਤੂਆਂ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਬੁਨਿਆਦੀ ਸਾਂਝ ਹੈ। ਸੈਮਟਿਕ ਧਰਮਾਂ ਵਿੱਚ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਵਿਚ ਦਰਜੇਬੰਦੀ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਮੁਤਾਬਕ ਪਹਿਲਾਂ ਰੱਬ ਨੇ ਸਵਰਗ ਬਣਾਏ, ਫਿਰ ਦੇਵਤੇ ਬਣਾਏ,ਫਿਰ ਧਰਤੀ ਬਣਾਈ, ਫਿਰ ਮਨੁੱਖ ਬਣਾਏ, ਫਿਰ ਹੋਰ ਜੀਵ ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਲਈ ਪੈਦਾ ਕੀਤੇ। ਪਰ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਅਜਿਹੀ ਦਰਜੇਬੰਦੀ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਸ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਸਾਜਨਾ ਰੱਬੀ ਹੁਕਮ ਨਾਲ ਇੱਕੋ ਵਾਰ ਵਿੱਚ ਹੋਈ ਦਰਸਾਈ ਗਈ ਹੈ।

ਕੀਤਾ ਪਸਾਓ ਏਕੋ ਕਵਾਓ।[25]

ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਦੀ ਰਚਨਾ ਇਕ ਵਾਰ ਵਿੱਚ ਰੱਬ ਦੇ ਹੁਕਮ ਨਾਲ ਹੋਈ ਮੰਨੀ ਗਈ ਹੈ ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਆਰੰਭ ਦਾ ਸਮਾਂ ਦੱਸਣਾ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸੀਮਾਂ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਸਿਰਜਣਾ ਦੇ ਆਰੰਭ ਬਾਰੇ ਅਕਾਲਪੁਰਖ ਨੂੰ ਹੀ ਪਤਾ ਹੈ। ਧਰਤੀ ਉੱਪਰ ਜੀਵਾਂ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਧਾਰਨਾ ਵਿਕਾਸਵਾਦ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਨਾਲ ਕਾਫੀ ਮੇਲ ਖਾਂਦੀ ਹੈ ਕਿ ਪਹਿਲਾਂ ਹਵਾ ਪੈਦਾ ਹੋਈ, ਫਿਰ ਪਾਣੀ ਅਤੇ ਪਾਣੀ ਤੋਂ ਹੀ ਜੀਵਨ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ।

ਸਾਚੇ ਤੇ ਪਵਨਾ ਭਇਆ ਪਵਨੈ ਤੇ ਜਲੁ ਹੋਇ॥
ਜਲ ਤੇ ਤ੍ਰਿਭਵਣੁ ਸਾਜਿਆ ਘਟਿ ਘਟਿ ਜੋਤਿ ਸਮੋਇ॥[26]

ਇਥੇ ਵੀ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਸੈਮਟਿਕ ਧਰਮਾਂ ਵਾਂਗ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਰਚਨਾ ਮੰਨ ਕੇ ਉਸਦੀ ਕੇਂਦਰਤਾ ਸਥਾਪਿਤ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਸਾਰੇ ਜੀਵਾਂ ਵਿੱਚ ਰੱਬੀ ਤੱਤ ਦੀ ਸਾਂਝ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਸਾਰੇ ਜੀਵ ਰੱਬ ਦੀ ਰਚਨਾ ਹਨ। ਉਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਸਮਾਨਤਾ ਹੈ। ਇਹ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿੱਚ ਮਹੱਤਵ ਰੱਖਦੇ ਹਨ ਨਾ ਕਿ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਮਨੁੱਖ ਦੀਆ ਲੋੜਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਹੋਈ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਸਹਿਜ ਵਿੱਚ ਜੀਵੇ ਨਾ ਕਿ ਇਹਨਾਂ ਉੱਪਰ ਅਧਿਕਾਰ ਕਰਨਾ ਆਪਣਾ ਫਰਜ਼ ਸਮਝੇ।

ਸਭਨਾ ਜੀਆਂ ਕਾ ਇੱਕੁ ਦਾਤਾ ਸੋ ਮੈ ਵਿਸਰਿ ਨਾ ਜਾਈ॥[27]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਦਾ ਵਾਰ ਵਾਰ ਜ਼ਿਕਰ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਇਸਦਾ ਇੱਕ ਹਿੱਸਾ ਹੈ। ਪਰ ਕੁਦਰਤ ਬਹੁਤ ਵਿਸ਼ਾਲ ਹੈ। ਇਸ ਦੀ ਥਾਹ ਪਾਉਣੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਵੱਸ ਦੀ ਗੱਲ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਕੁਆਟਮ ਫਿਜ਼ਿਕਸ ਵਾਂਗ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਮਾਦੇ ਦੀ ਛੋਟੀ ਤੋਂ ਛੋਟੀ ਇਕਾਈ ਅਤੇ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਦੀ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਅਤੇ ਅਨੰਤਤਾ ਬਾਰੇ ਦਸਦੀ ਹੈ। ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਦੇ ਪਸਾਰੇ ਅਤੇ ਪਦਾਰਥ ਦੀ

ਅੰਦਰੂਨੀ ਬਣਤਰ ਮਨੁੱਖੀ ਸਮਝ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਰਹਿ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਰੱਬੀ ਸਿਰਜਣਾ ਨੂੰ ਰੱਬ ਖੁਦ ਹੀ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਜਾਣ ਸਕਦਾ ਹੈ;

ਪਾਤਾਲਾ ਪਾਤਾਲ ਲਖ ਆਗਾਸਾ ਆਗਾਸ॥ ॥
ਓੜਕ ਓੜਕ ਭਾਲਿ ਥਕੇ ਵੇਦ ਕਹਨਿ ਇਕ ਵਾਤ॥
ਸਹਸ ਅਠਾਰਹ ਕਹਨਿ ਕਤੇਬਾ ਅਸੁਲੂ ਇਕੁ ਧਾਤੁ॥
ਲੇਖਾ ਹੋਇ ਤ ਲਿਖੀਐ ਲੇਖੈ ਹੋਇ ਵਿਣਾਸੁ॥
ਨਾਨਕ ਵਡਾ ਆਖੀਐ ਆਪੇ ਜਾਣੈ ਆਪੁ॥ [28]

ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਅਤੇ ਉਸਦਾ ਰੱਬੀ ਹੁਕਮ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਵਾਹਮਾਨ ਹੋਣਾ, ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ, ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਲੁੱਟ ਵਾਲੇ ਸੱਤਾ ਤੰਤਰ ਅਤੇ ਅਖੌਤੀ ਧਾਰਮਿਕ ਰੀਤਾਂ ਤੋਂ ਉੱਪਰ ਉੱਠ ਕੇ ਕਾਦਰ ਦਾ ਹੁਕਮ ਪਛਾਨਣ ਦਾ ਜ਼ਰੀਆ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਦੁਨਿਆਵੀ ਸੱਤਾ ਦੇ ਡਰ ਭੈਅ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋ ਕੇ ਰੱਬੀ ਹੁਕਮ ਨੂੰ ਪਛਾਣਦਾ ਹੈ। ਸਾਰੀ ਕੁਦਰਤ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਵਾਹਿਤ ਰੱਬੀ ਸ਼ਕਤੀ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਮਨੁੱਖੀ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਸੁਤੰਤਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਨਸਲ, ਰੰਗ, ਜਾਤ, ਧਰਮ, ਲਿੰਗ ਆਦਿ ਦੇ ਵਿਤਕਰਿਆਂ ਅਤੇ ਦੁਨਿਆਵੀ ਪ੍ਰਵਚਨਾਂ ਤੋਂ ਉੱਪਰ ਉੱਠ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕੁਦਰਤ ਦੇ ਪ੍ਰਵਾਹ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਸਬੰਧਿਤ ਕਰਕੇ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਆਰਤੀ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਗਗਨ ਮੈ ਥਾਲੁ ਰਵਿ ਚੰਦੁ ਦੀਪਕ ਬਨੇ ਤਾਰਿਕਾ ਮੰਡਲ ਜਨਕ ਮੋਤੀ॥ ॥
ਧੂਪੁ ਮਲਆਨਲੋ ਪਵਣੁ ਚਵਰੋ ਕਰੇ ਸਗਲ ਬਨਰਾਇ ਫੂਲੰਤ ਜੋਤੀ॥ 1॥
ਕੈਸੀ ਆਰਤੀ ਹੋਇ॥ ਭਵ ਖੰਡਨਾ ਤੇਰੀ ਆਰਤੀ॥
ਅਨਹਤਾ ਸਬਦ ਵਾਜੰਤ ਭੇਰੀ॥ 1॥ ਰਹਾਉ॥ [29]

ਆਰਤੀ ਵਿੱਚ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਨਿਰਾਕਾਰ ਅਤੇ ਸਰਗੁਣ ਸਰੂਪ ਬਾਰੇ ਲਿਖਦੇ ਹੋਏ ਵਾਤਾਵਰਨ ਦੀ ਮਕਾਨਕੀ ਨਿਖੇੜੇ ਅਤੇ ਅੰਤਰਸਬੰਧਤਾ ਵਾਲੀ ਸਮਝ ਤੋਂ ਅਗਾਂਹ ਨਵੀਂ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੂਖਮ ਅੰਤਰਸਬੰਧਤਾ ਵਾਲੀ ਸਮਝ ਤੋਂ ਅਗਾਂਹ ਨਵੀਂ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੂਖਮ ਵਾਤਾਵਰਨ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਬਿਲਕੁਲ ਨੇੜੇ ਚਲੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਮਕਾਨਕੀ ਅੰਤਰ ਸਬੰਧਤਾ ਦੀ ਥਾਂ ਸੂਖਮ ਅੰਤਰ ਸਬੰਧਤਾ ਦੀ ਧਾਰਨਾ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸਰਗੁਣ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਸਭ ਜੀਵਾਂ ਵਿਚ ਵਿਆਪਕ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਤੇਰੀਆਂ ਅੱਖਾਂ ਹਨ ਪਰ ਨਿਰਾਕਾਰ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਹੇ ਪ੍ਰਭੂ ਤੇਰੀ ਕੋਈ ਅੱਖ ਨਹੀਂ। ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਤੇਰੀਆਂ ਸ਼ਕਲਾਂ ਹਨ, ਪਰ ਤੇਰੀ ਕੋਈ ਭੀ ਸ਼ਕਲ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਹਾਜ਼ਰਾਂ ਤੇਰੇ ਸੋਹਣੇ ਪੈਰ ਹਨ, ਪਰ ਨਿਰਾਕਾਰ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਤੇਰਾ ਇੱਕ ਭੀ ਪੈਰ ਨਹੀਂ। ਹਜ਼ਾਰਾਂ ਤੇਰੇ ਨੱਕ ਹਨ, ਪਰ ਤੂੰ ਨੱਕ ਤੋਂ ਬਿਨਾ ਹੀ ਹੈਂ। ਤੇਰੇ ਅਜਿਹੇ ਕੌਤਕਾਂ ਨੇ ਮੈਨੂੰ ਹੈਰਾਨ ਕੀਤਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਸਾਰੇ ਜੀਵਾਂ ਵਿਚ ਇਕੋ ਉਹੀ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਜੋਤੀ ਵਰਤ ਰਹੀ ਹੈ। ਸਰਗੁਣ ਅਤੇ ਨਿਰਗੁਣ ਦੀ ਇੱਕੋ ਸਮੇਂ ਸਾਰਥਕਤਾ ਨੂੰ ਸਮਝਣਾ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਹਿਜ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀ ਸੀਮਾ ਦਾ ਅਹਿਸਾਸ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਰੱਬ ਦੀ ਵਿਆਪਕਤਾ ਦਾ ਅਨੁਭਵ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਤੇ ਆਪਸੀ ਸੰਬੰਧਾਂ ਬਾਰੇ ਵੀ ਕਾਫੀ ਚਰਚਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਦੀ ਘਾੜਤ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਮੁੱਢਲੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਅਨੁਭਵਾਂ ਕਾਰਨ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਨਾਲ ਸਾਂਝ ਹੈ। ਮਨੁੱਖੀ ਅਵਚੇਤਨ ਅਤੇ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਆਪਸੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਦੀ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਉਹਨਾਂ ਬਾਰਾਮਾਹ ਵਿੱਚ ਵੱਖ ਵੱਖ ਰੁੱਤਾਂ ਦੇ ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਉੱਪਰ ਪੈਦੇ ਅਸਰ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਕੇ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਚਿਤਰਨ ਸਮੇਂ ਸੰਖੇਪਤਾ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਅਪਣਾਈ ਹੈ। ਉਹ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖੀ ਅਨੁਭਵ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਸਫ਼ਲ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦਾ ਮਨੁੱਖ ਨਾਲ ਨਿੱਜੀ ਅਤੇ ਭਾਵੁਕ ਪੱਧਰ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਬਿਆਨ ਕੀਤਾ ਹੈ।

ਪਵਣੁ ਗੁਰੂ ਪਾਣੀ ਪਿਤਾ ਮਾਤਾ ਧਰਤਿ ਮਹਤੁ॥

ਦਿਵਸੁ ਰਾਤਿ ਦੁਇ ਦਾਈ ਦਾਇਆ ਖੇਲੈ ਸਗਲ ਜਗਤੁ॥[30]

ਉਹਨਾਂ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਤੱਤਾਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਮੰਨਿਆ ਹੈ। ਪ੍ਰਾਣ (ਹਵਾ) ਜੀਵਾਂ ਲਈ ਗੁਰੂ ਹੈ, ਪਾਣੀ ਸਭ ਜੀਵਾਂ ਦਾ ਪਿਤਾ ਹੈ ਅਤੇ ਧਰਤੀ ਸਭ ਦੀ ਮਾਂ ਹੈ। ਦਿਨ ਅਤੇ ਰਾਤ ਦੋਵੇਂ ਖਿਡਾਵਾ ਤੇ ਖਿਡਾਵੀ ਹਨ। ਸਾਰਾ ਸੰਸਾਰ ਖੇਡ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਦਾ ਨਿਖੇੜਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਦਵੈਤ ਕਰਕੇ ਦੇਵ-ਪੂਜਾ ਦੇ ਵਿਧਾਨ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮੰਨਿਆ ਹੈ। ਸਗੋਂ ਇਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਇੱਕੋ ਅਕਾਲਪੁਰਖ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਸਮਾਈ ਹੋਈ ਹੈ। ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਸਭ ਤੱਤਾਂ ਵਿੱਚ ਬੁਨਿਆਦੀ ਸਾਂਝ ਹੈ। ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਸਾਰੇ ਤੱਤ ਹਵਾ ਪਾਣੀ ਅੱਗ ਆਦਿ ਰੱਬੀ ਗੁਣ ਗਾ ਰਹੇ ਹਨ।

ਗਾਵਨਿ ਤੁਧਨੋ ਪਵਣੁ ਪਾਣੀ ਬੈਸੰਤਰੁ ਗਾਵੈ ਰਾਜਾ ਧਰਮੁ ਦੁਆਰੇ॥[31]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਨੂੰ ਕਾਵਿ-ਸੁਹਜ ਲਈ ਬਿੰਬਾਂ, ਪ੍ਰਤੀਕਾਂ ਅਤੇ ਅਲੰਕਾਰਾਂ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਵੀ ਬੜ੍ਹੇ ਹੀ ਕਲਾਤਮਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸੰਖੇਪਤਾ ਨਾਲ ਵਰਤਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਹਰਬੰਸ ਸਿੰਘ ਨੇ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਬਾਰੇ ਲਿਖਿਆ ਹੈ, "ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਵਿੱਚੋਂ ਲਏ ਗਏ ਚਿੱਤਰ, ਰੂਪਕ, ਅਲੰਕਾਰ ਆਦਿ ਰਾਹੀਂ ਅਭਿਵਿਅਕਤ ਹੋਇਆ ਭਾਵ ਸੁਭਾਵਿਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸਰਬ ਸਾਂਝਾਂ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸੋ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਚਿਤਰਨ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਗਟ ਹੋਏ ਭਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਤਾਂ ਸੀਮਿਤ ਸੀਮਾਵਾਂ ਤੋਂ ਪਾਰ ਸਹਿਜ ਸੁਭਾਵਿਕ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਆ ਜਾਂਦੀਂ ਹੈ ਅਤੇ ਦੂਜੇ ਅਜਿਹੇ ਭਾਵ ਸਰਬ ਮਨੁੱਖਾਂ ਨੂੰ ਸਿੱਧੇ, ਕੁਦਰਤੀ ਅਤੇ ਮੌਲਿਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।"[32]

ਤੂ ਦਰੀਆਉ ਦਾਨਾ ਬੀਨਾ ਮੈ ਮਛੁਲੀ ਕੈਸੇ ਅੰਤੁ ਲਹਾ॥
ਜਹ ਜਹ ਦੇਖਾ ਤਹ ਤਹ ਤੂ ਹੈ ਤੁਝ ਤੇ ਨਿਕਸੀ ਫੂਟਿ ਮਰਾ॥[33]

ਉਪਰੋਕਤ ਚਰਚਾ ਪਿੱਛੋਂ ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ, ਕੁਦਰਤ ਅਤੇ ਰੱਬ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਦਵੈਤ ਨਹੀਂ ਸਿਰਜੀ ਗਈ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀ ਸੰਤੁਲਤ ਸਥਿਤੀ ਦੀ ਪਛਾਣ ਕਰਕੇ ਸਹਿਜਮਈ ਜੀਵਨ ਜਿਉਣ ਦੀ ਵਿਧੀ ਸਮਾਈ ਗਈ ਹੈ। ਜੋ ਵਰਤਮਾਨ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਚੱਲਿਤ ਪੱਛਮੀ ਤਰਜ਼ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨਾਲੋਂ ਵੱਖਰੀ ਕਿਸਮ ਦੀ ਭਰਪੂਰਤਾ ਵਾਲੇ ਜੀਵਨ ਢੰਗ ਦੀ ਦੱਸ ਪਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਵਰਤਮਾਨ ਵਾਤਾਵਰਨ ਸੰਕਟ ਪੂਰੀ ਮਨੁੱਖਤਾ ਨੂੰ ਤਬਾਹੀ ਵੱਲ ਲਿਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਕਟ ਨੂੰ ਤਕਨੀਕ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਹੱਲ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਇਸ ਲਈ ਸਾਨੂੰ ਜੀਵਨ ਜਿਉਣ ਦੇ ਢੰਗਾਂ ਵਿੱਚ ਵੱਡੀ ਤਬਦੀਲੀ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ। ਇਸ ਤਬਦੀਲੀ ਲਈ ਅਸੀਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚੋਂ ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਕੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਚਿੰਤਨ ਲਈ ਨਵੇਂ ਬਦਲ ਲੱਭ ਸਕਦੇ ਹਾਂ।

ਹਵਾਲੇ:

1. Harrari, Yuval Noah, 21 Lessons for the 21st Century, London, Jonathan Cape (2018) p-(115-117)
2. Edward. O. Wilson, Consilience, the unity of Knowledge, Vintage books, New York (1999) p-(15-48)
3. Plumwood, Val, Feminism And The Mastery of Nature, Routledge, U.S.A (1993)p-(69-164)
4. Lynn, White, Jr. Historical Roots of Ecological Crisis'in Glotfelty, Cherill & Fronn, Harrold (ed.) The Ecocriticism ReaderUniversity of Georgia press, Georgia (1996) p-(3-14)
5. Rachel Carson, Silent Spring, Houghton Miffin, 1962
6. Marx, Leo, The Machine in Garden, Oxford University press, 1964

7. Kerridge, Richard, Enviromentalism and Ecocriticism' in Waugh, Patricia, (ed.) Literary Theory and Criticism (an oxford Guide), New York, Oxford university press, (2006) p-(530-543)
8. Arnold, David & Guha, Ramchandra, Guha,Nature, Culture and Imperialism, New Delhi: OxfordUniversity press (1995)p-(1-2)
9. Reukert.W (Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism' in Glotfely, Cherill & Fronn, Harrold (ed.) The Ecocriticism Reader, Athens, University of Georgia press(1996) p-(105-123)
10. Kerridge, Richard, Enviromentalism and Ecocriticism' in Waugh, Patricia, (ed.) Literary Theroy and Criticism (an oxford Guide), New York, Oxford University press, (2006) p (530-543)
11. Campbell, Sueellen, The Land And The Language of Desire: Where Deep Ecology and Post-Struturalims Meet's in Glotfelty, Cherill & Fronn, Harrold (ed.) The Ecoriticis Reader, (Athens, Georgia), University of Georgia Press (1996) p-(124-136)
12. Foster, John Bellamy, Marx's Ecology (materialism And nature), Monthly Review Press , New York, 2000 p-(1-20&141-177)
13. ਹਰਬੰਸ ਸਿੰਘ (ਡਾ.) (ਸੋਧਕ ਡਾ. ਗੁਰਚਰਨ ਸਿੰਘ), ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਦੀ ਕਾਵਿ-ਕਲਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ (2003) ਪੰਨਾ-148
14. Wazir Singh, 'Maya and Kudrat in Nanak Bani' in Dr. Inderpal Singh & Madanjit Kaur (Edited) Guru Nanak A Global Vision, Guru Nanak Dev University, Amritsar (1997), p-43.
15. ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਪੰਨਾ-7
16. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 463
17. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 83
18. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 142
19. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 464
20. ਪੰਨੂੰ, ਹਰਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦਾ ਕੁਦਰਤ ਸਿਧਾਂਤ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ (2002), ਪੰਨਾ-24
21. ਪਰੀ ਲੋਕ ਵਰਗਾ ਵਿਚਿੱਤਰ ਨਵਾਂ ਭੌਤਿਕ ਵਿਗਿਆਨ, ਡਾ. ਕੁਲਦੀਪ ਸਿੰਘ ਧੀਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ। ਮਿਤੀ 12-01-2020)
22. ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਪੰਨਾ-1
23. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 7
24. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 4
25. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 3
26. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 19
27. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 2
28. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 5
29. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 13
30. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 8
31. ਉਹੀ ਪੰਨਾ- 8
32. ਹਰਬੰਸ ਸਿੰਘ (ਡਾ.) (ਸੋਧਕ ਡਾ. ਗੁਰਚਰਨ ਸਿੰਘ), ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਦੀ ਕਾਵਿ-ਕਲਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ (2003) ਪੰਨਾ-157
33. ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਪੰਨਾ-25

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ

ਡਾ. ਪਰਮਜੀਤ ਕੌਰ*

ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਗੁਰੂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਵਿੱਚ ਆਗਮਨ ਸਮੇਂ ਘੋਰ ਅੰਧਕਾਰ ਛਾਇਆ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟਾਚਾਰ, ਬੇਈਮਾਨੀ, ਹੇਰਾਫੇਰੀ ਸਿਰਫ ਰਾਜਨੀਤਿਕ, ਸਮਾਜਿਕ ਖੇਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਨਹੀਂ, ਸਗੋਂ ਧਾਰਮਿਕ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਵੀ ਡੂੰਘੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵਿਆਪਕ ਸੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਇੱਕ ਯੁੱਗ ਪੁਰਸ਼ ਅਤੇ ਬਹੁਪੱਖੀ ਵਿਅਕਤੀਤਵ ਦੇ ਮਾਲਕ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਲੋਕ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਨੇੜੇ ਤੋਂ ਵੇਖਿਆ, ਪੜਚੋਲਿਆ ਅਤੇ ਸਮੁੱਚੀ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਸਾਦਾ ਜੀਵਨ ਜਿਉਣ, ਸਿਰਜਣਹਾਰ ਸ਼ਕਤੀ ਨੂੰ ਹਰ ਵੇਲੇ ਯਾਦ ਰੱਖਣ, ਨੇਕ ਕਮਾਈ ਕਰਨ, ਸੱਚ ਬੋਲਣ ਅਤੇ ਸਭ ਉੱਤੇ ਦਇਆ ਕਰਨ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ ਦਿੱਤੀ। ਉਹ ਮਹਾਨ ਆਗੂ, ਸਮਾਜ ਸੁਧਾਰਕ, ਮਹਾਨ ਅਧਿਆਤਮਵਾਦੀ, ਉੱਘੇ ਮਹਾਨ ਸਾਹਿਤਕਾਰ, ਮਹਾਨ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਅਤੇ ਸੁਹਿਰਦ ਉਪਦੇਸ਼ਕ ਸਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਧੁਰ ਕੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਉਚਾਰਨ ਕੀਤਾ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਰਚਨਾ ਦਾ ਉਦੇਸ਼ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਕਰਨਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਕਰਨ ਹਿੱਤ ਹੀ ਉਦਾਸੀਆਂ ਕੀਤੀਆਂ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਸੰਸਾਰ ਦੀਆਂ ਸਮਕਾਲੀਨ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਜੀ ਦੀ ਪ੍ਰਸੰਗਿਕਤਾ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਜੇਕਰ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚਾਰਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਅੱਜ ਦੇ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿੱਚ ਵੀ ਇੱਕ ਨਵੀਂ ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਨਵਾਂ ਆਰੰਭ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਪਦਾਰਥਵਾਦ ਸੰਚਾਰ ਮਸ਼ੀਨੀ ਗਿਆਨ ਤੇ ਵਿਗਿਆਨ ਦੀਆਂ ਲੱਭਤਾਂ ਹੇਠ ਨਵੀਆਂ ਪਦਾਰਥਕ ਉਪਲਬਧੀਆਂ ਜੀਵਨ ਦੀ ਨੁਹਾਰ ਨੂੰ ਨਿਰੰਤਰ ਬਦਲਦੀਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਵਸਤੂ-ਪਰਕ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਮਨੁੱਖੀ ਹੋਂਦ ਉੱਪਰ ਹਾਵੀ ਹੋ ਰਹੀਆਂ ਹਨ। ਅਜਿਹੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਵਿੱਚ ਸੁਭਾਵਿਕ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਆਦਰਸ਼ਾਂ ਤੋਂ ਵਿਹੂਣਾ ਹੋ ਕੇ ਭਟਕਣਾ ਦੀ ਖਾਈ ਵਿੱਚ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਡਿੱਗ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਭਟਕਣਾ ਤੋਂ ਛੁਟਕਾਰਾ ਦਿਵਾਉਣ ਲਈ ਇੱਕ ਸਹਿਜ ਤੇ ਸਥਿਰ ਨਵਾਂ-ਨਰੋਆ, ਸੱਜਰਾ ਮਾਰਗ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੁਆਰਾ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਕਰਕੇ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਅਜੋਕੀਆਂ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨੂੰ ਨਵੇਂ ਸਿਰੇ ਤੋਂ ਵਿਉਂਤਣ, ਉਸਾਰੂ ਜੀਵਨ ਆਦਰਸ਼ਾਂ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਕਰਨ ਅਤੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਹਾਂ-ਪੱਖੀ ਹੁਲਾਰਿਆਂ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀਕਰਨ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚਲੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਇੱਕ ਅਜਿਹੀ ਬਾਣੀ ਹੈ ਜੋ ਜੀਵਨ ਦੇ ਉੱਚੇ-ਸੁੱਚੇ ਆਦਰਸ਼ਾਂ ਅਤੇ ਉਦੇਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਨਵਿਆਉਣ ਦੀ ਵਿਧੀ ਦੱਸਦਿਆਂ ਸੰਵੇਦਨਾਤਮਕ ਧਰਾਤਲ ਉੱਤੇ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਅਤੇ ਬਹੁ-ਦਿਸ਼ਾਵੀ ਅਯਾਮ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਗੁਰਮਤਿ ਪਰਪਾਟੀ ਦੇ ਸਿਰਜਕ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਜੀਵਨ-ਵਿਧੀਆਂ ਨੂੰ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਅਤੇ ਅਧਿਆਤਮਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ ਧਰਮ-ਸੰਚਾਲਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਉਸਾਰਦੇ ਹਨ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਆਗਮਨ ਸਮੇਂ ਲੋਕ ਸੱਚ ਅਤੇ ਨੈਤਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਭੁਲਾ ਕੇ ਬੁੱਤਪ੍ਰਸਤੀ, ਪਾਖੰਡ ਵਹਿਮ-ਭਰਮ, ਵਿਅਰਥ ਕਰਮ-ਕਾਂਡ ਅਤੇ ਵਿਅਰਥ ਦੇ ਹੰਕਾਰ ਵਿੱਚ ਫਸ ਚੁੱਕੇ ਸਨ। ਲੋਕ ਉੱਚ ਨੈਤਿਕ ਗੁਣਾਂ ਦੇ ਅਭਾਵ ਵਿੱਚ ਲਾਲਚ, ਐਸ਼ਪ੍ਰਸਤੀ, ਆਪਹੁਦਰਾਪਨ ਅਤੇ ਮਤਲਬੀ ਰੁਚੀਆਂ ਦੇ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਚੁੱਕੇ ਸਨ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਸਮਾਜ ਹਾਕਮ ਵਰਗ ਤੇ ਗੁਲਾਮ ਵਰਗ ਵਿੱਚ

*ਐਸੋਸੀਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਧਰਮ ਅਧਿਐਨ ਵਿਭਾਗ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੇਗ਼ ਬਹਾਦਰ ਖ਼ਾਲਸਾ ਕਾਲਜ, ਸ੍ਰੀ ਅਨੰਦਪੁਰ ਸਾਹਿਬ

ਵੰਡਿਆ ਜਾ ਚੁੱਕਿਆ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਆਗਮਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਆਦਰਸ਼ਹੀਣ ਹੋ ਚੁੱਕੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਸਬੰਧੀ ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਸਥਿਤੀ ਸਬੰਧੀ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਵਿੱਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ;

ਕਲਿਜੁਗਿ ਬੋਧੁ ਅਉਤਾਰੁ ਹੈ ਬੋਧ ਅਬੋਧੁ ਨ ਦ੍ਰਿਸਟੀ ਆਵੈ॥
ਕੋਇ ਨ ਕਿਸੈ ਵਰਜੀਈ ਸੋਈ ਕਰੈ ਜੋਈ ਮਨ ਭਾਵੈ॥
ਕਿਸੇ ਪੁਜਾਈ ਸਿਲਾ ਸੁੰਨਿ ਕੋਈ ਗੋਰੀ ਮੜ੍ਹੀ ਪੁਜਾਵੈ॥
ਤੰਤ੍ਰ ਮੰਤ੍ਰ ਪਾਖੰਡ ਕਰਿ ਕਲਹਿ ਕ੍ਰੋਧੁ ਬਹੁ ਵਾਦਿ ਵਧਾਵੈ॥
ਆਪੋ ਧਾਪੀ ਹੋਇਕੈ ਨਿਆਰੈ ਨਿਆਰੈ ਧਰਮ ਚਲਾਵੈ॥
ਕੋਈ ਪੂਜੈ ਚੰਦੁ ਸੂਰੁ ਕੋਈ ਧਰਤਿ ਆਕਾਸੁ ਮਨਾਵੈ॥
ਪਉਣੁ ਪਾਣੀ ਬੈਸੰਤਰੋ ਧਰਮਰਾਜ ਕੋਈ ਤ੍ਰਿਪਤਾਵੈ॥
ਫੋਕਟਿ ਧਰਮੀ ਭਰਮਿ ਭੁਲਾਵੈ॥[1]

ਕਲਯੁੱਗ ਦੀ ਅਜਿਹੀ ਕਰੁਣਾਮਈ ਤੇ ਦਰਦਨਾਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਲਈ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਸੱਚਾ ਰਸਤਾ ਦਿਖਾਉਣ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦਾ ਆਗਮਨ ਹੋਇਆ। ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਲਿਖਦੇ ਹਨ;

ਕਲਿਜੁਗ ਬਾਬੇ ਤਾਰਿਆ ਸਤਿਨਾਮੁ ਪੜ੍ਹ ਮੰਤ੍ਰ ਸੁਣਾਇਆ॥
ਕਲ ਤਾਰਣਿ ਗੁਰੁ ਨਾਨਕ ਆਇਆ॥[2]

ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸਮੁੱਚੀ ਮਨੁੱਖਤਾ ਨੂੰ ਪ੍ਰੇਮ-ਭਾਵ, ਸ਼ਾਂਤੀ, ਭਾਈਚਾਰਕ ਸਾਂਝ, ਅਪਨਾਪਣ ਅਤੇ ਪਿਆਰ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ। ਗੁਰਮੁੱਖ ਨਿਹਾਲ ਸਿੰਘ ਪੁਸਤਕ 'ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀਵਨ ਯੁੱਗ ਅਤੇ ਉਪਦੇਸ਼'ਵਿੱਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨ;

"ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਸਾਰੇ ਧਰਮਾਂ ਲਈ ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸੱਚ ਦਾ ਮਹੱਤਵ ਦੱਸਿਆ ਅਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਹਿੰਦੂਆਂ ਨੂੰ ਚੰਗੇ ਹਿੰਦੂ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਨੂੰ ਚੰਗੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਬਣਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਉਪਦੇਸ਼ ਹਰ ਲਿਹਾਜ਼ ਨਾਲ ਸ਼ੇ੍ਰਣੀ ਰਹਿਤ ਸੁਭਾਅ ਦੇ ਧਾਰਨੀ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਹਿੰਦੂਆਂ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨਾਂ ਵਿਚਾਲੇ ਪ੍ਰਚੱਲਤ ਤੰਗ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਅਤੇ ਦੋਹਾਂ ਜਾਤੀਆਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਸਪਰ ਸਾਂਝ ਤੇ ਸੁੱਖ ਸ਼ਾਂਤੀ ਲਈ ਨੇੜੇ ਨੇੜੇ ਲਿਆਉਣ ਦੇ ਯਤਨ ਕੀਤੇ।"[3] ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਸਮੁੱਚੇ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਸੱਚ ਸੁਣਾਉਣ, ਸੱਚ ਕਮਾਉਣ ਤੇ ਸੱਚ ਸਿਰਜਣ ਦੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਨੂੰ ਨਿਭਾਇਆ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੁਆਰਾ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਸਬੰਧੀ ਪ੍ਰਚਲਤ ਗਲਤ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਅਤੇ ਆਚਾਰ ਪੱਧਤੀਆਂ ਦਾ ਖੰਡਨ ਕਰਦਿਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਆਚਾਰ-ਵਿਵਹਾਰ ਅਤੇ ਸਾਧਨਾ ਆਦਰਸ਼ ਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਤੇ ਪ੍ਰਸਾਰ ਕੀਤਾ। ਮਨੁੱਖੀ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਨਵੀਂ ਘਾੜਤ, ਨਵੀਂ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ, ਨਵੀਂ ਅਨੁਭੂਤੀ ਅਤੇ ਸੰਵੇਦਨਾਵਾਂ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਵੱਲ ਹੀ ਸੰਕੇਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਜਪੁਜੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਸਵਾਲ ਪੈਦਾ ਕੀਤਾ ਕਿ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਬਣਨ ਵਿੱਚ 'ਕੂੜ ਦੀ ਦੀਵਾਰ' ਵੱਡੀ ਰੁਕਾਵਟ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ 'ਕੂੜ' ਦੀ ਦੀਵਾਰ ਨੂੰ ਕਿਵੇਂ ਤੋੜਿਆ ਜਾਵੇ ਕਿਵੇਂ ਸਚਿਆਰ ਬਣਿਆ ਜਾਵੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿੱਚ ;

ਕਿਵ ਸਚਿਆਰਾ ਹੋਈਐ ਕਿਵ ਕੂੜੈ ਤੁਟੈ ਪਾਲਿ॥
ਹੁਕਮਿ ਰਜਾਈ ਚਲਣਾ ਨਾਨਕ ਲਿਖਿਆ ਨਾਲਿ॥[4]

'ਸਚਿਆਰ' ਹੀ ਇੱਕ ਆਦਰਸ਼ਕ ਅਤੇ ਸੰਪੂਰਨ ਮਨੁੱਖ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸੁਰਤੀ ਉਸ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਆਧਾਰਸ਼ਿਲਾ ਹੈ ਜੋ ਮਨੁੱਖੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਰੂਪਮਾਨ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਉਹ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ

ਦਿਸਦੇ ਹੋਏ ਨਾਸ਼ਵਾਨ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਅਸਥਿਰਤਾ ਤੋਂ ਜਾਣੂ ਕਰਵਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਮਨੁੱਖੀ ਸੁਰਤੀ ਦਾ ਕੇਂਦਰ ਬਿੰਦੂ ਸੱਚ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰਦੇ ਹਨ ਜੋ ਸਥਿਰ ਹੈ, ਅਮਰ ਹੈ, ਅਟੱਲ ਹੈ;

ਟਾਦਿ ਸਚੁ ਜੁਗਾਦਿ ਸਚੁ॥
ਹੈ ਭੀ ਸਚੁ ਨਾਨਕ ਹੋਸੀ ਭੀ ਸਚੁ॥[5]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਅਨੁਸਾਰ ਸਦਾ ਸਥਿਰ ਰਹਿਣ ਵਾਲਾ ਸੱਚ ਕੇਵਲ ਇੱਕੋ ਇੱਕ ਓਂਕਾਰ, ਨਿਰੰਕਾਰ ਅਤੇ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਹੀ ਹੈ ਜੋ ਆਪ ਵੀ ਸੱਚ ਸਰੂਪ ਹੈ ਅਤੇ ਜਿਸ ਦਾ ਨਾਮ ਵੀ ਸੱਤ ਹੈ। ਸੱਚ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਲੱਛਣ ਇਸ ਦਾ ਆਪਣੇ ਆਪ ਤੋਂ ਹੋਂਦ ਵਿੱਚ ਆਉਣ ਵਾਲਾ ਸਰੂਪ ਹੈ। ਸਿਰਫ ਇਹੀ ਸੱਚ ਹੈ ਜੋ 'ਅਜੂਨੀ' ਹੈ ਜਿਸ ਉੱਪਰ ਕਿਸੇ ਦਾ ਹੁਕਮ ਨਹੀਂ ਚਲਦਾ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਦਾ ਡਰ ਨਹੀਂ। ਉਸ ਮਹਾਨ ਹਸਤੀ ਦਾ ਉਹ ਨਿਰੂਪਣ ਕੁਝ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਰਦੇ ਹਨ;

ੴ
ਸਤਿਨਾਮੁ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ
ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰੁ ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥[6]

ਅਜਿਹੀ ਮਹਾਨ ਸੱਚਾਈ ਨੂੰ ਮਨ, ਬਚਨ ਅਤੇ ਕਰਮ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣਾ ਲੈਣ ਵਾਲਾ ਮਨੁੱਖ ਹੀ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਜਾਂ ਸਚਿਆਰ ਮਨੁੱਖ ਹੈ। ਸਚਿਆਰ ਕੋਈ ਸਰੀਰਕ ਅਵਸਥਾ ਨਹੀਂ, ਜਿਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਤੀਰਥਾਂ ਦੀ ਯਾਤਰਾ ਕਰਨੀ ਪਵੇ ਸਗੋਂ ਇਹ ਤਾਂ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਅੰਤਰੀਵੀ ਵਿਅਕਤੀਤਵਦੀ ਸੂਖਮ ਅਨੁਭਵੀ ਅਵਸਥਾ ਹੈ। ਇੱਕ ਨਿਰੰਤਰ ਵਿਕਾਸ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਮਨੁੱਖ ਸਾਹਮਣੇ ਇਹ ਸ਼ਰਤ ਰੱਖਦੇ ਹਨ;

ਹੁਕਮਿ ਰਜਾਈ ਚਲਣਾ ਨਾਨਕ ਲਿਖਿਆ ਨਾਲਿ॥[7]

ਇਸ ਤੋਂ ਭਾਵ ਹੈ ਕਿ ਜਿਹੜਾ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਮਨ, ਵਚਨ ਅਤੇ ਕਰਮਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਹੁਕਮਾਂ ਅਨੁਕੂਲ ਕਰ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਉਸ ਦੀ ਰਜ਼ਾ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ, ਉਹ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਆਪਣੇ ਮਹਾਨ ਲਕਸ਼ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਲੈਂਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਨੁਸਾਰ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਮਨੋਰਥ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਨਾਲ ਇਕ-ਮਿਕ ਹੋਣਾ ਹੈ ਉਸ ਦੀ ਰਜ਼ਾ ਵਿੱਚ ਚਲਦੇ ਸਾਧਕ ਦੀ ਆਤਮਾ ਇੱਕ ਪਾਸੇ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਨਾਲ ਅਭੇਦ ਅਤੇ ਇਕਮਿਕ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਦੂਸਰੇ ਪਾਸੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਆਚਰਣਕ ਅਭੇਦਤਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਭਾਵ ਜਦੋਂ ਹਉਮੈ ਦੂਰ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਮਨੁੱਖ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਭਾਣੇ ਅੰਦਰ ਮੁਕਤ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਜਿਹੇ ਸੱਚੇ ਮਾਰਗ ਦੀ ਸੋਝੀ ਕਰਵਾਉਂਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਉੱਤੇ ਚੱਲ ਕੇ ਸਾਧਕ ਆਪਣੇ ਮਨੋਰਥ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਆਪਣੇ ਇਨਕਲਾਬੀ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ ਉਹ ਅਜਿਹਾ ਸਮਾਂ ਸੀ ਜਦ ਸਦੀਆਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਕਰਕੇ ਭਾਰਤੀ ਲੋਕ ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਗੌਰਵਮਈ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋ ਚੁੱਕੇ ਸਨ। ਧਰਮ ਦੇ ਨਾਮ ਤੇ ਕੁਕਰਮ ਕੀਤੇ ਜਾ ਰਹੇ ਸਨ ਅਤੇ ਬਾਹਰੀ ਅਡੰਬਰਾਂ ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਤੀਰਥ ਇਸ਼ਨਾਨ, ਮੌਨ, ਖੰਡਨ-ਮੰਡਨ ਤੇ ਭੇਖ-ਪਾਖੰਡ ਨੂੰ ਹੀ ਧਰਮ ਦਾ ਉੱਚਤਮ ਰੂਪ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰ ਲਿਆ ਗਿਆ ਪਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਜੀਵਨ-ਵਿਧੀਆਂ ਵੱਲ ਸੰਕੇਤ ਕਰਦਿਆਂ ਮਨੁੱਖਾਂ ਨੂੰ ਸਾਵਧਾਨ ਕੀਤਾ ਕਿ ਅਜਿਹੇ ਵਿਧੀ-ਵਿਧਾਨਾਂ ਸਦਕਾ ਕਦੀ ਵੀ ਉਹ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਨਹੀਂ ਬਣ ਸਕਣਗੇ। ਯਥਾਰਥ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖ ਆਤਮਿਕ ਪੂਰਨਤਾ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਆਦਰਸ਼ਕ ਬਣ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਕਦਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਨੁਸਾਰ ਸਚਿਆਰਤਾ ਜਾਂ ਆਦਰਸ਼ਕਤਾ ਇੱਕ ਮੰਜ਼ਿਲ ਹੈ ਜਿਸ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਣਾ ਸੁਹਿਰਦ ਅਤੇ ਸੂਝਵਾਨ ਸਾਧਕ ਦਾ ਕਰਤਵ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਇੱਕ ਆਦਰਸ਼ਕ ਸਮਾਜ ਦੀ ਨੀਂਹ ਰੱਖੀ ਡਾ ਇੰਦੂ ਭੂਸ਼ਨ ਬੈਨਰਜੀ ਲਿਖਦਾ ਹੈ;

"ਜਿਸ ਧਰਮ ਦੀ ਨੀਂਹ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਰੱਖੀ ਉਹ ਧਰਮ ਕੁਝ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਦੀ ਮੁਕਤੀ ਨਾਲ ਹੀ ਸੰਤੁਸ਼ਟ ਨਹੀਂ ਸੀ ਰਹਿ ਸਕਦਾ। ਇਸ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਇੱਕ ਸੰਸਾਰ ਸ਼ਕਤੀ

ਵਜੋਂ ਜਥੇਬੰਦ ਕਰਨਾ ਸੀ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੀ ਉੱਨਤੀ ਲਈ ਇੱਕ ਜਿਉਂਦਾ ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਸਮਾਜ ਉਸਾਰਨਾ ਸੀ।"[8] ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ ਹਰੇਕ ਧਰਮ ਵਿੱਚ ਆਦਰਸ਼ਕ ਬਣਨ ਲਈ ਕਈ ਮਾਰਗ ਦੱਸੇ ਗਏ ਹਨ ਪਰ ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਸੁਖੈਨ ਮਾਰਗ ਅਤੇ ਸਹਿਜ ਮਾਰਗ ਦਰਸਾਇਆ, ਜੋ ਸੱਚ 'ਤੇ ਆਧਾਰਤ ਹੈ ਉਹ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਵਿਲੱਖਣ ਰੂਪ ਕਾਇਮ ਕਰਦਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਅਧਿਆਤਮਕ ਉਨਤੀ ਲਈ ਨਵੀਂ ਦਿਸ਼ਾ ਵੱਲ ਅਗਵਾਈ ਦਿੱਤੀ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਦੀ ਸਮੂਹਿਕ ਉਸਾਰੀ ਨੂੰ ਦ੍ਰਿੜ੍ਹ ਕਰਵਾਉਂਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸੇਵਾ ਕਰਨੀ ਇੱਕ ਜ਼ਰੂਰੀ ਫਰਜ਼ ਵਜੋਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ। ਇਹ ਸੇਵਾ ਹੀ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਸਾਧਨ ਹੈ;

ਵਿਚਿ ਦੁਨੀਆ ਸੇਵ ਕਮਾਈਐ॥
ਤਾ ਦਰਗਹ ਬੈਸਣੁ ਪਾਈਐ॥[9]

ਸੱਚ ਦੀ ਕਾਰ ਕਮਾਉਣ ਵਾਲਾ ਸੱਚਾ-ਸੁੱਚਾ ਸਚਿਆਰ ਹੀ ਸੇਵਾ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਪਦਵੀ 'ਤੇ ਪਹੁੰਚ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸੱਚੇ-ਸੁੱਚੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸੱਚੀ ਸੇਵਾ ਸੇਵਕ ਤੇ ਸਵਾਮੀ ਵਿਚਲੇ ਭੇਦ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਪਰਮ ਸੱਚ ਦਾ ਗਿਆਨ ਕਿਸੇ ਚਿੰਤਨ ਜਾਂ ਦਰਸ਼ਨ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ;

ਸੋਚੈ ਸੋਚਿ ਨ ਹੋਵਈ ਜੇ ਸੋਚੀ ਲਖੁ ਵਾਰ ॥
ਚੁਪੈ ਚੁਪਿ ਨ ਹੋਵਈ ਜੇ ਲਾਇ ਰਹਾ ਲਿਵ ਤਾਰ ॥[10]

ਮਨੁੱਖੀ ਤਰਕ ਤੇ ਦਲੀਲ ਪ੍ਰਭੂ ਚਿੰਤਨ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਯੋਗ ਦੇ ਸਾਧਨ ਮੌਨ ਸਾਧਨਾ ਤੇ ਤਿਆਗ ਮਨੁੱਖੀ ਆਤਮਾ ਵਿਚਲੀ ਅਸ਼ਾਂਤੀ ਅਤੇ ਅਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਨੂੰ ਸ਼ਾਂਤ ਅਤੇ ਸੰਤੁਸ਼ਟ ਕਰਨ ਤੋਂ ਅਸਮਰਥ ਹਨ ਉਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਧਨ ਦੌਲਤ ਦੇ ਭੰਡਾਰ ਵੀ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਪਦਾਰਥਕ ਭੁੱਖ ਨੂੰ ਕਦੇ ਤ੍ਰਿਪਤ ਨਹੀਂ ਕਰ ਸਕਦੇ। ਅਧਿਆਤਮਕ ਉੱਨਤੀ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਦੁਨਿਆਵੀ ਸਹਿਜ-ਸਿਆਣਪਾਂ ਤੋਂ ਉੱਪਰ ਲੈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਆਤਮਿਕ ਪੂਰਨਤਾ ਬਾਹਰੀ ਦਿਖਾਵਿਆਂ, ਮੁੰਦਰਾਂ ਪਾਉਣ, ਤੀਰਥ ਇਸ਼ਨਾਨ ਕਰਨ, ਸਵਾਹ ਮਲਣ ਤੇ ਜਨੇਊ ਪਾਉਣ 'ਤੇ ਅਧਾਰਿਤ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਇਹ ਤਾਂ ਸੰਤੋਖ ਦੀਆਂ ਮੁੰਦਰਾਂ, ਦਯਾ ਦੀ ਕਪਾਹ, ਜਤ ਦੀਆਂ ਗੰਢਾਂ ਤੋਂ ਬਣੇ ਜਨੇਊ, ਧਿਆਨ ਦੀ ਭਸਮ ਤੇ ਧੀਰਜ ਧਾਰਨ ਕੀਤਿਆਂ ਹੀ ਹਾਸਲ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਹਿਜ ਦਾ ਮਾਰਗ ਦਰਸਾਇਆ ਗੁਰਮਤਿ ਮਾਰਗ ਸਹਿਜ ਮਾਰਗ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਭਗਤੀ ਅਤੇ ਕਰਮਯੋਗ ਨੂੰ ਸਾਂਝੇ ਤੌਰ ਤੇ ਸਵੀਕਾਰ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਗਿਆਨ ਮਨੁੱਖੀ ਅਧਿਕਾਰ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਅਤੇ ਮਨ ਨੂੰ ਨਿਯੰਤਰਣ ਕਰਕੇ ਸਦੀਵੀ ਤੌਰ 'ਤੇ ਸਥਿਰ ਰਹਿਣ ਵਾਲੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨਾਲ ਜੋੜਨ ਵਿੱਚ ਸਹਾਇਕ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰੇਮ-ਭਗਤੀ ਵੀ ਪ੍ਰਭੂ-ਮਿਲਾਪ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਮਾਧਿਅਮ ਹੈ। ਭਗਤ ਸਦਾ ਹੀ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਬਖਸ਼ਿਸ਼ ਦਾ ਪਾਤਰ ਬਣਦੇ ਹਨ। ਇਸੇ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਬਣਾਉਣ ਲਈ ਨਾਮ ਜਪਣ ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ। ਭਗਤੀ ਭਾਵਨਾ ਵਿੱਚ ਨਾਮ ਸਾਧਨਾ ਦਾ ਬਹੁਤ ਮਹੱਤਵ ਹੈ। ਹਰੇਕ ਵਰਗ ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਨਿਰਗੁਣਵਾਦੀ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਸਰਗੁਣਵਾਦੀ ਨਾਮ ਦੀ ਮਹੱਤਤਾ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ। ਪ੍ਰਭੂ ਦਾ ਨਾਮ ਸੱਤ ਹੈ ਜਿਸ ਦਾ ਵਰਣਨ ਮੂਲ ਮੰਤਰ ਵਿੱਚ ਹੋਇਆ ਹੈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਨਾਮ ਨੂੰ ਵਿਆਪਕ ਸ਼ਕਤੀ ਮੰਨਦਿਆਂ ਸਭ ਥਾਵਾਂ ਤੇ ਨਾਮ ਦੀ ਭਰਪੂਰਤਾ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਕੀਤਾ;

ਜੇਤਾ ਕੀਤਾ ਤੇਤਾ ਨਾਉ ॥
ਵਿਣੁ ਨਾਵੈ ਨਾਹੀ ਕੋ ਥਾਉ॥[11]

ਨਾਮ ਸਿਮਰਨ ਦੀਆਂ ਉਚੇਰੀਆਂ ਬਰਕਤਾਂ ਸਦਕਾ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਆਤਮਿਕ ਵਿਕਾਸ ਦੀਆਂ ਸਿਖਰਾਂ ਨੂੰ ਛੂਹ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸੱਚ ਸਰੂਪ ਸਚਿਆਰ ਮਨੁੱਖ ਸੱਚੇ ਦੀ ਸਿਫਤ ਸਲਾਹ ਨਾਲ ਸੱਚਾਈ ਦੀ ਸਿਖਰ ਤੇ ਪਹੁੰਚ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸੱਚ ਦੇ ਸਿਮਰਨ ਵਿੱਚ ਲੱਗੇ ਸਾਧਕ ਨੂੰ ਬਾਹਰੀ ਜੀਵਨ ਸਫਲਤਾ, ਤ੍ਰਿਸ਼ਨਾ ਚੱਕਰ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਅਤੇ ਅੰਦਰਲਾ ਆਪਾ ਅਨੰਤਤਾ ਤੇ ਅਟੱਲਤਾਦੇ ਭਾਵ ਭਾਵਾਂ ਨਾਲ ਭਰਪੂਰ

ਜਾਪਦਾ ਹੈ। ਨਾਮ ਜਪਣ ਨਾਲਅੰਮ੍ਰਿਤਮਈ ਜੀਵਨ-ਸੰਚਾਰ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਅੰਦਰ ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਅਨੰਦਮਈ ਸੋਮੇ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਫੁੱਟਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਹਰ ਸਮੇਂ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਧਾਰਾ ਨਿਰੰਤਰ ਵਹਿੰਦੀ ਜਾਪਦੀ ਹੈ। ਨਾਮ ਸਿਮਰਨ ਦੇ ਅੰਤਿਮ ਲਕਸ਼ ਪਰਮ ਸੱਤਾ ਨਾਲ ਅਭੇਦ ਨੂੰ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ 'ਸਚਿਆਰ' ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਸਚਿਆਰਾ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ 'ਜਪੁ' ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਕਹਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੱਥ ਪੈਰ ਦੇ ਤਨ ਨੂੰ ਪਾਣੀ ਨਾਲ ਸਾਫ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ, ਪਲੀਤ ਹੋਇਆ ਕੱਪੜਾ ਸਾਬਣ ਨਾਲ ਧੋਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਉਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਅਪਵਿੱਤਰ ਹੋਈ ਆਤਮਾ ਦੀ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਲਈ ਨਾਮ ਸਿਮਰਨ ਅਤਿ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ। ਨਾਮ ਦੀ ਸਾਧਨਾ ਨਾਲ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਖ਼ੁਦ ਤਾਂ 'ਸਚਿਆਰ' ਬਣਦਾ ਹੀ ਹੈ ਸਗੋਂ ਦੂਜਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਇਸ ਮਾਰਗ ਉੱਪਰ ਤੋਰਦਾ ਹੈ;

ਜਿਨੀ ਨਾਮ ਧਿਆਇਆ ਗਏ ਮਸਕਤਿ ਘਾਲਿ॥
ਨਾਨਕ ਤੇ ਮੁਖ ਉਜਲੇ ਕੇਤੀ ਛੁਟੀ ਨਾਲਿ॥[12]

'ਜਪੁ'ਜੀ ਬਾਣੀ ਦੀਆਂ ਅੱਠ ਤੋਂ ਗਿਆਰਾਂ ਤੱਕ ਦੀਆਂ ਪਉੜੀਆਂ ਨਾਮ ਸਿਮਰਨ ਦੀ ਮਹੱਤਤਾ ਤੇ ਵਡਿਆਈ ਨੂੰ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। 'ਸ੍ਰਵਨ' ਭਗਤੀ ਦੁਆਰਾ ਵਿਕਸਿਤ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਦਾ ਪ੍ਰਤੱਖ ਪ੍ਰਮਾਣ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਮਾਨਵ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚੋਂ ਪਾਪਾਂ ਦਾ ਨਾਸ਼ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਜਪੁਜੀ ਬਾਣੀ ਦੀਆਂ ਬਾਰਾਂ ਤੋਂ ਪੰਦਰਾਂ ਤੱਕ ਦੀਆਂ ਪਉੜੀਆਂ ਵਿੱਚ 'ਮਨਨ' ਭਗਤੀ ਦਾ ਸਰੂਪ ਅਤੇ ਮੰਨਣ ਵਾਲੇ ਦੀ ਅੰਤਰ ਆਤਮਿਕ ਅਵਸਥਾ ਦਰਸਾਈ ਗਈ ਹੈ ਜਿਸ ਦੁਆਰਾ ਮਨੁੱਖੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਇੰਨੀ ਬਲਵਾਨ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਜੀਵਨ ਦੇ ਸਫ਼ਰ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਵੀ ਚੀਜ਼ ਨਿਰੰਜਨ ਸੱਚ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਣ ਤੋਂ ਰੋਕ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ। ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਹੁਕਮ, ਰਜ਼ਾ ਵਿੱਚ ਚੱਲ ਕੇ ਵਿਸ਼ਵ ਇਕਾਗਰਤਾ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਇਕਸੁਰਤਾ ਹੋ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਉਹ ਉਸ ਅਨੁਭਵ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਭੂ ਦਾ ਹੁਕਮ ਅਤੇ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਆਤਮਾ ਦਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਇੱਕ ਅੰਤਹਕਰਨ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਅਮਲ ਵਿੱਚ ਲਿਆਉਣ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖ ਸੱਚ ਦੀ ਕਮਾਈ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਸਚਿਆਰ ਬਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਭੂ ਦਾ ਹੁਕਮ ਸਾਰੀ ਮਨੁੱਖਤਾ ਵਿੱਚ ਪਸਰਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ ਉਸ ਦੇ ਹੁਕਮ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਵਾਲਾ ਸਦਾ ਸੁਚੇਤ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਦਲੇਰੀ ਸੰਤੋਖ, ਨਿਮਰਤਾ, ਮਿਠਾਸ ਆਦਿ ਗੁਣ ਉਸ ਦੇ ਬਲਵਾਨ ਆਚਰਣ ਦਾ ਸਬੂਤ ਬਣ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਰਜ਼ਾ ਅਨੁਸਾਰ ਢਾਲਣਾ ਹੀ ਸਚਿਆਰ ਤੇ ਸੱਚ-ਸਰੂਪ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਲੱਛਣ ਹੈ। ਸਚਿਆਰ ਮਨੁੱਖ ਵੱਖੋ-ਵੱਖਰੀਆਂ ਅਵਸਥਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਵਿਚਰਦਾ ਹੋਇਆ ਪਰਮ ਅਵਸਥਾ ਸੱਚਖੰਡ ਤੱਕ ਜਾ ਪਹੁੰਚਦਾ ਹੈ। 'ਜਪੁ' ਬਾਣੀ ਅਨੁਸਾਰ ਇਹ ਅਵਸਥਾਵਾਂ ਧਰਮ ਖੰਡ, ਗਿਆਨ ਖੰਡ, ਸਰਮ ਖੰਡ, ਕਰਮ ਖੰਡ ਅਤੇ ਸੱਚਖੰਡ ਹਨ;

ਧਰਮੁ ਖੰਡ ਕਾ ਏਹੁ ਧਰਮੁ॥
ਗਿਆਨ ਖੰਡ ਕਾ ਆਖਹੁ ਕਰਮ ॥[13]

ਧਰਮ ਦੀ ਸਾਧਨਾ ਨਾਲ ਉਹ ਉੱਚ ਮੰਡਲ ਦੀ ਸੋਝੀ ਦਾ ਪੂਰਕ ਬਣਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਗਿਆਨ ਮਈ ਹੋ ਕੇ ਆਪਣੀ ਸਵਾਰਥ ਦੀ ਗੰਢ ਨੂੰ ਖੋਲ੍ਹਦਾ ਹੈ। ਪਹਿਲਾਂ ਮਨੁੱਖ ਮਾਇਆ ਵਿੱਚ ਮਸਤ ਰਹਿਣ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਜਾਂ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਨੂੰ ਹੀ ਆਪਣਾ ਜਾਣਦਾ ਸੀ ਤੇ ਪਰੇ ਹੋਰ ਕਿਸੇ ਵਿਚਾਰ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਸੀ ਪੈਂਦਾ ਪਰ ਸੋਝੀ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ ਉਹ ਆਪਣੀ ਵਾਕਫੀਅਤ ਨੂੰ ਵਧਾਉਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ;

ਗਿਆਨੁ ਖੰਡ ਮਹਿ ਗਿਆਨੁ ਪ੍ਰਚੰਡੁ॥
ਤਿਥੈ ਨਾਦਿ ਬਿਨੋਦੁ ਕੋਡ ਅਨੰਦੁ॥[14]

ਗਿਆਨਮਈ ਹਨੇਰੀ ਅੱਗੇ ਸਭ ਵਹਿਮ-ਭਰਮ ਉੱਡ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਜਿਵੇਂ-ਜਿਵੇਂ ਮਨੁੱਖ ਅੰਦਰ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਉਵੇਂ ਹੀ ਉਸ ਨੂੰ ਆਨੰਦ ਮਿਲਦਾ ਹੈ;

ਸਰਮ ਖੰਡ ਕੀ ਬਾਣੀ ਰੂਪ॥

ਤਿਥੈ ਘਾੜਤ ਘੜੀਐ ਬਹੁਤਿ ਅਨੂਪੁ॥[15]

ਗਿਆਨ ਖੰਡ ਵਿਚ ਪਹੁੰਚ ਕੇ ਜਿਵੇਂ ਜਿਵੇਂ ਮਨੁੱਖ ਮਿਹਨਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਉਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੀ ਉਸ ਦਾ ਮਨ ਸੁਘੜ ਸਰੂਪ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਅਕਲ ਉੱਚੀ-ਸੁੱਚੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ;

ਕਰਮ ਖੰਡ ਕੀ ਬਾਣੀ ਜੋਰੁ॥
ਤਿਥੈ ਹੋਰੁ ਨ ਕੋਈ ਹੋਰੁ॥
ਤਿਥੈ ਜੋਧ ਮਹਾਬਲ ਸੂਰ॥
ਤਿਨ ਮਹਿ ਰਾਮੁ ਰਹਿਆ ਭਰਪੂਰ॥[16]

ਇਸ ਖੰਡ ਵਿਚ ਮਹਾਂਬਲੀ, ਯੋਧੇ ਤੇ ਕਰਮਸ਼ੀਲ ਪਹੁੰਚਦੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਰੋਮ-ਰੋਮ ਵਿੱਚ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਵਸਦਾ ਹੈ। ਵਾਸਤਵ ਵਿੱਚ ਇਹ ਹੀ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਹਨ ਜੋ ਵਿਸ਼ੇ-ਵਿਕਾਰਾਂ ਤੋਂ ਉਪਰਾਮ ਹੋ ਕੇ ਸਭ ਥਾਈਂ ਪਰਮਾਤਮਾ ਹੀ ਪਰਮਾਤਮਾ ਵੇਖਦੇ ਹਨ। ਅਜਿਹੇ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਆਵਾਗਵਨ ਦੇ ਬੰਧਨਾਂ ਦਾ ਡਰ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ। ਉਸ ਦਾ ਮਨ ਸਦਾ ਵਿਗਾਸ ਵਿੱਚ, ਖੇੜੇ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ;

ਸਚ ਖੰਡਿ ਵਸਹਿ ਨਿਰੰਕਾਰੁ॥[17]

ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਸਿਰਜੇਜਗਤ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਦੇ ਦੱਸੇ ਰਸਤੇ ਅਨੁਸਾਰ ਵਿਚਰਨ ਵਾਲਾ ਤੇ ਨਾਮ ਦੀ ਕਮਾਈ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਹੀ ਬਣ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪ ਹੀ 'ਸਚਿਆਰ' ਨਹੀਂ ਬਣਦਾ ਸਗੋਂ ਉਸ ਦੇ ਹੋਰ ਸਾਰੇ ਸੰਗੀ ਸਾਥੀ ਵੀ ਉਸ ਦਾ ਅਨੁਸਰਣ ਕਰ ਕੇ ਮੁਕਤ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਮੰਦੇ ਅਮਲਾਂ ਕਾਰਨ ਦੁਨੀਆਂ ਉੱਤੇ ਆ ਕੇ ਸਭ ਕੁਝ ਭੁੱਲ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕਿੱਥੋਂ ਆਇਆ ਹੈ ਕਿੱਥੇ ਜਾਣਾ ਹੈ ਉਸ ਨੂੰ ਤਾਂ ਸਾਰਾ ਕੁਝ ਆਪਣਾ ਹੀ ਲੱਗਣ ਲੱਗ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਬਣਨ, 'ਤੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਤੇ ਸਮਝਾਉਣ ਲਈ ਜਨ ਸਾਧਾਰਨ ਦੀ ਰਹਿਨੁਮਾਈ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਸਮੁੱਚੀ ਮਾਨਵਤਾ ਨੂੰ ਉਪਦੇਸ਼ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਸਭ ਕੁਝ ਰੱਬ ਕਰਤਾ ਹੈ। ਸਭ ਕੁਝ ਅਕਾਲ ਪੁਰਖ ਦੀ ਰਜ਼ਾ ਵਿੱਚ ਹੋ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਜਨਮ-ਮਰਨ ਦਾ ਚੱਕਰ, ਆਵਾਗੌਣ, ਨਰਕ-ਸਵਰਗ, ਕਰਮ-ਕਾਂਡ, ਕਰਾਮਾਤ, ਨਿੱਜੀ ਸਵਾਰਥ, ਆਦਿ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਵੀ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਹਲੂਣਿਆ ਅਤੇ ਕਿਹਾ ਕਿ ਉਸ ਨੇ ਆਦਰਸ਼ਕ ਬਣਨ ਲਈ ਅੰਤਰ ਮੁੱਖਤਾਦੀ ਪਛਾਣ ਕਰਕੇ, ਸਹਿਹੋਂਦ ਨੂੰ ਅਪਣਾ ਕੇ, ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਲਾਲਚ ਤਿਆਗ ਕੇ ਜੀਵਨ ਸੰਘਰਸ਼ ਵਿੱਚ ਵਿਚਰਨਾ ਹੈ। ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਸੰਘਰਸ਼ ਨੂੰ ਛੱਡ ਕੇ ਜੰਗਲਾਂ, ਬਣਾਂ, ਵਿੱਚ ਦੌੜ ਕੇ ਕੋਈ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ, ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੀ ਸੇਵਾ ਕਰਦਿਆਂ ਹੀ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਬਣ ਕੇ ਜੀਵਨ ਮੰਜ਼ਿਲ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ

1 ਵਾਰਾਂ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ, ਵਾਰ ੧, ਪਉੜੀ: ੧੮
2 ਵਾਰਾਂ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ, ਵਾਰ ੧, ਪਉੜੀ: ੨੩
3 ਗੁਰਮੁੱਖ ਨਿਹਾਲ ਸਿੰਘ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ : ਜੀਵਨ ਯੁੱਗ ਅਤੇ ਉਪਦੇਸ਼, ਪੰਨਾ 155
4 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੧
5 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੧
6 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੧
7 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ੧
8 ਡਾ.ਇੰਦੂ ਭੂਸ਼ਨ ਬੈਨਰਜੀ, ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ, ਪੰਨੇ 15-16

9 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੨੬
10 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੧
11 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ੪
12 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੮
13 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੭
14 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੭
15 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੭
16 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੭
17 ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਅੰਗ ੭

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ-ਬਾਣੀ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ ਪੱਖ

ਰਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ*

ਮੱਧਕਾਲੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਇਕ ਗੌਰਵਮਈ ਸਿਰਜਨਾ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਹੁੰਦੀ ਹੈ, ਜਿਹੜੀ ਆਪਣੇ ਅਧੀਨ ਭਾਰਤੀ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪਾਂ ਨੂੰ ਸੰਮਲਿਤ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਮਨੁੱਖੀ-ਅਸਤਿਤਵ ਦੇ ਸੰਕਟ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਅਤੇ ਚਿੰਤਾ ਦੇ ਚਿੰਤਨ ਨੂੰ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਪਹਿਲੂ ਤੋਂ ਪਹਿਚਾਣਦੀ ਮਹਾਨਤਮ/ਸ੍ਰੇਸ਼ਟ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਦਰਜਾ ਰੱਖਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਮਹਾਨ ਸਿਰਜਨਾ ਨਿਰਸੰਦੇਹ ਸਮੇਂ ਤੇ ਸਥਾਨ ਦੀਆਂ ਸੀਮਾਵਾਂ ਤੋਂ ਪਾਰ ਸਰਬਕਾਲੀ ਮਹੱਤਤਾ ਤੇ ਪ੍ਰਾਸੰਗਿਕਤਾ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੈ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ-ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਅਗਵਾਈ ਦੇਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦੀ ਹਰ ਯੁੱਗ ਦੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਯੁੱਗ-ਬੋਧ ਦੀਆਂ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਤੇ ਸੀਮਾਵਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸੱਚ ਤੇ ਸੋਚ ਨੂੰ ਤਲਾਸ਼ਣ ਦਾ ਨਜਰੀਆ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਬਾਣੀਕਾਰ ਬੜੇ ਸੰਵੇਦਨਸ਼ੀਲਤਾ ਵਾਲੇ ਪਰਮ ਮਨੁੱਖ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮੂਲ ਸਰੋਕਾਰ ਮਾਨਵੀ ਦੁੱਖ-ਦਰਦਾਂ ਨੂੰ ਮਿਟਾ ਕੇ ਮਨੁੱਖ ਅੰਦਰ ਬ੍ਰਹਮ-ਸ਼ਕਤੀ ਨੂੰ ਸਾਕਾਰ ਕਰਨਾ ਸੀ।ਇਸੇ ਲਈ ਇਹ ਮੰਨਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਬਾਣੀ-ਸੰਵੇਦਨਾ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਬ੍ਰਹਮ ਹੈ ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਆਰ-ਪਾਰ ਮਨੁੱਖੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਅਸਲ ਵਿਚ ਬਾਣੀ-ਸੰਵੇਦਨਾ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਮਨੁੱਖ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਦੀ ਅਜਿਹੀ ਸੁਹਜਮਈ ਰਚਨਾ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੀ ਬੁਧ-ਵਿਵੇਕ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣਾ ਕਾਇਆ-ਕਲਪ ਕਰ ਸਕਦੀ ਹੈ।[1]

ਦਰਅਸਲ ਵੈਦਿਲ ਕਾਲ ਤੋਂ ਸਮਕਾਲ ਤੱਕ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ ਤੇ ਇਸ ਨੂੰ ਸਦੀਵੀ ਬਣਾਉਣ ਦੀ ਚਿੰਤਾ ਮਨੁੱਖੀ-ਚਿੰਤਨ ਦਾ ਅਭਿੰਨ ਅੰਗ ਰਹੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਸਾਰ ਹੀ ਪਦਾਰਥਕ-ਜਗਤ ਦੇ ਮੋਹ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਦਾ ਅਸਥਾਈਪਨ ਮਨੁੱਖੀ-ਜੀਵਨ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡਾ ਸੰਤਾਪ ਜਾਂ ਦੁਖਾਂਤ ਬਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਾਰਨ ਹੀ ਵਿਸ਼ਵ ਦੇ ਮਹਾਨ ਚਿੰਤਕਾਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸੁਚੇਤ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਾਰਜਾਂ ਤੇ ਕਰਵੱਤਾ ਪ੍ਰਤੀ ਜਤਨ ਕਰਨ ਦਾ ਨਿਰਦੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਿਰਦੇਸ਼ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੋ ਧਾਰਨਾਵਾਂ ਪ੍ਰਚੱਲਿਤ ਹੋਈਆਂ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਇਕ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਨਾਸ਼ਮਾਨ ਮੰਨਦੀ ਹੋਈ ਭੌਤਿਕ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਤਿਆਗ ਦਾ ਮਾਰਗ ਦੱਸਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਦੂਜੀ ਸੰਸਾਰ ਨੂੰ ਨਾਸ਼ਮਾਨ ਸਵੀਕਾਰਦੀ ਹੋਈ ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਨਿਰਲੇਪ (ਤਿਆਗ ਨਹੀਂ) ਹੋ ਕੇ ਵਿਚਰਨ ਲਈ ਸੰਦੇਸ਼ ਸੰਚਾਲਿਤ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਦੂਜੀ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਧਾਰਨਾ ਨਾਲ ਹੈ, ਜਿਸ ਅਧੀਨ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਮਨੁੱਖੀ-ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਉੱਤਮ ਮੰਨਦੀ ਹੋਈ ਇਸ ਦੇ ਵਸਤੂਗਤ-ਜਗਤ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਾਂ ਨੂੰ ਅਸਥਿਰ, ਅਸਤਿ ਤੇ ਕੂੜ ਸਵੀਕਾਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਮੋਹ ਦਾ ਅਧਾਰ ਨਿਰੋਲ ਅਗਿਆਨ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਕੂੜੁ ਰਾਜਾ ਕੂੜੁ ਪਰਜਾ ਕੂੜੁ ਸਭ ਸੰਸਾਰ॥
ਕੂੜੁ ਮੰਡਪ ਕੂੜੁ ਮਾੜੀ ਕੂੜੁ ਬੈਸਣਹਾਰੁ॥

(ਗੁਰੂ, ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-468)

ਇਹ ਕੂੜ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਅਗਿਆਨ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਨੁਸਾਰ ਮਨੁੱਖੀ ਦੁਖਾਂਤ ਦਾ ਮੂਲ ਕਾਰਨ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣ ਲਈ ਅੰਤਿਮ ਸੱਚ ਤੇ ਸਥਾਈ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਨੂੰ ਮੰਨਣ ਵਾਲੇ ਗੁਰੂ ਤੇ ਗੁਰੂ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜਿਤ ਬਾਣੀ ਦੀ ਅਗਵਾਈ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ। ਇਹ ਅਗਵਾਈ ਆਤਮਾ ਨੂੰ

*ਸਹਾਇਕ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ, ਡੀ. ਏ. ਵੀ. ਕਾਲਜ, ਸੈਕਟਰ-10, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ।

ਪਰਮ-ਆਤਮਾ ਨਾਲੋਂ ਵਿਛੜਨ ਦਾ ਗਿਆਨ ਦਿੰਦੀ ਹੋਈ ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਅਕਤੀਤਵ ਦਾ ਮੂਲਧਾਰ ਪਰਮ-ਆਤਮਾ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਨਾਲ ਪੂਰਨ ਅਭੇਦਤਾ ਹੀ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਮੂਲ ਪ੍ਰਯੋਜਨ ਹੈ।

ਸਭ ਮਹਿ ਜੋਤਿ ਜੋਤਿ ਹੈ ਸੋਇ॥
ਤਿਸ ਦੈ ਚਾਨਣਿ ਸਭ ਮਹਿ ਚਾਨਣੁ ਹੋਇ॥
ਗੁਰ ਸਾਖੀ ਜੋਤਿ ਪਰਗਟੁ ਹੋਇ॥

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-13)

ਪਰ ਦਿਲਚਸਪ ਗੱਲ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਨਿਰਾਸ਼ਾਵਾਦੀ ਜਾਂ ਭੈਅਦਾਇਕ ਸਰੂਪ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਹੋਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਮਨੁੱਖੀ-ਵੇਦਨਾ ਦਾ ਰੂਪ ਧਾਰਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ-ਹੋਂਦ ਦੀ ਬੁਨਿਆਦੀ ਤੇ ਅੰਤਿਮ ਹਕੀਕਤ ਵਜੋਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਜਿਹੜਾ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਨਿਰਾਸ਼ ਕਰਨ ਦੀ ਬਜਾਇ ਜੀਵਨ ਮਗਰੋਂ ਵੀ ਜੀਉਣ ਦੀ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਾਰਨ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਮਨੁੱਖੀ-ਦੇਹ ਦੀ ਮੌਤ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਸਦਾ 'ਜੀਵਨ ਤੇ ਮੌਤ' ਦੇ ਵਿਰੋਧੀ ਜੁੱਟਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਸਾਕਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਜਿਹੜਾ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਰੁਦਨ ਕਰਨ ਦੀ ਬਜਾਇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਵਿਕਾਰਾਂ ਦੇ ਤਿਆਗ, ਗਿਆਨ ਤੇ ਨੈਤਿਕਤਾ ਵਰਗੇ ਗੁਣਾਂ ਰਾਹੀਂ ਸੁੰਦਰ ਤੇ ਸਾਰਥਕ ਬਣਾਉਣ ਦਾ ਨਵੀਨ ਮਾਰਗ ਦੱਸਦਾ ਹੈ।

ਜੀਵਨ ਮਰਣਾ ਜਾਇ ਕੈ ਏਥੈ ਖਾਜੈ ਕਾਲਿ॥
ਜਿਥੈ ਬਹਿ ਸਮਝਾਈਐ ਤਿਥੈ ਕੋਇ ਨ ਚਲਿਓ ਨਾਲਿ॥

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-15)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਇਹ ਨਵੀਨ ਮਾਰਗ ਅਜਿਹੇ ਮਾਨਵ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਜਿਹੜਾ ਅਧਿਆਤਮਿਕ, ਸਮਾਜਿਕ, ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਪੱਖਾਂ ਤੋਂ ਆਪਣੇ ਪੂਰਵਜਾਂ ਤੋਂ ਬਿਲਕੁਲ ਨਿਖੜਵਾਂ ਹੈ।ਜੀਵਨ ਪ੍ਰਤੀ ਇਸ ਮਾਨਵ ਦਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਟ ਵਿਸ਼ਾਲ ਤੇ ਵੱਖਰਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਨਾ ਕੇਵਲ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਵਰਤਮਾਨਿਕ ਸਗੋਂ ਭਵਿੱਖਮੁਖੀ ਲੌਕਿਕ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਨਾਲ ਵੀ ਸੰਬੰਧ ਰੱਖਦਾ ਹੋਇਆ ਸਮੁੱਚੀ ਦੁਨੀਆਂ ਲਈ ਇਕ ਪ੍ਰੇਰਨਾ ਸਰੋਤ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਇਸ ਲੌਕਿਕ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਸਰੋਤ ਦਾ ਹੀ ਪ੍ਰਮਾਣ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਪ੍ਰਾਸੰਗਿਕਤਾ ਅਤੇ ਸਾਰਥਕਤਾ ਆਦਿ ਤੋਂ ਵਰਤਮਾਨ ਕਾਲ ਤੱਕ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਬਣੀ ਹੋਈ ਹੈ।

ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਹੋਇਆ ਮਾਨਵ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਲੌਕਿਕ ਮੁੱਲਾਂ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਸਰਬਕਾਲੀ ਮਹੱਤਤਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਜੇਕਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਕੇਵਲ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਪ੍ਰਸੰਗ ਨੂੰ ਹੀ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਿਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਇਹ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰਮਤਿ ਵਿਚਲਾ ਬ੍ਰਹਮ ਦਾ ਸਰੂਪ ਆਪਣੀਆਂ ਪੂਰਵਕਾਲੀ ਚਿੰਤਨਧਾਰਾਵਾਂ ਨਾਲੋਂ ਕਾਫ਼ੀ ਵੱਖਰਾ ਹੈ।ਭਾਵ ਕਿ ਇਹ ਨਿਰਗੁਣ ਸਰੂਪ ਵਾਲਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਲਈ ਸਵਰਗ ਨਰਕ ਦਾ ਲਾਲਚ ਦੇਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਧਰਤੀ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਕਰਮਭੂਮੀ ਦੱਸਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ 'ਮੁਕਤੀ' ਦਾ ਅਰਥ ਜੀਵਨ ਤੋਂ ਭੱਜਣ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਾਕਾਰ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਸਗੋਂ ਇਸ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆ ਨਿਰਲੇਪ ਰਹਿਣ ਦੇ ਅਰਥਾਂ ਵਿਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਕਾਰਨ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਮਾਇਆ ਭਰਪੂਰ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚਲੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਤ੍ਰਾਸਦਿਕ ਮੰਨਦੀ ਹੋਈ ਇਸ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣ ਲਈ ਮੌਤ ਜਾਂ ਤਿਆਗ ਦੀ ਬਜਾਇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਵੈ-ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਸਵੈ-ਚੇਤਨਾ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਵਿਚਰਦਿਆਂ ਹੋਇਆ ਨਿਰੇਲਪ ਰਹਿਣ (ਅੰਜੁਨ ਮਾਹਿ ਨਿਰੰਜਨੁ ਰਹੀਐ,।ਸਭ ਦੁਨੀਆ ਆਵਣ ਜਾਣੀਅਹਾ॥ ਵਿਚਿ ਦੁਨੀਆ ਸੇਵ ਕਮਾਈਐ॥) ਦਾ

ਮਾਰਗ ਦੱਸਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਜੋਗੀ ਤੇ ਭੋਗੀ ਹੋਣ ਦਾ ਦੋਹਰਾ ਚਰਿੱਤਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਬਾਰੇ ਤੇਜਵੰਤ ਸਿੰਘ ਗਿੱਲ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:

ਗੁਰਮਤਿ ਦੇ ਆਦਰਸਕਰਣ ਵਿਚੋਂ ਮਾਨਵ ਦਾ ਅਜਿਹਾ ਬਿੰਬ ਉਭਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਮਾਨਵ ਆਦਰਸ਼ਿਆਂ ਹੋਇਆ ਸਮੂਰਤ ਵਿਅਕਤੀ ਹੈ। ਇਕ ਵੇਲੇ ਆਦਰਸ਼ਿਆ ਤੇ ਸਮੂਰਤ ਹੋਣ ਕਾਰਣ ਇਹ ਵਿਅਕਤੀ ਜੋ ਗੁਰਮੁਖ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਤਿਬਿੰਬਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਉਤਪਾਦਕ ਵੀ ਹੈ ਤੇ ਉਪਯੋਗੀ ਵੀ ਹੈ।[2]

ਅਸਲ ਵਿਚ ਗੁਰਮੁਖ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਧੀਨ ਮਨਮੁਖ (ਜੋ ਮਨ ਦੇ ਵਿਕਾਰਾਂ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਨਹੀਂ) ਦੇ ਵਿਕਲਪ ਵਜੋਂ ਸਿਰਜਿਆ ਉਹ ਆਦਰਸ਼ਕ ਮਨੁੱਖ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਮਨ ਦੇ ਵਿਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਨਿਯੰਤਰਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਗਿਆਨ ਦੀ ਉੱਚ ਅਵਸਥਾ ਅਧੀਨ ਵਿਚਰਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਗਿਆਨ ਅਧੀਨ ਉੱਚ ਤੇ ਉੱਤਮ ਮਨੁੱਖ ਕੰਵਲ ਦੇ ਫੁੱਲ ਵਾਂਗ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਮਾਇਆ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੋਇਆ ਵੀ ਉਸ ਤੋਂ ਨਿਰਲੇਪ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਕਰਮ-ਸਿਧਾਂਤ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰੱਖਦਾ ਹੋਇਆ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਅਵਸਥਾ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰਮੁਖਤਾ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿਚ ਹੀ ਮੁਕਤੀ ਤੇ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਅਭੇਦਤਾ ਦੀ ਸਮਾਨਾਰਥੀ ਬਣ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਦਰਅਸਲ ''ਗੁਰਮੁਖ ਨੂੰ ਬਾਣੀ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਕਈ ਥਾਂਈ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦਾ ਰੂਪ ਵੀ ਮੰਨਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਤੌਰ 'ਤੇ 'ਨਿਰਵੈਰ' ਅਤੇ 'ਨਿਰਭਉ' ਦੇ ਰੱਬੀ ਚਿੰਨ੍ਹ ਗੁਰਮੁਖ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦਾ ਹਿੱਸਾ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਗੁਰਮੁਖ ਇਕ ਮਾਨਵ ਹੈ, ਜਿਸ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਕ ਬੰਧਨਾਂ ਉਪਰ ਸੁਭਾਵਕ ਸ੍ਵੈ-ਕਾਬੂ ਪਾਇਆ ਹੋਇਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।''[3] ਇਸ ਕਾਰਨ ਹੀ ਗੁਰਮੁਖ ਦੀ ਮਹਿਮਾ ਗੁਰਮਤਿ ਕਾਵਿ-ਧਾਰਾ ਵਿਚ ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ:

ਗੁਰਮੁਖਿ ਅਸਟ ਸਿਧੀ ਸਭਿ ਬੁਧੀ॥
ਗੁਰਮੁਖਿ ਭਵਜਲੁ ਤਰੀਐ ਸਚ ਸੁਧੀ॥
ਗੁਰਮੁਖਿ ਸਰ ਅਪਸਰ ਬਿਧਿ ਜਾਣੈ॥
ਗੁਰਮਖਿ ਪਰਵਿਰਤਿ ਨਰਵਿਰਤਿ ਪਛਾਣੈ।।
ਗੁਰਮੁਖਿ ਤਾਰੇ ਪਾਰਿ ਉਤਾਰੇ॥
ਨਾਨਕ ਗੁਰਮੁਖਿ ਸਬਦ ਨਿਸਤਾਰੇ॥

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-941)

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਗੁਰਮੁਖ-ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸਰੂਪ ਇਕਮਾਤਰ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਖੇਤਰ ਨਾਲ ਹੀ ਸੰਬੰਧ ਨਹੀਂ ਰੱਖਦਾ ਸਗੋਂ ਸਮਾਜਿਕ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਵੀ ਪੂਰਨ-ਰੂਪ ਵਿਚ ਕਾਰਜਸ਼ੀਲ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਸਮਾਜਿਕ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਇਹ ਮਨੁੱਖ ਜਾਤ-ਜਮਾਤ ਤੇ ਕਰਮ-ਕਾਂਡਾਂ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰੱਖਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਸਗਲ ਮਨੁੱਖੀ ਹਸਤੀਆਂ ਨੂੰ ਇਕ ਹੀ ਬ੍ਰਹਮ ਦੀ ਜੋਤ ਸਮਝਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪ੍ਰੇਮ ਤੇ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਮਾਨਵ ਕਿਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਸੰਪ੍ਰਦਾਇਕਤਾ ਤੋਂ ਰਹਿਤ ਆਤਮ ਤੋਂ ਪਰ ਤੱਕ ਦੀ ਯਾਤਰਾ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਸਮੁੱਚੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਕਲਿਆਣ ਬਾਰੇ ਸੋਚਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਲਈ ਪਰ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਹੱਕ ਮਾਰਕੇ ਖਾਣਾ ਧਾਰਮਿਕ ਤੇ ਸਦਾਚਾਰਕ ਨਿਯਮਾਂ ਦੇ ਵਿਪਰੀਤ ਹੈ।

ਹਕੁ ਪਰਾਇਆ ਨਾਨਕਾ ਉਸੂ ਸੂਅਰ ਉਸੁ ਗਾਇ॥
ਗੁਰੁ ਪੀਰੁ ਹਾਮਾ ਤਾ ਭਰੇ ਜਾ ਮੁਰਦਾਰੁ ਨ ਖਾਇ॥

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-141)

ਸਮਾਜਿਕ ਧਰਾਤਲ ਹੀ ਇਸ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਕਰਮਭੂਮੀ ਹੈ ਜਿਸ ਲਈ ਸਨਿਆਸ ਦਾ ਅਰਥ ਗ੍ਰਿਹਸਥ ਦਾ ਅਰਥ ਗ੍ਰਿਹਸਥ ਜੀਵਨ ਦੇ ਤਿਆਗ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਨਾ ਹੋਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਸੰਸਾਰ ਨਾਲ ਜੁੜਨ ਤੱਕ ਵਿਆਪਕ ਹੈ।ਇਸ ਲਈ ''ਗੁਰੂ ਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਿਚ ਪਰਵਾਨ ਚੜੇ ਸਰਬਪੱਖੀ, ਸੰਪੂਰਨ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ, ਦੈਵੀ ਗੁਣ, ਉਸਾਰੂ ਤੇ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਰੁਚੀਆਂ ਦਾ ਮਾਲਕ ਗੁਰਮੁਖ ਹੈ,''[4] ਜਿਹੜਾ

ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਵਿਚ ਰੁਕਾਵਟ ਬਣਨ ਵਾਲੀਆਂ ਹਰ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਕਰਮ-ਕਾਂਡੀ ਤੇ ਮਨੁੱਖ-ਦਵੈਸ਼ੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧੀ ਅਤੇ ਪ੍ਰੇਮ, ਸਤਿ, ਸੰਤੋਖ, ਦਇਆ, ਖਿਮਾ, ਗਿਆਨ, ਨਿਮਰਤਾ ਤੇ ਸੇਵਾ ਆਦਿ ਵਰਗੇ ਨੈਤਿਕ ਗੁਣਾਂ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੀ ਇਹ "ਨੈਤਿਕਤਾ 'ਹਾਉਮੈ' ਨੂੰ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦਾ ਮੂਲ ਮੰਨਦੀ ਹੈ। ਗੁਰਬਾਣੀ ਵਿਚ ਕਾਮ, ਕ੍ਰੋਧ, ਲੋਭ, ਮੋਹ, ਹੰਕਾਰ ਨੂੰ ਬਾਰ ਬਾਰ, ਪੰਜ ਵਿਕਾਰ, ਪੰਜ ਚੋਰ ਆਦਿਕ ਕਿਹਾ ਗਿਆ ਹੈ ਅਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੱਸ ਵਿਚ ਕਰਨ ਉੱਤੇ ਅਤਿਅੰਤ ਬਲ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਪੰਜੇ ਵਿਕਾਰ ਹਉਮੈ-ਭਾਵ ਦੀ ਉਪਜ ਹਨ। ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਹਉਮੈ ਦੇ ਦੀਰਘ ਰੋਗ ਦੀ ਜਾਂਚ-ਪੜਤਾਲ ਕਰ ਕੇ ਇਸ ਦਾ ਇਲਾਜ ਲੱਭਣ ਦੀ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਨੇ ਜੋ ਇਲਾਜ ਸੁਝਾਇਆ ਹੈ, ਉਹ 'ਹੁਕਮ' ਦੀ ਪਛਾਣ ਹੈ; "ਨਾਨਕ ਹੁਕਮੈ ਜੇ ਬੁਝੈ ਤਾ ਹਉਮੈ ਕਹੈ ਨ ਕੋਇ।" ਭਾਖੰਡ ਇਕ ਹੋਰ ਬੁਰਾਈ ਹੈ, ਜਿਸ ਸੰਬੰਧੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੀ ਦੋ-ਹਰਫ਼ੀ ਤਾੜਨਾ ਹੈ: "ਛੋਡੀਲੇ ਪਾਖੰਡਾ।" ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਿੰਦਾ, ਕਠੋਰਤਾ, ਪਰਾਇਆ ਹੱਕ ਤੇ ਵਹਿਮਾਂ-ਭਰਮਾਂ ਨੂੰ ਤਿਆਗਣ ਦੇ ਆਦੇਸ਼ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹਨ।"[5]

ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਇਹ ਨਵੀਨ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਕਿਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਜਾਤ, ਜਮਾਤ, ਬਰਾਦਰੀ ਤੇ ਸੰਪ੍ਰਦਾਇਕ ਵੰਡ ਨੂੰ ਮੂਲ ਤੋਂ ਖਾਰਿਜ਼ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਮਨੂਵਾਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀਉੱਤਰ ਵਿਚ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਦਾ ਇਕ ਨਵੀਨ ਪ੍ਰਵਚਨ ਸਿਰਜਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਪ੍ਰਵਚਨ ਆਪਣੇ ਧਾਰਮਿਕ ਮੁਹਾਂਦਰੇ ਅਧੀਨ ਸਮੁੱਚੀ ਮਨੁੱਖਤਾ ਨੂੰ ਇਕ ਹੀ ਜੋਤ ਦੀ ਉਪਜ ਮੰਨਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਤਾਰਕਿਕ ਢੰਗ ਨਾਲ ਦਲਿਤ ਤੇ ਦਮਿਤ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਉੱਚਾ ਚੁੱਕਣ ਦਾ ਜਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਇਤਿਹਾਸਕ ਵਿਕਾਸ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਅਧੀਨ ਵਧੇਰੇ ਕਾਰਜਸ਼ੀਲ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਸਮਾਜਿਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਸਦਾ ਹਾਸ਼ੀਆਗਤ ਹੀ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਸਮਕਾਲੀ ਸਥਾਪਿਤ ਸਮਾਜਿਕ ਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਵਿਵਸਥਾ ਦਾ ਤਿੱਖਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਮਨੁੱਖ-ਦਵੈਸ਼ੀ ਸਥਾਪਿਤ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੇ ਸਮਾਨੰਤਰ ਮਨੁੱਖ-ਹਿਤੈਸ਼ੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਉਭਾਰਦੀ ਹੈ, ਜਿਹੜਾ ਉੱਚੀਆਂ ਨੈਤਿਕ ਜਾਂ ਸਦਾਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਉਪਰ ਉਸਰਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਮਾਣ ਵਜੋਂ :

ਨੀਚਾ ਅੰਦਰਿ ਨੀਚ ਜਾਤਿ ਨੀਚੀ ਹੂ ਅਤਿ ਨੀਚੁ॥
ਨਾਨਕੁ ਤਿਨ ਕੈ ਸੰਗਿ ਸਾਥਿ ਵਡਿਆ ਸਿਉ ਕਿਆ ਰੀਸ॥
ਜਿਥੈ ਨੀਚ ਸਮਾਲੀਅਨਿ ਤਿਥੈ ਨਦਰਿ ਤੇਰੀ ਬਖਸੀਸ॥

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-15)

ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਸਮਕਾਲੀ ਵਿਵਸਥਾ ਦੇ ਅਧੀਨ ਹਾਸ਼ੀਆਗਤ ਹੋ ਚੁੱਕੀ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਵੀ ਤਰਕਪੂਰਨ ਵਿਵੇਚਨ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਵੇਚਨ ਅਧੀਨ ਗੁਰੂ ਕਵੀਆਂ ਨੇ ਨਾ ਕੇਵਲ ਵਿਚਾਰਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ (ਸੋ ਕਿਉ ਮੰਦਾ ਆਖਿਐ ਜਿਤ ਜੰਮੇ ਰਜਾਨ) ਸਮਾਜਿਕ ਸੰਕਟ ਵਿਚ ਗ੍ਰਸਤ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ ਸਗੋਂ ਔਰਤ ਪ੍ਰਤੀ ਸਥਾਪਿਤ ਵਸਤੂਗਤ-ਬਿੰਬ ਨੂੰ ਤੋੜਕੇ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਔਰਤ ਤੇ ਮਰਦ ਦੀ ਬਰਾਬਰੀ ਦਾ ਨਵੀਨ ਸੰਕਲਪ ਵੀ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਲਈ ਗੁਰੂ ਕਵੀਆਂ ਨੇ ਇਕ ਅਜਿਹੀ ਕਲਾਤਮਿਕ ਜੁਗਤ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜਿਹੜੀ ਉੱਚੇ ਤੇ ਉੱਤਮ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਨੂੰ ਮਰਦ ਅਤੇ ਨੀਵੀਂ ਤੇ ਨਿਗੂਣੀ ਆਤਮਾ ਨੂੰ ਔਰਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਚਿਤਰਨ ਦੀ ਹੈ। ਸਤੱਹੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਵੇਖਦਿਆਂ ਇਹ ਮੈਟਾਫ਼ਰ ਸਮਾਜ ਦੀ ਲਿੰਗ ਅਸਮਾਨਤਾ ਨੂੰ ਹੀ ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬਤ ਕਰਦੇ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਪਰ ਗਹਿਨ ਨਜ਼ਰੀਏ ਤੋਂ ਇਹ ਰੂਪਕ ਇਕ ਡੂੰਘੀ ਮਨੋਵਿਗਿਆਨਿਕ-ਸਰੰਚਨਾ ਦੀ ਸਮਝ ਵੱਲ ਸੰਕੇਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਸਮਝ ਔਰਤ ਦੀ ਮਰਦ (ਮਰਦ ਸਮੇਂ ਦੇ ਇਕ ਬਿੰਦੂ 'ਤੇ ਵੀ ਵਿਭਾਜਿਤ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ) ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਇਕ ਬਿੰਦੂ ਉੱਤੇ ਸੰਪੂਰਨ ਹੋਣ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਅਤੇ ਸਿਰਜਨਾਤਮਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਨੂੰ ਪੂਰਨ ਸ਼ਿੱਦਤ

ਨਾਲ ਪ੍ਰੇਮ ਕਰਨ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕ-ਸ਼ਕਤੀ ਦੇ ਰੂਪ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਾਉਂਦੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਡਾ. ਜਗਦੀਸ਼ ਕੌਰ ਲਿਖਦੀ ਹੈ:

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਮਹਿਲਾ/ਇਸਤਰੀ/ਜੀਵਆਤਮਾ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਇਹ ਰਾਹ ਨਿਮਰਤਾ ਤੋਂ ਅੱਗੇ ਇਕ ਹੋਰ ਸਿਗਨੀਫਾਈਡ ਤੱਕ ਪੁੱਜ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਥੇ ਪਰਮ ਪੁਰਖ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾਤਮਿਕਤਾ ਵਿਚ ਅਤਿ ਸ਼ਿੱਦਤ ਨਾਲ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋਣ ਦੀ, ਲੀਨ ਹੋਣ ਦੀ ਚਾਹ ਪਈ ਹੈ। ਸਿਰਜਨਾਤਮਿਕਤਾ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਨੂੰ ਇਕ ਔਰਤ ਤੋਂ ਵੱਧ ਹੋਰ ਕੌਣ ਸਮਝ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸੋ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਉਹੋ ਪਲੈਟਫਾਰਮ ਲੱਭ ਲਿਆ ਹੈ, ਉਹ ਧੁਰਾ ਲੱਭ ਲਿਆ ਹੈ ਜਿਥੇ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਨਾਲ ਗੁਣਾਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਪਾਈ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਨੁਕਤੇ ਤੋਂ ਵੀ ਉਸਦੀ ਵਿਸ਼ਾਲਤਾ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਉਸ 'ਪਰ' ਵਿਚ 'ਆਤਮ' ਨੂੰ ਲੀਨ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਲਈ ਸਾਰੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਸੁਭਾਅ ਹੈ।[6]

ਪ੍ਰੰਤੂ ਇਸ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਕਰਨੀ ਤੇ ਕਥਨੀ ਦਾ ਸੁਮੇਲ ਬਿਠਾਉਂਦਿਆਂ ਮੌਤ ਦੇ ਖੌਫ ਤੋਂ ਪਾਰਗਾਮੀ ਹੋ ਕੇ ਨਿਜਾਮ ਦੀ ਨਾਬਰੀ ਅੱਗੇ ਦ੍ਰਿੜਤਾ ਨਾਲ ਖਲੋਣ ਦਾ ਹੈ:

ਜਉ ਤਉ ਪ੍ਰੇਮ ਖੇਲਣ ਕਾ ਚਾਉ।
ਸਿਰੁ ਧਰਿ ਤਲੀ ਗਲੀ ਮੇਰੀ ਆਉ।

(ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ-1412)

ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਨੇ ਨਾਰੀ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚਲੇ ਨਕਾਰਾਤਮਿਕ ਸਮਾਜਿਕ-ਬਿੰਬ ਨੂੰ ਤੋੜਕੇ ਇਸ ਨੂੰ ਨਵੀਨ ਮਾਨਸਿਕ-ਬਿੰਬ ਵਿਚ ਵਿਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਦਾ ਜਤਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਲ ਜਿਥੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਨੇ ਆਪਣੇ ਅਧਿਆਤਮਵਾਦੀ ਸਰੂਪ ਅਤੇ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਸੁਭਾਅ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖੀ ਨਰ-ਮਾਦਾ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਮਸਲਿਆਂ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਿਆ ਹੈ ਉਥੇ ਇਸ ਧਾਰਾ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਮਸਲਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਅਧਿਐਨ-ਵਸਤੂ ਬਣਾਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਪ੍ਰਭੂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧ, ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੰਸਾਰ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਾਂ ਦੀਆਂ ਵਿਭਿੰਨ ਪਰਤਾਂ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਦੀ ਹੈ। ਪਰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਇਸ ਦਾ ਅੰਤਿਮ ਪ੍ਰਯੋਜਨ ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਰਾਹੀਂ ਮੁਕਤੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਦਾ ਰਾਹ ਦੱਸਣਾ ਹੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਭਾਰਤੀ ਚਿੰਤਨਧਾਰਾ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਯਾਤਰਾ ਲਈ ਵਿਭਿੰਨ ਮਾਰਗਾਂ ਦੀ ਸੋਝੀ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਹੈ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਆਪਣੇ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਪਹਿਲੂ ਅਧੀਨ ਇਨ੍ਹਾਂ ਮਾਰਗਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜ-ਖੰਡਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ।ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੰਜ-ਖੰਡਾਂ ਵਿਚੋਂ ਪਹਿਲੇ 'ਧਰਮ-ਖੰਡ' ਅਧੀਨ ਸਾਧਕ ਭੌਤਿਕ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਵਿਚਰਦਾ ਹੋਇਆ ਧਾਰਮਿਕਤਾ ਦੀ ਪਾਲਣਾ ਕਰਦਾ ਧਰਤੀ ਨੂੰ ਧਰਮਸ਼ਾਲ ਦੇ ਸਮਾਨੰਤਰ ਮੰਨਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨੈਤਿਕ ਗੁਣ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਖੰਡ 'ਗਿਆਨ ਖੰਡ' ਅਧੀਨ ਸਾਧਕ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਸੰਬੰਧੀ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਬ੍ਰਹਿਮੰਡ ਦੀ ਅਨੇਕਤਾ ਵਿਚੋਂ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਏਕਤਾ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਲੀਲ੍ਹਾ ਦੇਖਕੇ ਵਿਸਮਾਦ ਵਿਚ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਤੀਜੇ ਖੰਡ 'ਸਰਮ ਖੰਡ' ਵਿਚ ਸਾਧਕ ਦੀ ਆਤਮਾ ਸਰਮ (ਸੰਘਰਸ਼) ਰਾਹੀਂ ਸੁੰਦਰਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਨਤਾ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਚੌਥੇ ਖੰਡ 'ਕਰਮ ਖੰਡ' ਅਧੀਨ ਸਾਧਕ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀਆਂ ਬਖਸ਼ਿਸ਼ਾਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਮਾਇਆ ਤੇ ਆਵਾਗਵਨ ਦੇ ਚੱਕਰ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਚਲਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪੰਜਵੇਂ ਖੰਡ 'ਸੱਚ ਖੰਡ' ਅਧੀਨ ਸਾਧਕ ਦੈਵੀ ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਕੁਦਰਤ ਦੀ ਕਾਦਰ ਨੂੰ ਮਾਣਦਾ ਪਰਮ-ਆਤਮਾ ਵਿਚ ਅਭੇਦ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਪੰਜ-ਖੰਡਾਂ ਅਧੀਨ ਅਧਿਆਤਮਕ-ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਯਾਤਰਾ ਨੂੰ ਕ੍ਰਮਵਾਰ ਉਲੀਕਦੀ ਹੋਈ ਉਸਦੇ ਨਿਰੰਤਰ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾਲ 'ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਦੇਵਤੇ' ਤੱਕ ਦੇ

ਧਰਾਤਲ ਉੱਤੇ ਲੈ ਜਾਣ ਦਾ ਜਤਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਖੰਡਾਂ ਬਾਰੇ ਡਾ. ਇੰਦਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਵਾਸੂ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:

ਇਨ੍ਹਾਂ ਖੰਡਾਂ ਵਿਚ ਪ੍ਰਭੂ ਮਿਲਾਪ ਵੱਲ ਆਤਮਿਕ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਪੰਧ ਉਲੀਕਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਆਤਮਿਕ ਪਾਂਧੀ ਦੀ ਆਤਮਾ ਧਰਮ ਖੰਡ ਵਿਚ ਕਰੱਤਵ ਪਾਲਣ ਰਾਹੀਂ ਉੱਚ ਸਦਾਚਾਰ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਗਿਆਨ ਖੰਡ ਵਿਚ ਅਸੀਮ ਆਤਮਾ ਅਸੀਮਤਾ ਦੀਆਂ ਹੱਦਾਂ ਨੂੰ ਛੂੰਹਦੀ ਹੈ। ਸਰਮ ਖੰਡ ਵਿਚ ਪਾਲਣਾ ਰਾਹੀਂ ਸੁਹਜਾਤਮਿਕ ਰੂਪ ਧਾਰਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕਰਮ ਖੰਡ ਵਿਚ ਪ੍ਰਭੂ ਬਖ਼ਸ਼ਿਸ਼ ਰਾਹੀਂ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਬਣਦੀ ਹੈ ਤੇ ਸੱਚ ਖੰਡ ਵਿਚ ਪ੍ਰਭੂ ਨਾਲ ਪੂਰਨ ਅਭੇਦਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਲੈਂਦੀ ਹੈ। ਇਲਾਹੀ ਜੋਤਿ ਵਿਚ ਲੀਨ ਹੋ ਕੇ ਪੂਰਨ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।[7]

ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸਮੁੱਚੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਭਾਰਤੀ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪਾਂ ਨੂੰ ਤਿਆਗਦੀ ਤੇ ਸਵੀਕਾਰਦੀ ਹੋਈ ਮਨੁੱਖੀ-ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਜੀਵਨ ਪ੍ਰਤੀ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਪਹਿਲੂਆਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਲੇਵਰ ਵਿਚ ਲੈਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਕ ਅਜਿਹੇ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕਰਦੀ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਸਮਾਜਿਕ, ਰਾਜਨੀਤਿਕ, ਧਾਰਮਿਕ, ਨੈਤਿਕ ਆਦਿ ਪੱਖ ਤੋਂ ਉੱਤਮ ਅਤੇ ਉੱਚ ਹੁੰਦਾ ਹੋਇਆ ਮਨੁੱਖ-ਹਿਤੈਸ਼ੀ ਕਾਰਜ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਮਨੁੱਖ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਭਾਣੇ ਨੂੰ ਮੰਨਦਾ ਹੋਇਆ ਇਕੋਂ ਸਮੇਂ ਭਗਤ, ਗ੍ਰਹਿਸਥੀ, ਕਿਰਤੀ, ਗਿਆਨੀ ਤੇ ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਉਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਕ ਜੋਤ ਦੇ ਅਨੁਭਵ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰਦਾ ਸਵੈ-ਪਛਾਣ ਵੱਲ ਮੁੜਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਮਨੁੱਖ ਪੂਰਵਲੇ ਭਾਰਤੀ ਦਰਸ਼ਨ ਦੇ ਉਸ ਮਨੁੱਖ ਨਾਲੋਂ ਵਧੇਰੇ ਉੱਦਮੀ, ਸਵੈ-ਨਿਰਭਰ ਅਤੇ ਸੰਤੋਖੀ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਸੰਸਾਰਿਕ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਤਿਆਗ ਕੇ ਹੀ ਮੁਕਤੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਦੇ ਰਾਹ 'ਤੇ ਤੁਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਡਾ. ਵੀ .ਐੱਨ. ਤਿਵਾੜੀ ਗੁਰਮਤਿ ਧਾਰਾ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਦਾ ਸਾਰੰਸ਼ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:

(ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ) ਮਨੁੱਖ, ਸਮਾਜ ਤੇ ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਤਿੰਨ ਪੱਖਾਂ ਦੀ ਵਿਆਖਿਆ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਵਿਹਾਰ ਲਈ ਦਿਸ਼ਾ ਨਿਰਦੇਸ ਵੀ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭੂ ਨਾਲ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਅੰਤਿਮ ਮੇਲੇ ਲਈ ਵੀ ਤਿਆਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਉਪਾਸਨਾ ਦਾ ਇਕੋ ਢੰਗ ਉਹ ਅੱਗੇ ਅਰਦਾਸ ਹੈ ਪਰ ਇਹ ਪ੍ਰਸੰਸਾ ਦਾ ਕਾਰਜ ਜੀਵਨ ਦਾ ਨਿਸ਼ਕ੍ਰਿਆ ਰਹੱਸਵਾਦ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਸੰਸਾਰਿਕ ਸੰਬੰਧਾਂ ਅਧੀਨ ਕਿਰਿਆਸ਼ੀਲ ਹੈ। ਇਹ ਕਿਰਿਆਸ਼ੀਲ ਜੀਵਨ ਦਾ ਤਰੀਕਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰਬਾਣੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸੰਬੰਧਾਂ, ਉਸ ਦੇ ਆਪਣੇ-ਆਪ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਾਂ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਆਪਣੇ ਪਰਿਵਾਰ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਾਂ ਦੇ ਤਿੰਨ ਪੱਖਾਂ ਨੂੰ ਵੇਖਦੀ ਹੈ। ਸਿੱਖ ਸ਼ਾਸਤਰਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਇਕ ਸੱਚਾ ਮਨੁੱਖ ਜਾਂ ਗੁਰਮੁਖ ਉਹ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਨਿਮਨ ਮਾਨਵੀ ਇੱਛਾਵਾਂ ਦੇ ਖਿਲਾਫ਼ ਲੜਾਈ ਛੇੜੇ, ਆਪਣੇ ਮਨ ਵਿਚ ਰੱਬੀ ਡਰ ਨੂੰ ਥਾਂ ਦੇਵੇ ਅਤੇ ਬੇਖੌਫ਼ ਹੋ ਕੇ ਸਮਾਜਿਕ, ਸਭਿਆਚਾਰਕ, ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਬੁਰਾਈ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਲੜੇ।[8]

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚਲੇ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਨਵੀਨ ਬਿੰਬ ਵਿਭਿੰਨ ਪਸਾਰਾਂ ਤੇ ਪਰਤਾਂ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ ਸਰਬਕਾਲੀ ਸਾਰਥਕਤਾ ਵੀ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਬਿੰਬ ਤਨਾਉ-ਗ੍ਰਸਤ ਮਨੁੱਖੀ-ਜੀਵਨ ਪ੍ਰਤੀ ਨਿਰਾਸ਼ਾ ਦੇ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਬਜਾਇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਸਾਰਥਕਤਾ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਸੰਚਾਰਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਵਿਕਾਰਾਂ ਦੇ ਤਿਆਗ, ਸੰਜਮ, ਗਿਆਨ ਤੇ ਨੈਤਿਕ ਗੁਣਾਂ ਆਦਿ ਦੇ ਸਹਾਰੇ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਸਿੱਖ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨਾਂ ਦਾ ਜੀਵਨ ਸੰਘਰਸ਼ ਵੀ (ਜੋ ਕਰਨੀ ਤੇ ਕਥਨੀ ਦੀ ਸੁਮੇਲ ਹੈ) ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਦਮਨਕਾਰੀ ਵਿਵਸਥਾ ਨਾਲ ਸੰਘਰਸ਼ ਤੇ ਮਾਨਸਿਕ ਅਵਸਥਾ ਦੀ ਉੱਚਤਾ ਦਾ ਹੀ ਸੰਕੇਤ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਧਰਮ ਸੰਕਟ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਮਨੁੱਖੀ-ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਅਤੇ ਨਿਰਣੇ ਲੈਣ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੇ ਅਰਥ ਸੰਚਾਲਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਆਪਣੇ ਰਚਨਾਹਾਰੇ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵਾਂਗ ਹੀ ਆਪਣੇ ਸਰੂਪ ਤੇ ਸੁਭਾਅ ਪੱਖੋਂ ਆਤਮ ਕਲਿਆਣ ਦੀ

ਬਜਾਇ ਪਰ ਕਲਿਆਣ ਨੂੰ ਮਹੱਤਵ ਦਿੰਦੀ ਹੋਈ ਆਰੰਭ ਤੋਂ ਮਨੁੱਖ-ਹਿਤੈਸ਼ੀ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਦੀ ਧਾਰਨੀ ਰਹੀ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ:

1 ਜਸਪਾਲ ਕੌਰ ਕਾਂਗ ਤੇ ਬਲਜੀਤ ਕੌਰ, ਬਾਣੀ ਸੰਵੇਦਨਾ, ਪੰਨਾ-9
2 ਉਧਰਿਤ ਅਮਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਕਾਂਗ, ਮੱਧਕਾਲੀ ਸਾਹਿਬ ਚਿੰਤਨ, ਪੰਨਾ-32
3 ਉਹੀ, ਪੰਨਾ-53
4 ਬਲਦੇਵ ਸਿੰਘ ਬੱਦਨ, ਗੁਰਬਾਣੀ ਚਿੰਤਨ, ਪੰਨਾ-22
5 ਵਜ਼ੀਰ ਸਿੰਘ, 'ਸਿੱਖ-ਧਰਮ ਦਾ ਨੈਤਿਕ ਪੱਖ', ਸਿੱਖ ਫ਼ਲਸਫ਼ੇ ਦੀ ਰੂਪ ਰੇਖਾ,ਸੰਪਾ. ਪ੍ਰੀਤਮ ਸਿੰਘ, ਪੰਨਾ-156
6 ਡਾ. ਜਗਦੀਸ਼ ਕੌਰ, ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਕਾਵਿ ਦਰਸ਼ਨ, ਪੰਨਾ-80
7 ਇੰਦਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਵਾਸੂ, ਗੁਰਮਤਿ ਤੇ ਸੂਫ਼ੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸੰਕਲਪ, ਪੰਨਾ-203
8 V.N. Tewari, Gurbani and Man, Concept of Man in Philosophy, Edt. By R. A. Sinari, P-164

ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਦੌਰ ਦੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ : ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਦੇ ਬਿੰਬ ਵਜੋਂ

ਡਾ. ਜਸਬੀਰ ਸਿੰਘ*

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੀਆਂ ਸਿੱਖਿਆਂਵਾਂ ਦਾ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪਹਿਲੂ, ਧਾਰਮਿਕ ਪਹਿਲੂ ਵਾਂਗ ਬਹੁਤ ਹੀ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਹੈ।[1] ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਰਾਜਨੀਤਕ ਖਿਆਲਾਂ ਬਾਰੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਨੇ ਵੱਖੋ ਵੱਖਰੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਤੋਂ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਇਆ ਹੈ। ਕੁਝ ਵਿਦਵਾਨ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਤੱਕ ਹੀ ਸੀਮਤ ਕਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਜੇ. ਡੀ. ਕਨਿੰਘਮ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਸੁਧਾਰਾਂ ਦੇ 'ਤਤਕਾਲੀਨ ਪ੍ਰਭਾਵ ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਸਦਾਚਾਰਿਕ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸਨ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤੀ ਤਰੱਕੀ ਬਾਰੇ ਸ਼ਾਇਦ ਉਹਨਾਂ ਕੋਲ ਸਪੱਸ਼ਟ ਵਿਚਾਰ ਨਹੀਂ ਸਨ।'[2] ਪਰ ਇਸ ਪੱਖ ਨੂੰ ਅੱਖੋ ਪਰੋਖੇ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਕਿ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਰਾਜਨੀਤਕ ਫਲਸਫੇ ਨਾਲ ਲਬਰੇਜ਼ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜਿੱਥੇ ਸ਼ਾਸਕ ਤੇ ਉਸ ਦੇ ਰਾਜ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ ਦੀਆਂ ਅਯੋਗਤਾਂਵਾਂ ਬਾਰੇ ਚਿੰਤਤ ਸਨ ਉੱਥੇ ਹੀ ਉਹ ਲੋਕਾਈ ਦੀ ਅਗਿਆਨਤਾ 'ਤੇ ਸਵਾਲ ਵੀ ਉਠਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਪਹਿਲੇ ਮੱਧਕਾਲੀ ਸੰਤ ਸਨ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਯੁੱਧ ਨੂੰ ਨਕਾਰਿਆ ਅਤੇ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ ਨੂੰ ਫਿਟਕਾਰਿਆ।[3] ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰਕ ਲੋੜਾਂ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਪੜਚੋਲਦੇ ਹੋਏ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ "ਇਹ ਆਮ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ ਡੂੰਘੀ ਲਗਨ ਵਾਲੇ ਅਤੇ ਅਮਨ ਪਸੰਦ ਵਿਅਕਤੀ ਸਨ ਅਤੇ ਉਹ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਸੰਸਾਰਕ ਲੋੜਾਂ ਬਾਰੇ ਨਹੀਂ ਸਨ ਸੋਚਦੇ। ਇਹ ਬਿਲਕੁਲ ਗਲਤ ਵਿਚਾਰ ਹੈ"।[4]

ਏ. ਸੀ. ਬੈਨਰਜੀ ਇਹਨਾਂ ਦੋਵਾਂ ਪਹਿਲੂਆਂ ਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਉਂਦਾ ਦਿਖਾਈ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਨੇਤਾ ਸਨ ਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਸਿੱਧਾ ਉਦੇਸ਼ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਪੁਨਰ-ਸੁਰਜੀਤੀ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਪਰੰਤੂ ਮੱਧਕਾਲੀਨ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਭ ਧਾਰਮਿਕ ਆਗੂਆਂ ਤੋਂ ਵਿਭਿੰਨ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸਮਕਾਲੀਨ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਬਾਰੇ ਡੂੰਘੀ ਸਮਝ/ਜਾਣਕਾਰੀ ਸੀ। ਕੁਸ਼ਾਸਨ ਅਤੇ ਅਸੁਰੱਖਿਆ ਦਾ ਵਾਤਾਵਰਨ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਰੋਜ਼ਮਰ੍ਹਾ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਉਸ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਆਗੂ 'ਚ ਇਹ ਸਭ ਹੋਣਾ ਕੁਦਰਤੀ ਸੀ ਜਿਸ ਦਾ ਧਿਆਨ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਸੰਨਿਆਸ ਤੋਂ ਦੂਰ ਆਮ ਲੋਕਾਈ 'ਤੇ ਕੇਂਦਰਿਤ ਸੀ। ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਹੇ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਡੂੰਘੀ ਹਮਦਰਦੀ ਸੀ। ਮਨੁੱਖਾਂ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਇਸ ਦੁਖਾਂਤਕ ਬਿਰਤਾਂਤ ਦੀ ਗੱਲ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਕਰਦੇ ਹਨ।[5] ਪੰਜਾਬ ਗਰਕ ਰਿਹਾ ਸੀ। "ਵਿਚਾਰ ਸੀ ਤਾਂ ਅਮਲ ਗੈਰਹਾਜਰ ਸੀ; ਆਲੋਚਨਾ ਸੀ ਤਾਂ ਕਿਰਤੀ ਹੋਣ ਦਾ ਮਾਣ ਨਹੀਂ ਸੀ; ਯੋਧਾ ਸੀ ਤਾਂ ਰਹਿਮ ਨਹੀਂ ਸੀ; ਭਗਤੀ ਭਾਵਨਾ ਸੀ ਤਾਂ ਨਾਇਨਸਾਫੀ ਖਿਲਾਫ ਲੜਨ ਦਾ ਮਾਦਾ ਨਹੀਂ ਸੀ; ਅਵਤਾਰ, ਭਗਤ, ਜੋਗੀ ਦਰਵੇਸ਼ ਸਨ ਤਾਂ ਭਵਿੱਖ ਡੋਲਣ ਵਾਲਾ ਕੋਈ ਸਮਰੱਥ ਭਾਈਚਾਰਾ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਇਹਨਾਂ ਮਾਰਖੋਰੇ, ਉਜੱਡ, ਕਪਟ ਦੇ ਸੌਦਾਗਰਾਂ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਕੂੜ ਦੀ ਪਾਲ ਨਾਲ ਮੱਥਾ ਲਾਉਣ ਲਈ 'ਕਿਵ ਸਚਿਆਰਾ ਹੋਈਐ' ਦਾ ਬੁਲੰਦ ਇਖਲਾਕ ਬੋਲਾ ਉਠਿਆ ਤੇ ਚਹੁਮ ਕੂੰਟੀਂ ਗੂੰਜ ਗਿਆ।"[6] ਲੋਧੀਆਂ ਨੂੰ ਕਾਇਰ ਅਤੇ ਬਾਬਰ ਨੂੰ ਜਾਬਰ ਕਹਿਣ ਦਾ ਸਾਹਸ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਸਾਨੂੰ ਵਿਰਾਸਤ ਵਿਚ ਦਿੱਤਾ। ਤਕੜੇ ਦੀ ਲੜਾਈ 'ਚ ਆਵਾਮ ਤੇ ਬੇਕਸੂਰੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਦਰਦ ਨੂੰ 'ਏਤੀ ਮਾਰ ਪਈ ਕੁਰਲਾਣੈ ਤੈਂ ਕੀ ਦਰਦੁ ਨਾ ਆਇਆ'[7] ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਆਸਾਨੀ ਨਾਲ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਗੋਕਲ ਚੰਦ ਨਾਰੰਗ ਦੇ ਕਥਨ ਅਨੁਸਾਰ ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਦੀ 'ਤਲਵਾਰ' ਨੂੰ 'ਲੋਹਾ' ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਹੀ ਮੁਹੱਈਆ

* ਸਹਾਇਕ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ, ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਭਾਗ, ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ

ਕਰਵਾਇਆ ਸੀ।[8] ਇੰਦੂ ਭੂਸ਼ਣ ਬੈਨਰਜੀ ਦੀ ਕਿਤਾਬ ਦਾ ਤਾਂ ਸਿਰਲੇਖ ਹੀ 'ਖਾਲਸੇ ਦਾ ਵਿਕਾਸ' ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਦਾ ਮਤ ਹੈ ਕਿ ਭਵਿੱਖ ਦੇ ਸਿੱਖ 'ਰਾਸ਼ਟਰ' ਦਾ ਉਭਾਰ ਅਸਲ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੁਆਰਾ ਰੱਖੀ ਨੀਂਹ ਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਹੀ ਹੋਇਆ।[9] ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਆਪਣੇ ਮਿਸ਼ਨ ਦੇ ਰਾਹੀ ਤੋਂ ਵੀ ਸਾਹਸ ਦੀ ਤਵੱਕੋ ਕਰਦੇ ਹਨ:

ਜਉ ਤਉ ਪ੍ਰੇਮ ਖੇਲਣ ਕਾ ਚਾਉ॥ ਸਿਰੁ ਧਰਿ ਤਲੀ ਗਲੀ ਮੇਰੀ ਆਉ॥
ਇਤੁ ਮਾਰਗਿ ਪੈਰੁ ਧਰੀਜੈ॥ ਸਿਰੁ ਦੀਜੈ ਕਾਣਿ ਨਾ ਕੀਜੈ॥[10]

ਜੇ. ਐਸ. ਬੈਂਸ ਦੇ ਕਥਨ ਅਨੁਸਾਰ ਚਾਹੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਮੌਲਿਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਚਾਰਕ ਸਨ ਅਤੇ ਬੇਸ਼ੱਕ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਵਿਧੀਬੱਧ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਰਾਜ ਦੇ ਮਸਲਿਆਂ ਦਾ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪ੍ਰਤੀਕਰਮਾਂ ਤੋਂ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਰਾਜਨੀਤਕ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦਾ ਅੰਦਾਜ਼ਾ ਲਗਾਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।[11] ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਰਾਜ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ, ਰਾਜੇ ਅਤੇ ਸੱਤਾ ਆਦਿ ਬਾਰੇ ਅਨੇਕਾਂ ਚਿੰਨ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਮਤ ਅਨੁਸਾਰ, "ਰਾਜ ਦਾ ਕੰਮ ਅਜਿਹੇ ਹਾਲਾਤ ਪੈਦਾ ਕਰਨਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਇਨਸਾਨ ਆਪਣੀ ਸ਼ਖਸ਼ੀਅਤ ਦਾ ਵਿਕਾਸ ਕਰ ਸਕੇ। ਕਿਸੇ ਵੀ ਸੰਗਠਿਤ ਤਾਕਤ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਕਰਤੱਵ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਭਲਾਈ ਹੈ। ਰਾਜ ਇਨਸਾਨ ਲਈ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਨਾ ਕਿ ਇਨਸਾਨ ਰਾਜ ਲਈ। ਇੱਕ ਆਦਰਸ਼ ਸ਼ਾਸ਼ਕ ਦੈਵੀ ਸੂਝ-ਬੂਝ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਮਾਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਨੂੰ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਜ਼ਰੂਰਤਾਂ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਭਲਾਈ ਦਾ ਧਿਆਨ ਰੱਖਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਜੇ ਉਹ ਆਪਣੀਆਂ ਜਿੰਮੇਵਾਰੀਆਂ ਨਿਭਾਉਣ ਵਿੱਚ ਨਾਕਾਮ ਰਹੇ ਤਾਂ ਉਹ ਰੱਬੀ ਹੁਕਮ ਦੇ ਉਲਟ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਨੂੰ ਤਾਕਤ ਤੋਂ ਲਾਂਭੇ ਕਰਨਾ ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਨੈਤਿਕ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀ ਬਣ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।"[12]

"ਸੁਧਾਰ ਦੇ ਸੱਚੇ ਅਸੂਲਾਂ ਨੂੰ ਭਾਂਪਣਾ ਅਤੇ ਉਹ ਸਿਧਾਂਤ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨੇ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਨੌਵੇਂ ਉਤਰਧਿਕਾਰੀ ਗੁਰੁ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਸਿੱਖਾਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਵਿੱਚ ਕੌਮੀਅਤ ਦਾ ਜ਼ਜ਼ਬਾ ਭਰਨ ਦੇ ਯੋਗ ਬਣਾਇਆ, ਅਤੇ ਇਸ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਰੂਪ ਦੇਣਾ ਕਿ ਨਸਲ ਅਤੇ ਫਿਰਕੇ ਵਿੱਚ ਰਾਜਸੀ ਹੱਕਾਂ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਆਸ਼ਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਸਭ ਤੋਂ ਨੀਵਾਂ ਮਨੱਖ ਸਭ ਤੋਂ ਉੱਚੇ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਹੈ, ਗੁਰੁ ਨਾਨਕ ਦੇ ਹਿੱਸੇ ਆਇਆ ਹੈ।"[13] ਇਸ ਤਰਾਂ ਸਿੱਖ ਗੁਰੂਆਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਸ਼ਖਸ਼ੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਫਰਜ਼ਾਂ ਦੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕੌਮੀ ਫਰਜ਼ ਵੀ ਉਤਨੇ ਹੀ ਪ੍ਰਬਲ ਸਨ।[14] ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਦੀ ਨੀਂਹ ਰੱਖਦੇ ਸਮੇਂ ਇੱਕ ਨਵੀਂ ਸਮਾਜਿਕ ਚੇਤਨਾ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਬਿਨਾਂ ਕਿਸੇ ਡਰ ਦੇ ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਕ ਸਥਾਪਤੀ ਨੂੰ ਵੰਗਾਰਿਆ ਅਤੇ ਹਾਕਮੀ ਜ਼ਬਰ, ਸਮਾਜਿਕ ਗੈਰ-ਬਰਾਬਰੀ, ਅਨਿਆਂ, ਧਾਰਮਿਕ ਕੱਟੜਤਾ ਅਤੇ ਪਾਖੰਡਵਾਦ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਅਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕੀਤੀ। 'ਚੜ੍ਹਿਆ ਸੋਧਣਿ ਧਰਤਿ ਲੁਕਾਈ'[15] ਦੇ ਕਥਨ ਅਨੁਸਾਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਮੁਲਕ/ਰਾਸ਼ਟਰ, ਧਰਮ ਅਤੇ ਜਾਤੀ ਦੇ ਦਿਸਹੱਦਿਆਂ ਤੋਂ ਉੱਪਰ ਉੱਠਕੇ ਸਮੁੱਚੀ ਮਾਨਵਤਾ ਨੂੰ ਸੁਧਾਰਣ ਦਾ ਬੀੜਾ ਚੁੱਕਿਆ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਇਸ ਅਦੁੱਤੀ ਮਿਸ਼ਨ ਬਾਰੇ ਕਿਸੇ ਕਵੀ ਨੇ ਖੂਬ ਲਿਖਿਆ ਹੈ:

ਦੂਰ ਦੇ ਰਾਹੀਆਂ ਨੂੰ
ਕੀ ਭੁੱਖਾਂ ਤੇ ਕੀ ਨੀਦਰਾਂ।
ਚੱਲ ਬਈ ਮਰਦਾਨਿਆ
ਹੁਣ ਚੱਲੀਏ ਅਗਲੇ ਗਰਾਂ।

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਜਿੱਥੇ ਸਰਬ-ਸਾਂਝੀਵਾਲਤਾ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦਿੱਤਾ ਉੱਥੇ ਹੀ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਹਾਰੇ ਅਤੇ ਲਤਾੜੇ ਹੋਏ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਅੰਦਰ ਸੱਤਾ ਦੇ ਦਬਦਬੇ ਅਤੇ ਹਕੂਮਤੀ ਜ਼ੁਲਮ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਅਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨ ਦਾ ਹੌਂਸਲਾ ਵੀ ਪੈਦਾ ਕੀਤਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੀ ਇਸ ਨਾਬਰੀ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਹਰਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਨੇ ਪੀਰੀ ਤੇ ਮੀਰੀ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਨੇ ਖਾਲਸੇ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕਰਕੇ ਸੰਤ ਸਿਪਾਹੀ ਦਾ

ਰੂਪ ਦਿੱਤਾ। ਚਿੜੀਆਂ ਅੰਦਰ ਬਾਜ ਨਾਲ ਲੜ ਸਕਣ ਦੇ ਸਮਰੱਥ ਹੋਣ ਦਾ ਸਾਹਸ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਡਾ. ਜਸਪਾਲ ਸਿੰਘ ਆਪਣੀ ਕਿਤਾਬ 'ਰਾਜ ਦਾ ਸਿੱਖ ਸੰਕਲਪ' ਵਿਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ''ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਮੀਰੀ-ਪੀਰੀ ਦਾ ਮੁੱਢ ਬੰਨਦਿਆਂ ਜਿੱਥੇ ਇਕ ਪਾਸੇ ਪੀਰੀ ਦੇ ਪਰਦੇ ਪਿੱਛੇ ਛਿਪੇ ਪਾਖੰਡ ਨੂੰ ਬੇਨਕਾਬ ਕੀਤਾ, ਉੱਥੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਪੂਰੀ ਸ਼ਕਤੀ ਨਾਲ ਮੀਰੀ ਦੇ ਅਨਿਆਈਂ ਅਤੇ ਹਿੰਸਕ ਵਤੀਰੇ ਦਾ ਕਾਰਗਰ ਵਿਰੋਧ ਕੀਤਾ।''[16] ਇਸ ਤਰਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਏ ਫਲਸਫੇ ਦਾ ਬੁਨਿਆਦੀ ਕਿਰਦਾਰ ਜੁਝਾਰੂ ਹੀ ਰਿਹਾ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਸਮਿਆਂ ਵਿੱਚ ਲੋਕ ਲਹਿਰਾਂ ਦੀ ਬਿਰਤੀ ਅਤੇ ਪ੍ਰਵਚਨ ਵਿੱਚ ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸਥਾਪਤੀ-ਵਿਰੋਧੀ ਬਿੰਬ (anti-establishment motif) ਵਜੋਂ ਰੂਪਮਾਨ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।

ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਇਤਿਹਾਸਕਾਰ ਵੱਲੋਂ ਲੰਮੇ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਇਤਿਹਾਸਕ ਸਬੂਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਜੋਂ ਜਾਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਪਰ ਮੱਧਕਾਲੀ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਇਸ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਸਰਸਰੀ ਅਤੇ ਸੀਮਤ ਰਹੀ ਹੈ।[17] ਸਾਹਿਤ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਸੂਚਕਾਂਕ ਵਜੋਂ, ਪਿਛਲੇ ਸਮੇਂ ਦੇ ਜੀਵਿਤ ਤਜ਼ਰਬੇ ਵਜੋ, ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਨਾਲ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਅੰਤਰ-ਸੰਬੰਧ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਕਿਸੇ ਰਚਨਾਤਮਕ ਲੇਖਕ ਲਈ ਇਤਿਹਾਸ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨੂੰ ਅਲੋਚਨਾਤਮਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਲ ਕਰਨਾ, ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਲਈ ਇਕ ਸੰਦਰਭ ਬਿੰਦੂ ਦੇ ਨਾਲ ਨਾਲ 'ਪਿਛਲੇ ਅਨੁਭਵ ਦੀ ਦੁਬਾਰਾ ਵਿਆਖਿਆ ਕਰਨਾ ਅਤੇ ਮੁੜ ਲਾਗੂ ਕਰਨਾ ਲਾਜ਼ਮੀ ਅਤੇ ਚੁਣੌਤੀਪੂਰਨ ਹੈ।[18] ਇਤਿਹਾਸਕ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਅਸਲ ਮਹੱਤਤਾ ਇਸ ਦੇ ਸੁਭਾਵਕ ਇਤਿਹਾਸਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਦੀ ਸੁਹਜ ਵਿਆਖਿਆ ਵਿੱਚ ਹੈ। ਹਾਲਾਂਕਿ, ਰਵਾਇਤੀ ਇਤਿਹਾਸਕ ਵਿਧੀ ਸਾਹਿਤਕ ਸ਼ੈਲੀਆਂ ਨੂੰ ਅਤੀਤ ਦੇ ਪੁਨਰ ਨਿਰਮਾਣ ਲਈ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕ ਸ੍ਰੋਤ ਵਜੋਂ ਨਹੀਂ ਮੰਨਦੀ। ਪਰ ਸਾਹਿਤਕ ਅਲੋਚਨਾ ਅਤੇ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਫਲਸਫੇ ਵਿੱਚ ਹਾਲ ਹੀ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਨੇ ਇਹ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਘਟਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਵਾਪਸ ਆ ਗਿਆ ਹੈ।[19] ਖੁਸ਼ਕਿਸਮਤੀ ਨਾਲ, ਹੁਣ ਇਹ ਜਾਗਰੂਕਤਾ ਵਧ ਰਹੀ ਹੈ ਕਿ ਸਾਹਿਤ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਇਤਿਹਾਸਕ ਸਥਿਤੀਆਂ ਦੀ ਉਪਜ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਸਾਨੂੰ ਪਿਛਲੇ ਸਮੇਂ ਬਾਰੇ ਕੁਝ ਅਨੋਖਾ ਦੱਸ ਸਕਦਾ ਹੈ।[20] ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਇਤਿਹਾਸਕ ਤਬਦੀਲੀ ਦੇ (ਸਰਗਰਮ) ਪ੍ਰਤੀਬਿੰਬ ਵਜੋਂ ਨਹੀਂ, ਬਲਕਿ ਇਸਦੇ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ (ਕਿਰਿਆਸ਼ੀਲ) ਵਾਹਨ ਵਜੋਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਦਰਅਸਲ, ਹੁਣ ਸਾਹਿਤਕ ਵਿਧਾ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਸਮਕਾਲੀ ਅਭਿਆਸ ਉੱਪਰ ਡੂੰਘਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਾ ਰਹੀ ਹੈ।[21]

ਈਸ਼ਵਰ ਦਿਆਲ ਗੌੜ ਦੇ ਕਥਨ ਅਨੁਸਾਰ 'ਇਸ ਨਵੀਂ ਕਿਸਮ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਨੂੰ ਲੋਕ ਇਤਿਹਾਸ ਹੋਣ ਦਾ ਮਾਨ ਹਾਸਿਲ ਹੈ। ਇਸ ਲੋਕ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਇਤਿਹਾਸ ਲਿਖਣ ਦਾ ਜੋ ਰੁਝਾਨ ਉਭਰਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ ਹੈ ਉਸਨੂੰ ਦੋ ਤਿੰਨ ਦਹਾਕਿਆਂ ਵਿਚ ਪੈਦਾ ਹੋਏ ਖੋਜ ਦੇ ਰੁਝਾਨਾਂ ('ਨਵ ਇਤਿਹਾਸਵਾਦ', 'ਪ੍ਰਵਚਨੀ ਵਿਸ਼ਲੇਸ਼ਣ', 'ਭਾਸ਼ਾਈ ਪਲਟ' ਅਤੇ ਤੱਥ ਦੇ ਅਤੱਥ ਦਰਮਿਆਨ ਫ਼ਰਕ ਬਾਰੇ ਪੈਦਾ ਹੋਏ 'ਉਤਰਆਧੁਨਿਕ ਸੰਦੇਹਵਾਦ') ਦੇ ਪੱਖ ਤੋਂ ਵੀ ਵਿਚਾਰਨ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ।''[22] ਪਰ ਕਸਬੀ ਇਤਿਹਾਸਕਾਰ ਇਸ ਲੋਕ-ਇਤਿਹਾਸ ਜਾਂ ਪ੍ਰਵਚਨ ਨੂੰ ਮਹਿਜ਼ ਇਕ ਦਸਤਾਵੇਜ਼ ਵਜੋਂ ਹੀ ਇਸਤੇਮਾਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਇਸ ਨੂੰ ਇਤਿਹਾਸ ਦਾ ਰੁਤਬਾ ਦੇਣ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹੈ। ਸਾਨੂੰ ਇਸ ਤੱਥ ਵਿਚਾਰਨ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ ਕਿ ਮੌਲਿਕ ਰਚਨਾਕਾਰ ਅਤੇ ਕਸਬੀ ਇਤਿਹਾਸਕਾਰ ਦੇ ਮਨੋਰਥ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ ਫ਼ਨਕਾਰੀ ਜਾਂ ਕਰਾਫਟ ਦੇ ਢੰਗ ਵੱਖੋ-ਵੱਖਰੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਦੋਹਾਂ ਦਾ ਮਨੋਰਥ ਸਾਂਝਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਅਸਲ ਵਿਚ ਇਤਿਹਾਸ, ਕੋਈ ਗਣਨਾ ਕਰਨ ਵਾਲੀ ਮਸ਼ੀਨ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਹ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਬਣਨ ਅਤੇ ਇਸ ਦੇ ਪ੍ਰਗਟਾਵੇ ਬਾਰੇ ਵੀ ਹੈ।[24] ਦਬਦਬਾ, ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀ ਅਤੇ ਅਮੀਰੀ ਦੀਆਂ ਅਸਮਾਨਤਾਵਾਂ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਸਦੀਵੀ ਤੱਥ ਹਨ। ਸ਼ਕਤੀ ਅਕਸਰ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਏਜੰਟਾਂ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਨੂੰ ਸੰਭਾਲਣ ਦੀ ਸਮੱਰਥਾ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀਹੀਣ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਉਹ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲਈ ਮਜਬੂਰ

ਕਰਨ ਦੀ ਸਮਰੱਥਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜੋ ਉਹ ਨਹੀਂ ਵੀ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ। ਸ਼ਕਤੀ ਇੱਕ ਅਜਿਹੀ ਮਲਕੀਅਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜਿਸਨੂੰ ਤਾਕਤਵਰ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਲਈ ਰੱਖਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸ਼ਕਤੀਹੀਣ ਉਸ ਕੋਲੋਂ ਖੋਹਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ।[25] ਫੂਕੋ ਗਿਆਨ ਅਤੇ ਤਾਕਤ ਦੇ ਆਪਸੀ ਸੰਬੰਧਾਂ ਦੀ ਗਲ ਕਰਦਾ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗਿਆਨ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਸੱਤਾ ਦਾ ਇਸਤੇਮਾਲ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਅਤੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਇਹ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਕਿ ਗਿਆਨ ਦੀ ਤਾਕਤ ਸੱਤਾ ਦੇ ਲਈ ਵੰਗਾਰ ਪੈਦਾ ਨਾ ਕਰੇ।[26] ਇਹ ਇੱਕ ਬਹੁਤ ਹੀ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਸਿਧਾਂਤਕ ਪੱਖ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਗਿਆਨ ਨੂੰ ਸੱਤਾ ਵਿਰੋਧ ਦੇ ਇੱਕ ਅਹਿਮ ਸਾਧਨ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਨੂੰ ਫੂਕੋ ਤੋਂ ਕਿੰਨਾਂ ਚਿਰ ਪਹਿਲਾਂ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ: ''ਤਖਤਿ ਬਹੈ ਤਖਤੈ ਕੀ ਲਾਇਕ।''[27]

ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ ਦਾ ਕਹਿਣਾ ਹੈ ਕਿ ''ਬੀਤੇ ਸਮੇਂ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਨਾ ਵਰਤਮਾਨ ਦੀ ਵਿਆਖਿਆ ਵਿਚ ਆਮ ਰਣਨੀਤੀਆਂ ਵਿਚੋਂ ਇਕ ਹੈ। ਇਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਨਾ ਸਿਰਫ ਇਸ ਬਾਰੇ ਅਸਹਿਮਤੀ ਹੁੰਦੀ ਕਿ ਪਿਛਲੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਕੀ ਵਾਪਰਿਆ ਸੀ ਅਤੇ ਕੀ ਹੋਇਆ, ਪਰ ਇਸ ਬਾਰੇ ਅਸਪਸ਼ਟਤਾ ਵੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਭੂਤਕਾਲ ਸੱਚਮੁੱਚ ਬੀਤਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ, ਸਮਾਪਤ ਹੋਇਆ ਹੈ ਜਾਂ ਕਿ ਇਹ ਜਾਰੀ ਹੈ, ਭਾਵੇਂ ਵੱਖਰੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਹੋਵੇ।[28] 15ਵੀਂ 16ਵੀਂ ਸਦੀ ਵਾਂਗ[29] 20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦਾ ਪੰਜਾਬ ਵੀ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਜ਼ੁਲਮ, ਆਰਥਿਕ ਲੁੱਟ ਖਸੁੱਟ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਅਨਿਆਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਇਹ ਯੁੱਗ ਵੀ 'ਕਲਯੁੱਗ' ਦਾ ਰੂਪ ਧਾਰਨ ਕਰ ਚੁੱਕਾ ਸੀ। ਇਸਦਾ ਹਵਾਲਾ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕਧਾਰਾ ਵਿਚ ਮਿਲਦਾ ਹੈ:

ਰੱਬ ਮੋਇਆ ਦੇਵਤੇ ਭੱਜ ਗਏ
ਰਾਜ ਫਰੰਗੀਆਂ ਦਾ।
ਸਿਰ ਉੱਤੇ ਟੋਕਰਾ ਨਰੰਗੀਆਂ ਦਾ
ਕਦੋਂ ਜਾਵੇਗਾ ਰਾਜ ਫਰੰਗੀਆਂ ਦਾ।[30]
ਨਾ ਤਾਂ ਮੇਰੀ ਲਈ ਗਵਾਹੀ
ਨਾ ਸਭ ਬਾਤ ਪਛਾਣੀ।
ਕੰਨੋ ਬੋਲੀ ਦਿਸੇ ਅਦਾਲਤ
ਅੱਖੋਂ ਹੋ ਗਈ ਕਾਣੀ।
ਸੱਚੇ ਫੈਸਲੇ ਕਿਵੇਂ ਕਰੇ,
ਜਿੰਨ੍ਹੇ ਵੱਢੀ ਹੋਵੇ ਖਾਣੀ।
ਨਰਕਾਂ ਦੇ ਵਿੱਚ ਪਵੇ ਜਿੰਦੜੀ
ਮਿਲੇ ਨਾ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਪਾਣੀ।[31]

ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂਆਤੀ ਦਹਾਕਿਆਂ ਦੌਰਾਨ, ਵਿਰੋਧ ਲਹਿਰਾਂ ਦੀ ਇੱਕ ਲੜੀ ਨੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਨੂੰ ਇਸ ਨਿਯਮਤਤਾ ਨਾਲ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਕਿ ਹਰ ਅਜਿਹੀ ਲਹਿਰ ਨੂੰ ਇੱਕ ਵੱਖਰੀ ਪੰਜਾਬੀ ਪਛਾਣ ਬਣਾਉਣ ਵਿੱਚ ਮੀਲ ਪੱਥਰ ਵਜੋਂ ਲਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।[32] ਕਿਸਾਨੀ, ਪੂਰਵ-ਸੈਨਿਕਾਂ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਸ਼ਖਸ਼ੀਅਤਾਂ ਦੀ ਅਗਵਾਈ ਵਿੱਚ ਇਹ ਅੰਦੋਲਨ ਕੁਲੀਨ ਵਰਗ (ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਅਤੇ ਰਾਸ਼ਟਰਵਾਦੀ ਦੋਵੇਂ) ਦੇ ਦਬਦਬੇ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਸਨ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸੁਤੰਤਰ ਸੁਭਾਅ ਦੇ ਮੱਦੇਨਜ਼ਰ, ਇਹ ਅੰਦੋਲਨ ਬੁਨਿਆਦੀ ਤੌਰ ਤੇ ਹਿੰਸਕ ਸਨ।[33] ਇਹਨਾਂ ਅੰਦੋਲਨਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ, ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਇੱਕ ਵਿਸ਼ਾਲ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਵੱਖ ਵੱਖ ਵਰਗਾਂ ਦੁਆਰਾ ਤਿਆਰ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਸੀ, ਪਰ ਮੁੱਖ ਤੌਰ ਤੇ ਇਸ ਵਿੱਚ ਸ਼ੁਬਓਲਟਏਰਨ ਵਰਗ ਦੀ ਦੇਣ ਸੀ। ਪਹਿਲਾਂ ਵਾਲੇ ਰੋਮਾਂਟਿਕ ਅਤੇ ਰਹੱਸਵਾਦੀ ਰੰਗਤ ਨਾਲ ਭਾਰੂ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਬਜਾਏ ਹੁਣ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਅਤੇ ਦੇਸ਼ ਭਗਤੀ ਦੀ ਭਾਵਨਾ ਨਾਲ ਲਬਰੇਜ਼ ਸੀ। ਗ਼ਦਰ ਲਹਿਰ ਇਸ ਦਿਸ਼ਾ ਵਿਚ ਇਕ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਘਟਨਾਕ੍ਰਮ

ਸੀ। ਇਸਦੇ ਤਹਿਤ ਗ਼ਦਰ ਕਾਵਿ ਪੈਦਾ ਹੋਇਆ ਜਿਸ ਵਿਚ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਬਿਰਤਾਂਤ ਸੀ।ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਰਾਜਨੀਤਕ ਤੌਰ ਤੇ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਇਹ 'ਨਵੀਂ' ਕਵਿਤਾ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਹੋਰਾਂ ਦੀਆਂ 'ਅਸਪਸ਼ਟ ਰੋਮਾਂਟਿਕ ਅਤੇ ਰਹੱਸਵਾਦੀ' ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੇ ਉਲਟ ਸਾਹਮਣੇ ਆ ਰਹੀ ਸੀ।[34]

ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਪੁਰਾਣੀ ਧਾਰਾ ਦੇ ਤਿਆਗ ਤੇ ਨਵੀਨਤਾ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਦੇ ਅਮਲ ਨੂੰ ਉਹਨਾਂ ਸਮਾਜਿਕ, ਧਾਰਮਿਕ, ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਤੇ ਰਾਜਸੀ ਲਹਿਰਾਂ, ਜਿਹੜੀਆਂ ਉਨੀਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਦੂਜੇ ਅੱਧ ਵਿੱਚ ਹੋਂਦ ਵਿੱਚ ਆਈਆਂ ਪਰ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਉੱਘੜਵਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵ ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿੱਚ ਹੀ ਅਨੁਭਵ ਕੀਤਾ ਗਿਆ, ਨੇ ਇੱਕ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਦਿਸ਼ਾ ਜਾਂ ਸੇਧ ਦਿੱਤੀ ਜਿਹੜੀ ਆਧੁਨਿਕ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਮੋੜ ਸਿੱਧ ਹੋਈ।[35] ਗ਼ਦਰ ਅਖਬਾਰ ਨੂੰ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਕਰ ਗ਼ਦਰੀਆਂ ਨੇ ਸਾਮਰਾਜੀ ਲੁੱਟ ਨੂੰ ਬੇਪਰਦ ਕਰਨ ਲਈ ਆਪਣਾ ਸੰਵਾਦ ਅਰੰਭਿਆ।ਅਖਬਾਰ ਦੇ ਮੁਖ ਪੰਨੇ ਤੇ ਸਿੱਖੀ ਦਾ ਮੁੱਢ ਬੰਨਣ ਵਾਲੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਸ਼ਬਦ 'ਜਉ ਤਉ ਪ੍ਰੇਮ ਖੇਲਣ ਕਾ ਚਾਉ ਸਿਰੁ ਧਰ ਤਲੀ ਗਲੀ ਮੇਰੀ ਆਉ' ਨੂੰ ਥੋੜਾ ਬਦਲ ਕੇ 'ਜੇ ਚਿੱਤ ਪ੍ਰੇਮ ਖੇਲਣ ਦਾ ਚਾਉ ਸਿਰ ਧਰ ਤਲੀ ਗਲੀ ਮੋਰੀ ਆਉ' ਲਿਖਿਆਂ ਗਿਆ।[36] ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ ਕੇਸਰ ਗੁਰਬਾਣੀ ਦੀਆਂ ਇਹਨਾਂ ਤੁਕਾਂ ਬਾਰੇ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਲੋਕ ਮੁਹਾਵਰੇ ਅਨੁਸਾਰ ਕੁਝ ਬਦਲ ਕੇ ਲਿਖੀਆਂ ਗਈਆਂ ਸਨ।[37] ਇਸ 'ਤੇ ਵੱਖਰਾ ਸੰਵਾਦ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ ਪਰ ਗ਼ਦਰ ਲਹਿਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਨੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਸਿੰਘ ਅੰਦੋਲਨ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਆਪਣੀਆਂ ਸਮਕਾਲੀ ਇਤਿਹਾਸਕ ਘਟਨਾਵਾਂ ਤੇ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਤਕ ਬਿਨਾਂ ਕਿਸੇ ਧਰਮ, ਜਾਤ, ਇਲਾਕੇ ਤੇ ਦੇਸ਼ ਦੇ ਭਿੰਨਭੇਦ ਦੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਨਰੋਏ ਤੇ ਇਨਕਲਾਬੀ ਤੱਤਾਂ ਨੂੰ ਅੰਕਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ।[38]

ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਨਾਬਰੀ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਹੀ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸਦਾ ਮੁੱਢ ਵੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਆਪਣੇ ਕਥਨ 'ਰਾਜੇ ਸ਼ੀਂਹ ਮੁਕੱਦਮ ਕੁੱਤੇ' ਦੇ ਨਾਲ ਬੰਨ੍ਹ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਭਵਿੱਖ ਦੇ ਕਵੀਆਂ ਅਤੇ ਲੋਕ ਲਹਿਰਾਂ ਦੇ ਆਗੂਆਂ ਲਈ ਰਾਹ ਪੱਧਰਾ ਕਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ।ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂਆਤੀ ਦਹਾਕਿਆਂ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਇਸੇ ਨਾਬਰੀ ਦਾ ਸਬੂਤ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।[39] ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਜਬਰ ਦੇ ਅਧੀਨ, ਅਤੀਤ ਬਾਰੇ ਚੁੱਪ ਰਹਿਣਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਰਤਾਰਾ ਸੀ। ਕੁਝ ਚੁੱਪਾਂ ਟੁੱਟੀਆਂ ਵੀ ਸਨ ਪਰ ਕੁਝ ਲੇਖਕਾਂ ਨੇ ਚੁੱਪ ਵੱਟੀ ਰੱਖੀ ਜੋ ਕਿ ਰਣਨੀਤੀ ਦੇ ਤਹਿਤ ਸੀ।[40] ਪਰ ਇਨਾਂ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਚੁੱਪ ਨਾ ਕਿਹਾ। ਬਹੁਤ ਵਾਰੀ ਅੰਦੋਲਨ ਵਿਚ ਸਿੱਧੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਸ਼ਾਮਿਲ ਲੋਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਖੁਦ ਵੀ ਕਵਿਤਾ ਅਤੇ ਵਾਰਤਕ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕੀਤੀ ਗਈ। ਕ੍ਰਾਂਤੀਕਾਰੀ ਲਹਿਰਾਂ ਨੇ ਹਥਿਆਰ ਚੁਕਦੇ ਹੋਏ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤ ਨਾਲੋਂ ਟੁੱਟਣ ਨਾ ਦਿੱਤਾ। ਸ਼ਸਤਰ ਤੇ ਸ਼ਾਸਤਰ ਦਾ ਇਹ ਵਿਰਾਸਤੀ ਸੁਮੇਲ ਦੁਸ਼ਮਣਾਂ ਦੀ ਅੱਖ ਵਿਚ ਬਰਾਬਰ ਰੜਕਦਾ ਇਹਾ। ਜਿੱਥੇ ਹਥਿਆਰਾਂ 'ਤੇ ਰੋਕਾਂਲਾਈਆਂ ਗਈਆਂ ਉੱਥੇ ਹੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਵੱਖ-2 ਸਮੇਂ ਪਾਬੰਧੀਆਂ ਤੇ ਜਬਤੀਆਂ 'ਚ ਗੁਜ਼ਰਨਾ ਪਿਆ। ਇਹ ਵਰਤਾਰਾ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵੀ ਜਾਰੀ ਹੈ।

ਕਈ ਵਾਰ ਜਦੋਂ ਇਤਿਹਾਸ ਬੇਰਹਿਮ ਅਤੇ ਖ਼ੂਨੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਕਵੀ ਚੁੱਪ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ ਪਰ ਵਾਰਤਕ ਲੇਖਕ ਆਪਣੀ ਕਲਮ ਚੁੱਕਣ ਲਈ ਮਜਬੂਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਅਤੇ ਕਈ ਵਾਰੀ ਇਹ ਬਿਲਕੁਲ ਉਲਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।[41] ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਜਦੋਂ ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਦਮਨ, ਆਰਥਿਕ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਅਨਿਆਂ ਅਤੇ ਜ਼ਬਰ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਅਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨ ਲਈ ਇਤਿਹਾਸਕ ਹਵਾਲੇ ਅਤੇ ਬਿੰਬ ਫਰੋਲਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਭ ਤੋਂ ਤਾਕਤਵਰ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਉੱਭਰਦੇ ਹਨ। ਉਸਦਾ ਵੱਡਾ ਕਾਰਨ ਇਹ ਸੀ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੇ ਹਰ ਕਿਸਮ ਦੀ ਸੱਤਾ ਨੂੰ ਚੁਣੌਤੀ ਦੇਕੇ ਇੱਕ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪਿੜ ਬੰਨਿਆ ਸੀ ਕਿਉਂਕਿ "ਇਸਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦਾ ਵਿਸ਼ਵਾਸ਼ ਸੀ ਕਿ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਰੱਬ ਜਾਂ ਦੇਵਤਿਆਂ ਵੱਲੋਂ ਲੋਕਾਂ ਤੇ ਰਾਜ ਕਰਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਜ਼ੁਲਮ ਕਰਨ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਵੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਸੀ।"[42] ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਧੌਂਸ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀ ਲੋਕ-ਵਿਰੋਧ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅਤੀਤ ਦੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸਰੋਤਾਂ ਦੀ ਛਾਣਬੀਣ ਰਾਹੀਂ ਸਵਦੇਸ਼ੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਅਭਿਆਸਾਂ ਨੂੰ ਮੁੜ ਸੁਰਜੀਤ ਕਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।[43] ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ

ਇਸ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਅਭਿਆਸ ਦੇ ਮੋਢੀ ਵਜੋਂ ਉਭਰਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਹਜ਼ਾਰਾ ਸਿਘ ਮੁਸ਼ਤਾਕ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਦਾ ਹੈ:

ਇੱਕ ਉਂਕਾਰੀਆਂ ਤੂੰ ਤੇਰਾ ਤੇਰਾ ਤੋਲਿਆ ਸੀ
ਚਾਰ ਕੌਡੀਆਂ ਤੋਂ ਵਿਕੇ ਅਮਾਨ ਏਥੇ
ਵਿਹਲੜ ਖੂਨ ਪੀਂਦੇ ਭੁੱਖੇ ਕਿਰਤੀਆਂ ਦਾ
ਏਥੇ ਭੁੱਖਿਆਂ ਦੀ ਗਲ ਦੀ ਦਾਲ ਕੋਈ ਨਹੀਂ
ਜਿਸਦੇ ਦਿਲ ਵਿਚ ਪਿਆਰ ਦੀ ਭੁੱਖ ਹੋਵੇ
ਇੱਥੇ ਭੁੱਖਿਆਂ ਦਾ ਭਾਈਵਾਲ ਕੋਈ ਨਹੀਂ
ਭੁੱਖੇ ਨੀਤ ਦੇ ਓਵੇ ਜਹਾਨ ਅੰਦਰ
ਢਿਡੋਂ ਭੁੱਖਿਆਂ ਦਾ ਲਹੂ ਪੀ ਰਹੇ ਨੇ
ਇੱਥੇ ਜੀਣ ਜੋਗੇ ਮਾਰੇ ਜਾ ਰਹੇ ਨੇ
ਐਪਰ ਮਰਨ ਜੋਗੇ ਇੱਥੇ ਜੀ ਰਹੇ ਨੇ।[44]

ਇਸੇ ਤਰਾਂ ਬਾਬੂ ਫਿਰੋਜ਼ਦੀਨ ਸਰਫ਼ ਨੇ ਨੇ ਦੋ ਕਵਿਤਾਵਾਂ 'ਪੀਰ ਨਾਨਕ' ਤੇ 'ਹਾਰੇ' ਲਿਖੀਆਂ ਅਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕੀਤਾ:

ਰੁਤਬੇ ਸ਼ਾਹਾਂ ਦੇ ਰੱਖਦੇ ਜੱਗ ਉੱਤੇ,
ਤੇਰੇ ਬੂਹੇ ਦੇ ਜਿਹੜੇ ਫਕੀਰ ਨਾਨਕ।

ਜੇੜੇ ਜੇੜੇ ਸਨ ਜ਼ੁਲ ਕਮਾਨ ਵਾਲੇ,
ਤੁਸਾਂ ਕਰ ਦਿੱਤੇ ਸਿੱਧੇ ਪੀਰ ਨਾਨਕ।[45]
ਮੈਂ ਕੀ ਗੁਣ ਤੇਰੇ ਲਿਖਣ ਜੋਗਾ?
ਅੱਗੇ ਕਈ ਲੱਖਾਂ ਲਿਖਣਹਾਰ ਹਾਰੇ।

ਤੇਰੀ ਚੱਕੀ ਦਾ ਚੱਲਣਾ ਵੇਖਕੇ ਤੇ,
ਬਾਬਰ ਜਿਹੇ ਅਮੋੜ ਹਾਰੇ।

ਸ਼ਰਫ ਆਂਹਦਾ ਵੇ ਬਾਬਾ ਤੂੰ ਜਿੱਤ ਗਿਉਂ,
ਲੜਦੇ ਹੋਰ ਸਾਰੇ ਆਖਰਕਾਰ ਹਾਰੇ।[46]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਦੱਸੇ ਰਾਹ ਮੁਤਾਬਿਕ "ਮੁਕਤੀ ਕੋਈ ਨਿੱਜੀ ਮਸਲਾ ਨਹੀਂ ਹੈ ਸਗੋਂ ਸਰਬੱਤ ਦੇ ਭਲੇ ਅਤੇ ਸਰਬੱਤ ਦੀ ਅਜ਼ਾਦੀ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਹ ਮਹਾਨ ਆਦਰਸ਼ ਸਚਿਆਰੇ ਹੋਣ ਦੀ ਕਸਵੱਟੀ ਵੀ ਹੈ ਅਤੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਜਿੰਦਗੀ ਦੇ ਅਭਿਆਸ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।"[47] ਇਸ ਕਰਕੇ ਜਦੋਂ ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਰਾਜ ਸਮੂਹਕ ਦਮਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਵਾਜਾਂ ਮਾਰਦਾ ਹੈ। ਔਖੀ ਘੜੀ ਚ ਬੰਦਾ ਰੱਬ ਨੂੰ ਧਿਆਉਂਦਾ ਹੈ; ਬਹੁੜ ਪੈਣ ਦੇ ਤਰਲੇ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਕਰਕੇ ਨਾਨਕ ਆਗਮਨ ਦੀ ਪੁਕਾਰ ਕਵਿਤਾ ਦਾ ਸਾਂਝਾ ਵਿਸ਼ਾ ਬਣਿਆ।[48] ਧਨੀ ਰਾਮ ਚਾਤ੍ਰਿਕ 'ਆ ਬਾਬਾ' ਵਰਗੀ ਕਵਿਤਾ ਲਿਖਦਾ ਹੈ:

ਅਰਸ਼ਾਂ ਤੋਂ ਕੀ ਪਿਆ ਤੱਕਦਾ?
ਮੁੜ ਜੱਗ ਵੱਲ ਮੋੜੇ ਪਾ ਬਾਬਾ।
ਮੋਇਆਂ ਵਿੱਚ ਜਾਨ ਲਿਆ ਬਾਬਾ,
ਜੀਉਂਦਿਆਂ ਨੂੰ ਮਰਨ ਸਿਖਾ ਬਾਬਾ।

ਗੋਤੇ ਖਾ ਰਹੀ ਤਸੱਲੀ ਏ,
ਜ਼ਾਹਰਾਦਾਰੀ ਭੀ ਚੱਲੀ ਏ।
ਇਸ ਡਗਮਗ ਕਰਦੇ ਬੇੜੇ ਨੂੰ,
ਝਬ ਆਕੇ ਪਾਰ ਲਗਾ ਬਾਬਾ।[49]

ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਬਸਤੀਵਾਦ ਦਾ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਰੋਧ ਇੱਕ ਖਾਸ (nativism) ਰੂਪ ਧਾਰ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪਛਾਣ ਦੀ ਕੀਤੀ ਗਈ ਤੋੜ ਮਰੋੜ ਨੂੰ ਦੂਰ ਕਰਨ ਲਈ ਅਤੇ ਸ਼ੁੱਧ ਅਤੇ ਦੇਸੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਲੱਭਣ ਲਈ ਪੂਰਵ-ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਵਾਪਸ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।[50] "ਨਾਨਕਬਾਣੀ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਸਮਾਜ ਸੁਧਾਰਕ ਅਤੇ ਸਿਆਸੀ ਵਰਤਾਅ ਵੀ ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿੱਚ ਵਾਪਰਿਆ। ਸੁਤੰਤਰ ਦੇਸ਼ ਪੰਜਾਬ ਤੇ ਫਰੰਗੀਆਂ ਦੇ ਕਾਬਜ਼ ਹੋਣ ਤੋਂ ਮਗਰੋਂ ਪੂਰੇ ਇੱਕ ਸੌ ਸਾਲ ਡਾਢੇ ਔਖੇ ਲੰਘੇ। ਪੰਜਾਬ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਮੁਸਲਮਾਨ ਹਿੰਦੂ ਸਿੱਖ ਹੋ ਗਿਆ।"[51] ਇਸ ਗੁਆਚੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨੂੰ ਲੱਭਣ ਲਈ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਕੋਲ ਮੁੜ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਨ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਕੋਈ ਚਾਰਾ ਨਹੀਂ ਬਚਦਾ। ਉਹ ਸਮਕਾਲੀ ਸੰਕਟ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਉਸ ਵਿਰਾਸਤ ਦੀ ਊਰਜਾ ਨਾਲ ਨਜਿੱਠਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨੂੰ ਬਾਬੂ ਰਜ਼ਬ ਅਲੀ ਦੇ ਬੋਲਾਂ 'ਚੋਂ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ:

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਂਝੇ ਕੁਲ ਦੇ ਐ।
ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ ਅਲਬੇਲੇ
ਜਿੱਥੇ ਬਹਿ ਗਏ ਲੱਗ ਗਏ ਮੇਲੇ
ਸਿੱਖ ਬਣ ਗਏ ਕਰੋੜਾਂ ਚੇਲੇ
ਪਰਚਾਰ ਸੁਣਾਉਂਦੇ ਮੁੱਲ ਦੇ ਐ
ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਂਝੇ ਕੁਲ ਦੇ ਐ।[52]

ਹਰ ਸਮਾਜ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਆਪਣੀ ਨਿਵੇਕਲੀ ਸਮੂਹਿਕ ਸੰਵੇਦਨਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸੰਵੇਦਨਾ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਸਾਂਝੀ ਮਾਨਸਿਕ ਸੰਵੇਦਨਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦੀ ਉਪਜ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਸਦੇ ਸਹਿਜ ਉਲਾਰ ਵੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦਾ ਆਗਮਨ ਪੁਰਾਤਨ ਅਤੇ ਅਸਲ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਧਰਤੀ ਤੇ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਸਧਾਰਨ ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਤੱਖਣ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀਅਤ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀਨਿਧੀ ਵਜੋਂ ਦੇਖਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ।[53] ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਨੈਣ ਨਕਸ਼ਾਂ ਅਤੇ ਇਸ ਦੇ ਸੁਭਾਅ ਨੂੰ ਤਤਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪੱਖ ਤੋਂ ਨਹੀਂ ਬਲਕਿ ਚਿਰਕਾਲੀ ਇਤਿਹਾਸਕ ਦੌਰ (longue duree) ਦੇ ਨਜ਼ਰੀਏ ਤੋਂ ਤਲਾਸ਼ਣਾਂ ਅਤੇ ਪੜਨਾ ਵੀ ਜਰੂਰੀ ਹੈ।[54] ਵਿਰੋਧ ਦਾ ਵਿਚਾਰ, ਸਾਮਰਾਜ ਪ੍ਰਤੀ ਪ੍ਰਤੀਕਰਮ ਹੋਣ ਦੇ ਨਾਲ ਮਨੁੱਖੀ ਇਤਿਹਾਸ ਨੂੰ ਦੇਖਣ ਦਾ ਇੱਕ ਵਿਕਲਪਕ ਤਰੀਕਾ ਹੈ। ਇਸ ਵਿਚ ਵੱਖਵਾਦੀ ਰਾਸ਼ਟਰਵਾਦ ਤੋਂ ਦੂਰ ਮਨੁੱਖੀ ਮੁਕਤੀ ਪ੍ਰਤੀ ਵਧੇਰੇ ਏਕੀਕ੍ਰਿਤ ਨਜ਼ਰੀਏ ਵੱਲ ਖਿੱਚਕੇ ਲੈ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਇਕ ਤਾਕਤ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।[55] ਪ੍ਰਤਿਰੋਧ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਕੰਮ ਆਪਣੀ ਗੁਆਚੀ ਧਰਤੀ ਨੂੰ ਮੁੜ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨਾ, ਮੁੜ ਨਾਮ ਦੇਣਾ ਅਤੇ ਮੁੜ ਵਸੇਬਾ ਕਰਨਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਦਾਅਵਿਆਂ ਅਤੇ ਪਛਾਣਾਂ ਦਾ ਪੂਰਾ ਸਮੂਹ ਆਉਂਦਾ ਹੈ।[56] ਇਸ ਧਰਾਤਲ ਨੂੰ ਲੱਭਣ ਲਈ ਉਸ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵੀ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਿਨਾਂ ਕੋਈ ਹੋਰ ਜਰਖੇਜ਼ ਸਾਧਨ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ।

ਹਿੰਸਾ ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਨਿਜ਼ਾਮ ਦਾ ਧੁਰਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਬਸਤੀਆਂ ਵਿੱਚ ਬੇਲਗਾਮ ਅਫਸਰ ਸਥਾਨਿਕ ਲੋਕਾਂ ਤੇ ਜ਼ਬਰ ਕਰਨ ਤੋਂ ਸੰਕੋਚ ਨਹੀਂ ਕਰਦੇ ਸਨ।ਜਦੋਂ ਜਲਿਆਂਵਾਲੇ ਬਾਗ ਦਾ ਅਣਚਿਤਵਿਆ ਕਹਿਰ ਵਾਪਰਿਆ ਤਾਂ ਗਿਆਨੀ ਹੀਰਾ ਸਿੰਘ ਦਰਦ ਦੀਆਂ ਦੋ ਕਵਿਤਾਵਾਂ 'ਵੇਖ

ਮਰਦਾਨਿਆਂ ਤੂੰ ਰੰਗ ਕਰਤਾਰ ਦੇ' ਅਤੇ 'ਤੈਂ ਕੀ ਦਰਦ ਨਾ ਆਇਆ' ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਬੋਲ ਗੂੰਜ ਉੱਠੇ:

ਉਠ ਮਰਦਾਨਿਆ ਤੂੰ ਚੁਕ ਲੈ ਰਬਾਬ ਭਾਈ
ਵੇਖੀਏ ਇਕੇਰਾ ਫਿਰ ਰੰਗ ਸੰਸਾਰ ਦੇ।
ਪੈ ਰਹੀ ਹੈ ਆਵਾਜ ਕੰਨੀ ਮੇਰੇ ਐ ਦਰਦ ਵਾਲੀ
ਆ ਰਹੇ ਸੁਨਹੇੜੇ ਨੀ ਡਾਡੇ ਹਾਹਾਕਾਰ ਦੇ।
ਜੰਗਲਾਂ ਪਹਾੜਾਂ ਵਿਚ ਵਸਤੀਆਂ ਉਜਾੜਾ ਵਿਚ
ਪੈਣ ਪਏ ਵੈਣ ਵਾਂਗੂ ਡਾਢੇ ਦੁਖਿਆਰ ਦੇ
ਚੱਲ ਇਕ ਵੇਰ ਫੇਰਾ ਪਾਵੀਏ ਵਤਨ ਵਿਚ
ਛੇਤੀ ਹੋ ਵਿਖਾਈਏ ਤੈਨੂੰ ਰੰਗ ਕਰਤਾਰ ਦੇ।
ਵੇਖ ਤੂੰ ਪੰਜਾਬ ਵਿੱਚ ਲਹੂ ਦੇ ਤਲਾਬ ਭਰੇ
ਹਸਦੇ ਨੇ ਕੋਈ, ਕੋਈ ਰੋਰੋ ਕੇ ਪੁਕਾਰਦੇ।
ਕਰਦੇ ਸਲਾਮਾਂ ਕਈ ਰਿੜਦੇ ਨੇ ਢਿੱਡਾਂ ਭਾਰ
ਵੇਖਦੇ ਤਮਾਸ਼ੇ ਕਈ ਗੋਲੇ ਸਰਕਾਰ ਦੇ।
ਤਾੜ ਤਾੜ ਗੋਲੀਆਂ ਚਲਾਂਵਦੇ ਬੇਦੋਸ਼ਿਆਂ ਤੇ
ਬੰਦਿਆਂ ਦੇ ਉੱਤੇ ਢੰਗ ਸਿੱਖਦੇ ਸ਼ਿਕਾਰ ਦੇ।[57]

ਇਸ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਜਾਵੇਦ ਜ਼ਕੀ, ਪੋ. ਪੂਰਨ ਸਿੰਘ, ਪੋ. ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ, ਬਾਵਾ ਬੁੱਧ ਸਿੰਘ ਆਦਿ ਲੇਖਕਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਤੋਂ ਰੂਪਾਨ ਕੀਤਾ। 20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਹਲਾਤਾਂ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਫਲਸਫੇ ਨੂੰ ਲੋਕਾਈ ਵਿਚ ਜੋਸ਼ ਭਰਨ ਲਈ ਕਵੀ ਬਾਖੂਬੀ ਬਿਆਨ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਬਸਤੀਵਾਦੀ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚਲੀਆਂ ਵੱਖ-2 ਲਹਿਰਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਵਿਰਾਸਤੀ ਤੱਤਾਂ ਨੂੰ ਨਵੇਂ ਹਲਾਤਾਂ ਮੁਤਾਬਕ ਸਿਰਜ ਕੇ ਸੰਦੇਸ਼ ਦੇਣ ਦਾ ਬਾਕਮਾਲ ਯਤਨ ਕੀਤਾ। ਇਹ ਵਿਰਾਸਤੀ ਅਮੀਰੀ ਸਮਕਾਲੀਨ ਚਣੌਤੀਆਂ ਨੂੰ ਸਰ ਕਰਨ ਲਈ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਧ ਊਰਜਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਨ 'ਚ ਸਹਾਈ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਵੱਡਾ ਹਿਸਾ ਸਿੱਧੇ ਤੌਰ ਤੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਵੀ ਸੀ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਇਹਨਾਂ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਤੇ ਕਵੀਆਂ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ ਦਾ ਹਿਸਾ ਵੀ ਬਣਾਇਆ।ਜੇਕਰ ਅਜਾਦੀ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਸਮਾਜਿਕ ਬਰਾਬਰੀ ਨੂੰ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਨਾਕਾਮ ਰਹੇ ਤਾਂ ਇਹ ਬਸਤੀਵਾਦ ਦਾ ਹੀ ਇੱਕ ਰੂਪ ਬਣਕੇ ਰਹਿ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਕਰਕੇ ਅਜਾਦੀ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਦੁਬਾਰਾ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਲੋਕ ਲਹਿਰਾਂ ਖਾਸਕਰ ਨਕਸਲੀ ਲਹਿਰ ਦੇ ਕਵੀਆਂ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਣਾ ਸ੍ਰੋਤ ਬਣਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਸੰਤ ਰਾਮ ਉਦਾਸੀ ਆਪਣੀ ਕਵਿਤਾ 'ਮਰਦਾਨਣ ਦਾ ਮਰਦਾਨੇ ਨੂੰ ਖਤ' ਰਾਹੀਂ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਉਭਾਰ ਤੇ ਸ਼ਿਕਵਾ ਜਤਾਉਂਦਾ ਹੈ।ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਇਤਿਹਾਸ ਨੂੰ ਗਤੀ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਦੇ ਬਿੰਬ ਇਤਿਹਾਸ ਦੇ ਕਾਲ ਚੱਕਰ ਮੁਤਾਬਿਕ ਬਦਦਲਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਵਿੱਚ ਇਸ ਤਰਾਂ ਬੈਠ ਗਏ ਹਨ ਕਿ ਉਹ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਹੀ ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਦੇ ਬਿੰਬਾਂ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਮੂਹਰਲੀ ਕਤਾਰ ਵਿੱਚ ਆ ਖੜਦੇ ਹਨ।ਭਾਵੇਂ ਉਹ ਪ੍ਰਤੀਰੋਧ ਰਾਜਸੀ ਜ਼ਬਰ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਫਿਰ ਸਮਾਜਿਕ ਅਨਿਆਂ, ਸੰਪਰਦਇਕ ਵੰਡ ਜਾਂ ਧਾਰਮਿਕ ਪਖੰਡ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਹੋਵੇ।

NOTES AND REFERENCES:

1) ਖੁਸ਼ਵੰਤ ਸਿੰਘ, ਏ ਹਿਸਟਰੀ ਆਫ ਦਾ ਸਿੱਖਜ਼, ਭਾਗ ਪਹਿਲਾ, ਆਕਸਫੋਰਡ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪ੍ਰੈਸ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 2017 (ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ 1963), ਪੰਨਾ, 45.

2) ਜੇ.ਡੀ. ਕਨਿੰਘਮ (ਅਨੁ. ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਗੁਰਮੁਖ), ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ, ਲਾਹੌਰ ਬੁਕ ਸ਼ਾਪ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 1985, ਪੰਨਾ 55
3) ਜੇ. ਐਸ. ਗਰੇਵਾਲ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਇਨ ਹਿਸਟਰੀ, ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਚੰਡੀਗੜ, 1998(ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ 1969), ਪੰਨਾ, 145.
4) ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ, ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ (1469-1765), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2013, ਪੰਨੇ 13-14.
5) ਅਨਿਲ ਚੰਦਰ ਬੈਨਰਜ਼ੀ, ਦਿ ਸਿੱਖ ਗੁਰੂਜ ਐਂਡ ਸਿੱਖ ਰਿਲੀਜ਼ਨ, ਮੁਨਸ਼ੀਰਾਮ ਮਨੋਹਰਲਾਲ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 1983, ਪੰਨਾ. 118
6) ਸੁਮੇਲ ਸਿੰਘ ਸਿੱਧੂ, "ਇਤੁ ਮਾਰਗਿ ਪੈਰੁ ਧਰੀਜੈ...: ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਵਾਲੀ ਦੀ ਜ਼ਮੀਨ ਕਿੱਥੇ ਹੈ", ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 10 ਨਵੰਬਰ, 2019.
7) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 360.
8) ਗੋਕਲ ਚੰਦ ਨਾਰੰਗ, ਟਰਾਂਸਫਰਮੇਸ਼ਨ ਆਫ ਸਿੱਖਿਜ਼ਮ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 1960 (ਪੰਜਵਾਂ ਸੰਸ.), ਪੰਨਾ. 17
9) ਹਵਾਲਾ, ਜੇ. ਐਸ. ਗਰੇਵਾਲ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਇਨ ਹਿਸਟਰੀ, ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਚੰਡੀਗੜ, 1998(ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ 1969), ਪੰਨਾ, 144.
10) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 1412.
11) ਜੇ.ਐਸ.ਬੈਂਸ, "ਪੋਲੀਟੀਕਲ ਆਈਡੀਆਜ਼ ਆਫ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ", ਦਿ ਇੰਡੀਅਨ ਜਰਨਲ ਆਫ ਪੋਲੀਟੀਕਲ ਸਾਇੰਸ, ਜਿਲਦ. 23ਵੀਂ, ਨੰਬਰ. 4, 1962, ਪੰਨਾ, 309.
12) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ, 318.
13) ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ, ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ, ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1998(ਤੀਜੀ ਵਾਰ), ਪੰਨਾ, 1.
14) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ, 2.
15) ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰ ਪਹਿਲੀ ਪਾਉੜੀ 24ਵੀਂ.
16) ਡਾ. ਜਸਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਰਾਜ ਦਾ ਸਿੱਖ ਸਕੰਲਪ, ਨਵਯੁੱਗ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ, ਦਿੱਲੀ, 2009, ਪੰਨਾ 96.
17) ਜੇ. ਐਸ. ਗਰੇਵਾਲ, "ਹਿਸਟਰੀ ਇਨ ਡਰਾਮਾ", ਪ੍ਰੋਸੀਡਿੰਗਜ਼ ਆਫ ਇੰਡੀਅਨ ਹਿਸਟਰੀ ਕਾਂਗਰਸ, ਅੰਕ. 44, (1983), ਪੰਨਾ. 562.
18) ਆਸ਼ਾ ਕੌਸ਼ਿਕ, "ਪਾਰਟੀਸ਼ਨ ਆਫ ਇੰਡੀਆ: ਰਿਸਪੌਨਸ ਆਫ ਇਮਡੀਅਨ ਨਾਵਲਿਸਟ ਇਨ ਇੰਗਲਿਸ਼", ਐਸ. ਆਰ. ਚਕਰਵਰਤੀ ਅਤੇ ਮਜ਼ਹਰ ਹੁਸੈਨ (ਸੰਪਾਦਕ), ਪਾਰਟੀਸ਼ਨ ਆਫ ਇੰਡੀਆ: ਲਿਟਰੇਰੀ ਰਿਸਪੌਨਸਜ਼, ਹਰ੍ਆਨੰਦ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 1993, ਪੰਨਾ. 39.
19) ਡੇਵਿਡ ਹਰਲਾਨ, "ਇੰਟਲੈਕਚੂਅਲ ਹਿਸਟਰੀ ਐਂਡ ਦਿ ਰਿਟਰਨ ਆਫ ਲਿਟਰੇਚਰ", ਦਿ ਅਮੈਰੀਕਨ ਹਿਸਟੋਰੀਕਲ ਰਿਵਿਊ, ਅੰਕ. 94, ਨੰਬਰ. 3, 1989, ਪੰਨਾ. 581.
20) ਜੇ. ਐਸ. ਗਰੇਵਾਲ, "ਹਿਸਟਰੀ ਇਨ ਡਰਾਮਾ", ਪੰਨਾ.562.
21) ਲੁਡਮਿਲਾ ਜੋਰਡਾਨੋਵਾ, ਪਰੈਕਟਿਸ ਆਫ ਹਿਸਟਰੀ, ਹੌਡਰ ਆਰਨੋਲਡ, ਨਿਊ ਯਾਰਕ, 2006, ਪੰਨਾ. 78.
22) ਈਸ਼ਵਰ ਦਿਆਲ ਗੌੜ, ਫਰੀਦਾ ਖਾਕ ਨਾ ਨਿੰਦੀਐ, ਆਉਟਮਨ ਆਰਟ, ਸੰਗਰੂਰ, 2019 (ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ 2016), ਪੰਨਾ. 10.
23) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 11.
24) ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਇੰਪੀਰੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਵਿੰਟੇਜ਼ ਬੁਕਸ, ਲੰਡਨ, 1994, ਪੰਨਾ. 1.
25) ਸਾਰਾ ਮਿਲਜ਼, ਮਿਸ਼ੇਲ ਫੂਕੋ, ਰੌਟਲਿਜ਼, ਲੰਡਨ, 2007, ਪੰਨਾ. 35.
26) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 69.
27) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 1039.
28) ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਇੰਪੀਰੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਪੰਨਾ 1.
29) ਕਲਿ ਆਈ ਕੁਤੇ ਮੁਹੀ ਖਾਜੁ ਹੋਆ ਮੁਰਦਾਰ ਗੁਸਾਈ।

ਰਾਜੇ ਪਾਪ ਕਮਾਵਦੇ ਉਲਟੀ ਵਾੜ ਖੇਤ ਕਉ ਖਾਈ।
ਪਰਜਾ ਅੰਧੀ ਗਿਆਨ ਬਿਨੁ ਕੂੜੁ ਕੁਸਤਿ ਮੁਖਹੁ ਆਲਾਈ।
ਚੇਲੇ ਸਾਜ ਵਜਾਇਦੇ ਨਚਨਿ ਗੁਰੂ ਬਹੁਤੁ ਬਿਧਿ ਭਾਈ।
ਸੇਵਕ ਬੈਠਨਿ ਘਰਾ ਵਿਚ ਗੁਰ ਉਠਿ ਘਰੀ ਤਿਨਾੜੇ ਜਾਈ।
ਕਾਜੀ ਹੋਏ ਰਿਸਵਤੀ ਵਢੀ ਲੈ ਕੇ ਹਕ ਗਵਾਈ।
ਇਸਤ੍ਰੀ ਪੁਰਖੈ ਦਾਮ ਹਿਤੁ ਭਾਵੈ ਆਇ ਕਿਥਾਊ ਜਾਈ।
ਵਰਤਿਆ ਪਾਪ ਸਭਸ ਜਗ ਮਾਂਹੀ॥ (ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰ ਪਹਿਲੀ, ਪਉੜੀ 30ਵੀਂ.)

30) ਮਹਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਰੰਧਾਵਾ ਅਤੇ ਦਵਿੰਦਰ ਸਤਿਆਰਥੀ(ਸੰਕਲਨ ਅਤੇ ਸੰਪਾਦਨ), ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਲੋਕ ਗੀਤ, ਸਾਹਿਤ ਅਕਾਦਮੀ,ਦਿੱਲੀ, 2015(ਪੰਦਰਵੀਂ ਵਾਰ), ਪੰਨਾ. 89.
31) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ.90.
32) ਅਕਸ਼ੈ ਕੁਮਾਰ, ਪੋਇਟਰੀ, ਪੋਲੇਟਿਕਸ ਐਂਡ ਕਲਚਰ: ਐਸੇਜ਼ ਆਨ ਇੰਡੀਅਨ ਟੈਕਸਟਜ਼ ਐਂਡ ਕੰਟੈਕਸਟਜ਼, ਰੌਟਲਿਜ਼, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 2009, ਪੰਨਾ. 213.
33) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ. 213.
34) ਅਕਸ਼ੈ ਕੁਮਾਰ, ਪੋਇਟਰੀ, ਪੋਲੇਟਿਕਸ ਐਂਡ ਕਲਚਰ: ਐਸੇਜ਼ ਆਨ ਇੰਡੀਅਨ ਟੈਕਸਟਜ਼ ਐਂਡ ਕੰਟੈਕਸਟਜ਼, ਪੰਨਾ. 215.
35) ਪਰਮਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਬਾਬੂ ਫਿਰੋਜ਼ਦੀਨ ਸ਼ਰਫ: ਜੀਵਨ ਤੇ ਰਚਨਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1986, ਪੰਨਾ. 1.
36) ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ ਕੇਸਰ, ਗ਼ਦਰ ਲਹਿਰ ਦੀ ਵਾਰਤਕ, ਸੰਪਾ ਗਿਆਨੀ ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ, ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ, 2008, ਪੰਨਾ, 8.
37) ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ ਕੇਸਰ (ਸੰਪਾ), ਗ਼ਦਰ ਲਹਿਰ ਦੀ ਕਵਿਤਾ, ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1995, ਪੰਨਾ, 12.
38) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ, 31.
39) ਸ਼ਫਕਤ ਤਨਵੀਰ ਮਿਰਜ਼ਾ ਮਿਸ ਓ. ਐਮ ਲਲਾਈਡ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀ ਇਕ ਟਿੱਪਣੀ ਦਾ ਹਵਾਲਾ ਦਿੰਦੇ ਹੋਏ ਇਹ ਸਪੱਸ਼ਟ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ ''ਇੰਡੀਅਨ ਪ੍ਰੈਸ ਐਕਟ 1910 ਦੇ ਪਾਸ ਹੋਣ ਤੋਂ ਲੈਕੇ 1947 ਵਿਚ ਆਜ਼ਾਦੀ ਮਿਲਣ ਤਕ ਕੁਝ ਪ੍ਰਿੰਟਿਡ ਸਮੱਗਰੀ ਦੀਆਂ ਕਾਪੀਆਂ, ਜਿਹੜੀਆਂ ਕਿ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਪੜੀਆਂ ਜਾ ਰਹੀਆਂ ਸਨ, ਉਹਨਾਂ ਉੱਪਰ ਸਰਕਾਰੀ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਪਾਬੰਦੀ ਲਗਾਈ ਗਈ ਸੀ ਨੂੰ ਇੰਡੀਆ ਦਫਤਰ ਅਤੇ ਬ੍ਰਿਟਿਸ਼ ਮਿਯੂਜੀਅਮ ਲਾਇਬ੍ਰੇਰੀ ਭੇਜਿਆ ਗਿਆ ਸੀ ... ਖੇਤਰੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਲਿਖਿਆ ਇਹ ਸਾਹਿਤ ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕਾਵਿਕ ਸੀ ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਰਾਸ਼ਟਰਵਾਦ ਦੀ ਵਡਿਆਈ ਕਰਦਾ ਸੀ ਅਤੇ ਇਸਦੇ ਪਾਠਕਾਂ ਨੂੰ ਅੰਗਰੇਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਆਜ਼ਾਦੀ ਲਈ ਲੜਨ ਦੀ ਅਪੀਲ ਕਰਦਾ ਸੀ। 1919 ਵਿਚ ਜਲ੍ਹਿਆਂਵਾਲਾ ਬਾਗ ਵਿਚ ਹੋਈ ਗੋਲੀਬਾਰੀ ਅਤੇ 1931 ਵਿਚ ਇਨਕਲਾਬੀ ਨਾਇਕ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਦੀ ਫਾਂਸੀ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਰਾਸ਼ਟਰਵਾਦੀ ਕਵਿਤਾ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾਲ ਸਰੂਪ ਫੈਲਿਆ। ਇਹ 'ਰਾਸ਼ਟਰਵਾਦੀ ਗੀਤ' ਬਹੁਤ ਪ੍ਰਭਾਵਪੂਰਣ ਸਨ ਅਤੇ ਉਕਤ ਕੈਟਾਲਾਗ ਜਿਸ ਵਿਚ ਲਗਭਗ 700 ਗੀਤ ਸਨ, ਦਾ ਲਗਭਗ ਅੱਧਾ ਹਿੱਸਾ ਸਨ'': ਸ਼ਫਕਤ ਤਨਵੀਰ ਮਿਰਜ਼ਾ, ਰੀਸਿਸਟੈਨਸ ਥੀਮਜ਼ ਇਨ ਪੰਜਾਬੀ ਲਿਟਰੇਚਰ, ਸੰਗ੍ਏਮੀਲ ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ, ਲਾਹੌਰ, 1992, ਪੰਨਾ. 40,41.
40) ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਇੰਪੀਰੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਪੰਨਾ.1.
41) ਰਕਸ਼ੰਦਾ ਜਲੀਲ(ਸੰਪਾਦਕ),, ਜਲਿਆਂਵਾਲਾਬਾਗ: ਲਿਟਰੇਰੀ ਰਿਸਪੌਨਸਜ਼ ਇਨ ਪਰੋਜ਼ ਐਂਡ ਪੋਇਟਰੀ, ਪੰਨਾ.7.
42) ਜਸਵੰਤ ਜ਼ਫਰ, ''ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਸੰਗ'', ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 3 ਨਵੰਬਰ, 2019.
43) ਕੇ. ਐਨ. ਪਾਨਿਕਰ, ਕਲੋਨੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਰੀਸਿਸਟੈਨਸ, ਪੰਨਾ.35.
44) ਹਜ਼ਾਰਾ ਸਿੰਘ ਮੁਸ਼ਤਾਕ
45) ਬਾਬੂ ਫਿਰੋਜ਼ਦੀਨ ਸ਼ਰਫ, ''ਪੀਰ ਨਾਨਕ'',
46) ਬਾਬੂ ਫਿਰੋਜ਼ਦੀਨ ਸ਼ਰਫ, ''ਹਾਰੇ'',

47) ਸੁਮੇਲ ਸਿੰਘ ਸਿੱਧੂ, "ਇਤੁ ਮਾਰਗਿ ਪੈਰੁ ਧਰੀਜੈ...: ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਵਾਲੀ ਦੀ ਜ਼ਮੀਨ ਕਿੱਥੇ ਹੈ", ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 10 ਨਵੰਬਰ, 2019.
48) ਅਮਰਜੀਤ ਚੰਦਨ, "ਨਾਨਕ ਨਾਮੁ", ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 6 ਜਨਵਰੀ, 2019.
49) ਧਨੀ ਰਾਮ ਚਾਤ੍ਰਿਕ, "ਆ ਬਾਬਾ"
50) ਕੇ. ਐਨ. ਪਾਨਿਕਰ, ਕਲੋਨੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਰੀਸਿਸਟੈਨਸ, ਆਕਸਫੋਰਡ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪ੍ਰੈਸ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 2009 (ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ 2007), ਪੰਨਾ.24.
51) ਅਮਰਜੀਤ ਚੰਦਨ, "ਨਾਨਕ ਨਾਮੁ", ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 6 ਜਨਵਰੀ, 2019.
52) ਕਵੀਸ਼ਰ ਸੁਖਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਸੁਤੰਤਰ (ਸੰਪਾ.), ਅਨੋਖਾ ਰਜਬ ਅਲੀ, ਸੰਗਮ ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ, ਸਮਾਣਾ, 2013, ਪੰਨਾ 16.
53) ਮਨਜਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, "ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸੰਵੇਦਨਾ",ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 4 ਅਗਸਤ, 2019.
54) ਈਸ਼ਵਰ ਦਿਆਲ ਗੌੜ, ਫਰੀਦਾ ਖਾਕ ਨਾ ਨਿੰਦੀਐ, ਪੰਨਾ 9.
55) ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਇੰਪੀਰੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਪੰਨੇ, 260-61.
56) ਐਡਵਰਡ ਸੈਦ, ਕਲਚਰ ਐਂਡ ਇੰਪੀਰੀਅਲਿਜ਼ਮ, ਪੰਨਾ.273.
57) ਹੀਰਾ ਸਿੰਘ ਦਰਦ, "ਵੇਖ ਮਰਦਾਨਿਆਂ ਤੂੰ ਰੰਗ ਕਰਤਾਰ ਦੇ", ਉਦਰਤ ਕਾਵਿ ਸ਼ਾਸਤਰ, ਜਿਲਦ ਪਹਿਲੀ, ਅੰਕ 15, ਮਈ-ਅਗਸਤ, 2019, ਪੰਨੇ 41-43.

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਨਿਆਂ ਸਿਧਾਂਤ

ਡਾ. ਬਲਜੀਤ ਸਿੰਘ ਵਿਰਕ*

15ਵੀਂ ਤੇ 16ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਭਾਰਤੀ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦੇ ਘੁਣ ਨੇ ਖੋਖਲਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਅਲਾਮਤਾਂ ਦੀ ਧੁੰਦ ਆਸ ਦੀਆਂ ਕਿਰਨਾਂ ਨੂੰ ਦੱਬੀ ਬੈਠੀ ਹੋਈ ਸੀ। ਅੰਦਰੂਨੀ ਪਰਜਾ ਪਾਲਕ ਆਪਣੇ ਅਸਲ ਫਰਜਾਂ ਨੂੰ ਤਿਲਾਂਜਲੀ ਦੇ ਕੇ ਲੋਕਾਈ ਦੀ ਰਤ ਚੂਸਣ ਵਿਚ ਗਲਤਾਨ ਸਨ। ਤੱਤਗਿਆਨ ਵਿਹੂਣੇ ਧਾਰਮਿਕ ਆਗੂ ਅਗਿਆਨੀ ਪਰਜਾ ਲਈ ਰਾਹ ਦਸੇਰਾ ਬਣਨ ਦਾ ਢੰਕਵੰਜ ਰਚ ਰਹੇ ਸਨ। ਮਨ ਦੀ ਅੰਦਰੂਨੀ ਮੈਲ ਨੂੰ ਧੋਣ ਦੀ ਬਜਾਏ ਤਨ ਧੋਣ ਦੇ ਚੱਕਰਾਂ 'ਚ ਫਸਿਆ ਮਨੁੱਖ ਤੀਰਥਾਂ 'ਤੇ ਜਲ ਟੁੱਬੀਆਂ ਲਾਉਣ ਵਿਚ ਗਵਾਚ ਚੁੱਕਾ ਸੀ। ਬਾਹਰੀ ਅੰਧਕਾਰ ਨੇ ਸੱਚ ਦੇ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਰੌਸ਼ਨਾਉਣ ਤੋਂ ਲਕੋ ਰੱਖਿਆ ਸੀ। ਸੱਚਾ ਜੋਗ ਪਿੰਡੇ ਦੀ ਬਿਭੂਤੀ ਤੇ ਕੰਨਾਂ ਦੀਆਂ ਮੁੰਦਰਾਂ ਤਕ ਹੀ ਸਿਮਟ ਕੇ ਰਹਿ ਗਿਆ ਸੀ। ਪਿਆਰਾ ਸਿੰਘ ਪਦਮ ਇਸ ਦਿਸ਼ਾ ਨੂੰ ਹੋਰ ਸਪੱਸ਼ਟ ਕਰਦੇ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ 'ਘਰ ਬਾਹਰ ਛੱਡਣ ਜੋਗੇ ਤਿਆਗੀ ਬੈਰਾਗੀ, ਸਾਧੂ ਸੰਤਾਂ ਨੇ ਤਾਂ ਦੁਨਿਆਵੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰੀਆਂ ਤੋਂ ਲਾਂਭੇ ਹੋ ਕੇ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਨੰਦ ਮਾਣ ਲਿਆ, ਪਰ ਸਮਾਜਿਕ ਭਲਾਈ ਦਾ ਕਿਸੇ ਉਪਰਾਲਾ ਨਾ ਕੀਤਾ।'[1] ਅਜਿਹੇ ਭਾਂਜਵਾਦੀਆਂ ਦਾ ਲੰਮੇਰਾ ਇਤਿਹਾਸ ਹੈ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਨਿਰੰਤਰ ਸਿੱਖੀ ਦੇ ਸਮਾਨਅੰਤਰ ਵੀ ਆਪਣੀਆਂ ਕੋਸ਼ਿਸਾਂ ਜਾਰੀ ਰੱਖੀਆਂ। ਸਿਰਫ ਧਾਰਮਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਆਰਥਿਕ ਤੇ ਜਾਤੀ ਤੌਰ 'ਤੇ ਵੀ ਸਮਾਜ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵੰਡਿਆ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਜਾਤੀ ਪਾੜੇ ਨੇ ਲੋਕਾਈ ਦੇ ਵੱਡੇ ਹਿੱਸੇ ਨੂੰ ਹਾਸ਼ੀਏ 'ਤੇ ਧੱਕ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਸਮਾਜਿਕ ਵੰਡ ਨੂੰ ਲਿੰਗ ਵਿਤਕਰੇ ਨੇ ਹੋਰ ਵੀ ਤਰਸਯੋਗ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ। ਇਸ ਆਰਥਿਕ ਲੁੱਟ ਹੇਠ ਬਹੁਤੇ ਪੇਟ ਭਰਨ ਤੋਂ ਵੀ ਮੁਥਾਜ਼ ਸਨ। ਰੋਟੀਆਂ 'ਚ ਚੋਂਦੀ ਰਤ ਭਾਗੋਆਂ ਦੇ ਹਾਲੀਏ ਨੂੰ ਬਾਖੂਬੀ ਬਿਆਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਜ਼ੁਲਮ ਦੀ ਗਰਦਸ਼ ਹਿੰਦੋਸਤਾਨ ਵਾਂਗ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਅਸਮਾਨ 'ਤੇ ਵੀ ਗਹਿਰਾਈ ਹੋਈ ਸੀ। ਆਪਸੀ ਲੜਾਈਆਂ 'ਚੋਂ ਉੱਪਜੀ ਅਸ਼ਾਂਤੀ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਤਬਾਹੀ ਵੱਲ ਲੈ ਗਈ। ਅਜਿਹੀ ਅਸ਼ਾਂਤੀ 'ਚ ਨਿਆਂ ਦੀ ਤਵੱਕੋ ਕਰਨਾ ਸੁਪਨਾ ਸਿਰਜਣ ਤੋਂ ਵੱਧ ਕੁਝ ਵੀ ਨਹੀਂ ਹੈ ਤੇ ਮਹਿਜ਼ ਇੱਕ ਭਰਮ ਮਾਤਰ ਸੀ। ਕਿਸਾਨ, ਵਪਾਰੀ ਤੇ ਕਾਰੀਗਰ ਸ਼੍ਰੇਣੀਆਂ 'ਨਾ ਸਿਰਫ ਕਾਨੂੰਨੀ ਲਗਾਨ ਨਿਚੋੜੇ ਜਾਣ ਰਾਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ ਨੂੰ ਹੀ ਭੋਗ ਰਹੀਆਂ ਸਨ, ਸਗੋਂ ਇੱਕ ਦੂਜੇ ਦੇ ਖਿਲਾਫ਼ ਲੜ ਰਹੇ ਸਾਮੰਤਾਂ ਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਜ਼ਰਖਰੀਦ ਫੌਜਾਂ ਦੇ ਜ਼ੁਲਮ-ਜ਼ਬਰ ਤੇ ਮਾਰਧਾੜ ਦਾ ਵੀ ਸ਼ਿਕਾਰ ਸਨ, ਜਿਹੜੀਆਂ ਫ਼ੌਜਾਂ ਕਿਸਾਨਾਂ ਦੀਆਂ ਫ਼ਸਲਾਂ ਤਬਾਹ ਕਰ ਦੇਦੀਆਂ ਸਨ ਤੇ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਨੂੰ ਮਿੱਟੀ ਨਾਲ ਮਿਲਾ ਦੇਂਦੀਆਂ ਸਨ।'[2] ਲੋਕਾਈ ਤੋਂ ਲਗਾਨ ਵਸੂਲਣ ਦੇ ਮਾਮਲੇ 'ਤੇ ਕੋਈ ਢਿਲ ਨਹੀਂ ਸੀ ਪਰ ਇਸ ਦੇ ਬਦਲੇ ਸੱਤਾ ਆਪਣੇ ਕਰਤੱਵਾਂ ਤੋਂ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੁਨਕਰ ਸੀ। ਪਾਪ ਤੇ ਲੁਟ ਦਾ ਇਹ ਦਾਇਰਾ ਵਿਸ਼ਾਲ ਹੋ ਕੇ ਮੱਧ ਏਸ਼ੀਆ ਤਕ ਜਾ ਪੁੱਜਿਆ। ਦੌਲਤ ਖਾਂ, ਆਲਮ ਖਾਂ 'ਤੇ ਰਾਣਾ ਸਾਂਗਾ ਦੁਆਰਾ ਬਾਬਰ ਨੂੰ ਉਤਸ਼ਾਹਿਤ ਕਰਨ ਦੇ ਯਤਨ[3] 1526 'ਚ ਹਕੀਕਿਤ ਵਿਚ ਬਦਲ ਗਏ। ਖੁਰਾਸਾਨ ਤੋਂ ਹਿੰਦੋਸਤਾਨ ਢੁਕੀ ਪਾਪ ਦੀ ਜੰਞ ਨੇ ਸਾਡੀ ਇੱਜ਼ਤ ਦੀਆਂ ਮੀਡੀਆਂ ਖਲਾਰ ਦਿੱਤੀਆ। ਸੱਤਾ ਵਿਚਲੀ ਇਹ ਤਬਦੀਲੀ ਮਹਿਜ਼ ਰਾਜ ਸਿੰਘਾਸਨ ਤਕ ਹੀ ਸੀਮਿਤ ਨਾ ਰਹੀ। ਇਸ ਨੇ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਨੂੰ ਵੀ ਡੰਗ ਦਿੱਤਾ। 1000 ਈਸਵੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 1526 ਈਸਵੀ ਤਕ ਦਾ ਸਮਾਂ ਆਮ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਚ ਭਾਰਤੀ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਨਿਰਾਸ਼ਤਾ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਪਤਨ ਦਾ ਸਮਾਂ ਸੀ।[4] ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ, ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ 'ਆਪਣੇ ਲੋਕਾਂ ਵਿਚ ਰਾਜਸੀ ਅਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਅਧੋਗਤੀ ਨੂੰ ਅਨੁਭਵ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਉਹ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਵਿਦੇਸ਼ੀ ਜੂਲੇ ਅਤੇ ਪੁਜਾਰੀ ਸ਼੍ਰੇਣੀ ਦੀਆਂ ਜਕੜਾਂ ਅਤੇ ਪਾਬੰਦੀਆਂ ਤੋਂ ਹਰ ਪੱਖੋਂ ਸੁਤੰਤਰ ਵੇਖਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਸਨ।... ਉਹਨਾਂ

*ਜੀ. ਐਚ. ਜੀ. ਖਾਲਸਾ ਕਾਲਜ, ਗੁਰੂਸਰ ਸਧਾਰ।

ਨੇ ਲੋਕਾਂ ਅੰਦਰ ਘੱਟਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਦੇਸ਼ ਭਗਤੀ ਨੂੰ ਉਤੇਜਿਤ ਕੀਤਾ ਜਿਹੜੇ ਹੀਣਤਾ ਨਾਲ ਵਿਦੇਸ਼ੀ ਹਾਕਮਾਂ ਨੂੰ ਵਫਾਦਾਰੀ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਪ੍ਰਵਾਨ ਹੋਣ ਲਈ ਉਨਾਂ ਦੇ ਫ਼ੈਸ਼ਨਾਂ ਅਤੇ ਅਦਬ-ਆਦਾਬ ਦੀ ਨਕਲ ਕਰ ਰਹੇ ਸਨ।[5] ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਦੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਤੋਂ ਸਮਕਾਲੀਨ ਹਾਲਾਤਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਸਪੱਸ਼ਟਤਾ ਨਾਲ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ:

ਕਲਿ ਆਈ ਕੁਤੇ ਮੁਹੀ ਖਾਜੁ ਹੋਆ ਮੁਰਦਾਰ ਗੁਸਾਈ।
ਰਾਜੇ ਪਾਪ ਕਮਾਵਦੇ ਉਲਟੀ ਵਾੜ ਖੇਤ ਕਉ ਖਾਈ।
ਪਰਜਾ ਅੰਧੀ ਗਿਆਨ ਬਿਨੁ ਕੂੜੁ ਕੁਸਤਿ ਮੁਖਹੁ ਆਲਾਈ।
ਚੇਲੇ ਸਾਜ ਵਜਾਇਦੇ ਨਚਨਿ ਗੁਰੂ ਬਹੁਤੁ ਬਿਧਿ ਭਾਈ।
ਸੇਵਕ ਬੈਠਨਿ ਘਰਾ ਵਿਚ ਗੁਰ ਉਠਿ ਘਰੀ ਤਿਨਾੜੇ ਜਾਈ।
ਕਾਜੀ ਹੋਏ ਰਿਸਵਤੀ ਵਢੀ ਲੈ ਕੇ ਹਕ ਗਵਾਈ।
ਇਸਤ੍ਰੀ ਪੁਰਖੈ ਦਾਮ ਹਿਤੁ ਭਾਵੈ ਆਇ ਕਿਥਾਊ ਜਾਈ।
ਵਰਤਿਆ ਪਾਪ ਸਭਸ ਜਗ ਮਾਂਹੀ॥[6]

ਲੋਧੀ ਸ਼ਾਸਕਾਂ ਵਿਚ ਸੈਨਿਕ ਤਾਕਤ, ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਮਜ਼ਬੂਤੀ, ਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਬੁੱਧੀ ਦੀ ਥੁੜ ਸੀ। ਜੇ ਕਿਧਰੇ ਇਹ ਨਜ਼ਰ ਆਈ ਵੀ ਤਾਂ ਅਗਲੇਰਾ ਵਾਰਿਸ ਜਲਦ ਹੀ ਇਹਨਾਂ ਗੁਣਾ ਤੋਂ ਅਭਿੱਜ ਦਿਸਿਆ। ਇਹਨਾਂ ਹਾਲਾਤਾਂ ਵਿਚ ਸਥਾਨਿਕ ਬਗਾਵਤਾਂ ਦੀ ਸੁਰ ਨਿਰੰਤਰ ਉੱਚੀ ਹੁੰਦੀ ਚਲੀ ਗਈ। ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ 'ਤੇ ਭ੍ਰਿਸ਼ਟਚਾਰ ਦਾ ਰੰਗ ਗੂੜ੍ਹ ਹੁੰਦਾ ਗਿਆ। ਅਜਿਹੇ ਹਾਲਾਤਾਂ ਵਿਚ ਵੀ ਸਿਕੰਦਰ ਲੋਧੀ ਦੇ ਰਾਜ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀ ਪ੍ਰਸੰਸਾ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਕੁਝ ਕਲਮਾਂ ਅੱਖਰ ਝਰੀਟਣੋ ਨਾ ਮੁੜੀਆਂ। ਤਾਰੀਖ-ਏ-ਦਾਊਦੀ ਦੇ ਲੇਖਕ ਅਨੁਸਾਰ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਗਰੀਬ ਤੇ ਅਮੀਰ ਨੂੰ ਇੱਕੋ ਅੱਖ ਨਾਲ ਦੇਖਦਾ ਹੋਇਆ ਮੁਕੱਦਮਿਆਂ ਦੇ ਫੈਸਲੇ ਲਈ ਸਬੂਤਾਂ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾਉਂਦਾ ਸੀ। ਫਰਿਸਤਾ ਦੀ ਲੇਖਣੀ ਵੀ ਇਹੀ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਹੈ ਕਿ ਸਿਕੰਦਰ ਲੋਧੀ ਲੋਕਾਈ ਦੀਆਂ ਸ਼ਕਾਇਤਾਂ ਸੁਣਨ ਲਈ ਆਪਣੇ ਅਰਾਮ ਦੇ ਪਲ ਤੇ ਖਾਣ ਦਾ ਵਕਤ ਵੀ ਲੇਖੇ ਲਾ ਦਿੰਦਾ ਸੀ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਜੇਕਰ ਸਮਕਾਲੀਨ ਮਿਲਣ ਵਾਲੇ ਸੋਮਿਆਂ ਨਾਲ ਇਹਨਾਂ ਤੱਥਾਂ ਦੀ ਪੜਚੋਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਇਹ ਗੱਲਾਂ ਨਿਰਆਧਾਰ ਜਾਪਦੀਆਂ ਹਨ। ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦੇ ਨਿਆਂ ਹਿਤੈਸ਼ੀ ਹੋਣ ਦਾ ਘੇਰਾ ਆਪਣੇ ਧਰਮ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਤਕ ਹੀ ਮਹਿਦੂਦ ਸੀ।[7] ਸਿਕੰਦਰ ਲੋਧੀ ਨੇ ਉਲਮਾ ਵਰਗ ਦੇ ਸਮੂਹਿਕ ਫੈਸਲੇ ਕਰਕੇ ਬੋਧਨ ਨਾਂ ਦੇ ਇੱਕ ਬ੍ਰਹਮਣ ਨੂੰ ਮੌਤ ਦੀ ਸਜ਼ਾ ਦਿੱਤੀ। ਕਿਉਂਕਿ ਉਸ ਨੇ ਇਸਲਾਮ ਤੇ ਹਿੰਦੂ ਮਤ ਦੋਵੇਂ ਧਰਮਾਂ ਦੇ ਸੱਚੇ ਹੋਣ ਦੀ ਘੋਸ਼ਣਾ ਕੀਤੀ ਸੀ।[8] ਇਬਰਾਹੀਮ ਲੋਧੀ ਦੇ ਰਾਜ ਸ਼ਾਸਨ ਕਾਲ ਤੇ ਉਸ ਵਿਚੋਂ ਉਤਪੰਨ ਹੋਈ ਅਸ਼ਾਂਤੀ ਨੇ ਬਾਕੀ ਸਭ ਕੁਝ ਵੀ ਨਿਘਲ ਲਿਆ।

ਰਿਸ਼ਵਤਖ਼ੋਰੀ ਦੀਆਂ ਜੜ੍ਹਾਂ ਹਿੰਦੋਸਤਾਨ ਦੇ ਧਰਾਤਲ ਵਿਚ ਇੰਨੀਆਂ ਪੁਰਾਣੀਆਂ, ਡੂੰਘੀਆਂ ਅਤੇ ਘਰ ਕਰ ਚੁੱਕੀਆਂ ਹਨ ਕਿ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੇ ਲੰਮੇ ਅਰਸੇ ਬਾਅਦ ਵੀ ਇਹ ਬੁਰਾਈ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮੂੰਹ ਅੱਡੀ ਖਲੋਤੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੇ ਅਲੋਪ ਹੋਣ ਦੀ ਭਵਿੱਖੀ ਸੰਭਾਵਨਾ ਵੀ ਕਿੱਧਰੇ ਦਿਖਾਈ ਨਹੀਂ ਦਿੰਦੀ। ਅਫਸੋਸ! ਅਸੀਂ ਬਾਬੇ ਨਾਨਕ ਦੀਆਂ ਸਿੱਖਿਆਵਾਂ ਦੇ ਧਾਰਨੀ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਬਣੇ ਇਸ ਦੇ ਵਿਪਰੀਤ ਅਸੀਂ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ ਦੇ ਪੱਲੇ ਨੂੰ ਫੜੀ ਰੱਖਣ ਵਿਚ ਢਿੱਲ ਨਹੀਂ ਗੁਜ਼ਾਰੀ। ਸਮਕਾਲੀਨ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵੀ ਭ੍ਰਿਸ਼ਟਾਚਾਰੀ ਤੇ ਰਿਸ਼ਵਤਖ਼ੋਰੀ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਘਰ ਕਰ ਚੁੱਕੀ ਸੀ। ਪੈਸੇ ਦੀ ਇਸ ਲੁੱਟ ਅਤੇ ਭੁੱਖ ਵਿਚ ਰੱਬ ਦਾ ਵਾਸਤਾ ਅਤੇ ਪੁਕਾਰ ਅਣਸੁਣੀ ਹੋ ਕੇ ਰਹਿ ਗਈ ਸੀ। ਗਰਮ ਮੁੱਠੀ ਅਨਿਆਂ ਪਰੋਸ ਕੇ ਲੋਕ ਹੱਕਾਂ 'ਤੇ ਡਾਕੇ ਮਾਰ ਰਹੀ ਸੀ। ਇਸ ਅਣਮਨੁੱਖੀ ਵਰਤਾਰੇ ਦਾ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿੱਚ ਜ਼ਿਕਰ ਕੀਤਾ ਹੈ:

ਲਏ ਦਿਤੇ ਵਿਣੁ ਰਹੈ ਨਾ ਕੋਇ॥

ਰਾਜਾ ਨਿਆਉ ਕਰੇ ਹਥਿ ਹੋਇ॥[9]

ਵਾੜ ਖੇਤ ਨੂੰ ਖਾਹ ਰਹੀ ਸੀ, ਕਾਜ਼ੀ ਅਨਿਆਂ ਪਰੋਸ ਰਿਹਾ ਸੀ ਅਤੇ ਰਾਜਾ ਲੋਕਾਈ ਦੀ ਸਾਰ ਤੋਂ ਦੂਰ ਚਾਵਾਂ ਰੰਗਾਂ ਵਿਚ ਖੋ ਕੇ ਰਹਿ ਗਿਆ ਸੀ। ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਨੇ ਵੀ ਇਸ ਤੱਥ ਦੀ ਪ੍ਰੋੜ੍ਹਤਾ ਕੀਤੀ ਹੈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਵੱਢੀ-ਖੋਰੀ ਤੇ ਰਿਸ਼ਵਤ ਦਾ ਪਾਸਾਰਾ ਆਮ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਘੁਣ ਵਾਂਗ ਖਾ ਰਿਹਾ ਸੀ:

ਕਾਜੀ ਹੋਏ ਰਿਸਵਤੀ ਵਢੀ ਲੈ ਕੈ ਹਕ ਗਵਾਈ।[10]

ਸੁਭਾਵਿਕ ਹੀ ਪੈਸੇ ਨਾਲ ਹੋ ਰਹੇ ਨਿਆਂ 'ਚੋਂ ਇਨਸਾਫ਼ ਦੀ ਕਿਰਨ ਚਾਨਣ ਨਹੀਂ ਬਿਖੇਰ ਸਕਦੀ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਅਜਿਹੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸਖ਼ਤ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿਚ ਨਿਖੇਧੀ ਕਰਦੇ ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਪਰਾਇਆ ਹੱਕ ਹਿੰਦੂ ਲਈ ਗਊ ਅਤੇ ਮੁਸਲਮਾਨ ਲਈ ਸੂਅਰ ਖਾਣ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਹੈ।[11] ਮਨੁੱਖ ਦੁਆਰਾ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਲੁੱਟ ਅਧਰਮ ਦੀ ਵੱਡੀ ਨਿਸ਼ਾਨੀ ਹੈ। ਇਸ ਗੱਲ ਨੂੰ ਅਮਲ ਵਿਚ ਲਿਆਉਣ ਦੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਹੈ ਕਿ ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਿਖਾਵਾਕਾਰੀ ਮਨੁੱਖ ਤੀਰਥਾਂ 'ਤੇ ਜਾ ਕੇ ਵੀ ਮਨ ਦੀ ਮੈਲ ਨਹੀਂ ਉਤਾਰ ਸਕਦਾ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਅਨਿਆਂਕਾਰੀ ਮਨੁੱਖ ਵੀ ਕੁਕਰਮਾਂ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੇ ਪਲੀਤਪੁਣੇ ਨੂੰ ਦੂਰ ਨਹੀਂ ਕਰ ਸਕਦਾ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਅਜਿਹੇ ਮਾਣਸ ਖਾਣੈਂ ਮਨੁੱਖਾਂ ਦੀ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਬਾਰੇ ਸਵਾਲ ਕਰਦੇ ਹਨ:

ਜੇ ਰਤੁ ਲਗੈ ਕਪੜੈ ਜਾਮਾ ਹੋਇ ਪਲੀਤੁ॥
ਜੋ ਰਤੁ ਪੀਵਹਿ ਮਾਣਸਾ ਤਿਨ ਕਿਉ ਨਿਰਮਲੁ ਚੀਤੁ॥[12]

ਆਰਥਿਕ ਲੁੱਟ ਤੇ ਅਨਿਆਂ ਦੇ ਰਾਹ 'ਤੇ ਚੱਲਣ ਵਾਲਾ ਮਨੁੱਖ ਕਦਾਚਿਤ ਧਾਰਮਿਕ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ। ਸਿਰਫ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿਖਾਵਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕਾਮ, ਕ੍ਰੋਧ, ਲੋਭ, ਮੋਹ ਅਤੇ ਹੰਕਾਰ ਆਦਿ ਸਦਾਚਾਰਕ ਅਸੂਲਾਂ ਦਾ ਵੀ ਧਾਰਨੀ ਹੋਣਾ ਪਵੇਗਾ। ਜਨਮਸਾਖੀ ਪਰੰਪਰਾ ਵਿੱਚ ਮਲਿਕ ਭਾਗੋ ਤੇ ਭਾਈ ਲਾਲੋ ਦੀ ਸਾਖੀ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਗਵਾਹੀ ਭਰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਠੱਗੀ ਨਾਲ ਧੰਨਵਾਨ ਬਣੇ ਮਲਿਕ ਭਾਗੋ ਦੀ ਬਜਾਇ ਇੱਜ਼ਤ, ਮਾਣ ਤੇ ਸਨਮਾਨ ਦਸਾਂ-ਨਹੁੰਆਂ ਦੀ ਕਿਰਤ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਭਾਈ ਲਾਲੋ ਜੀ ਨੂੰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਰੋਟੀ 'ਚ ਵਗਦਾ ਲਹੂ ਲੋਟੂ ਵਰਗ ਨੂੰ ਸਮਾਜਿਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਨਸ਼ਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਲੁੱਟ ਤੇ ਕਿਰਤ ਵਿਚਲੇ ਇਨਸਾਫ ਨੂੰ ਰਤ ਤੇ ਦੁੱਧ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨ ਤੋਂ ਵੱਡਾ ਨਿਆਂ ਹੋਰ ਕੀ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਸਥਾਨ ਵਲੀ ਕੰਧਾਰੀ ਦੁਆਰਾ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਪਾਣੀ 'ਤੇ ਮਾਰੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹੱਕ ਨੂੰ ਦਿਵਾਉਣ ਦੀ ਸਾਖ ਭਰਦਾ ਹੈ।[13] ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੁਆਰਾ ਕੁਦਰਤੀ ਸੋਮਿਆਂ 'ਤੇ ਲੋਕਾਈ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਪੈਰਵੀ ਕਰਨ ਦੀ ਇਹ ਇੱਕ ਅਹਿਮ ਮਿਸਾਲ ਹੈ। ਕਰਮਜੀਤ ਸਿੰਘ ਆਪਣੀ ਕਵਿਤਾ ਵਿਚ ਲੋਕਾਂ ਦੁਆਰਾ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਅੱਗੇ ਨਿਆਂ ਲਈ ਕੀਤੀ ਫਰਿਆਦ ਦਾ ਉਲੇਖ ਕਰਦਾ ਹੈ:

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ ਹਸਨ ਅਬਦਾਲ ਬੈਠੇ
ਲੋਕਾਂ ਆ ਹਜ਼ੂਰ ਫ਼ਰਿਆਦ ਕੀਤੀ
ਪਾਣੀ ਬਾਝ ਮੱਛੀ ਵਾਂਗੂੰ ਤੜਫਦੇ ਹਾਂ
ਸਾਡੀ ਆ ਨਾ ਕਿਸੇ ਨੇ ਸਾਰ ਲੀਤੀ
ਇੱਕੋ ਸੋਮਾ ਪਹਾੜੀ ਤੋਂ ਆਵਦਾ ਸੀ
ਉਹ ਵੀ ਪੀਰ ਜੀ ਵਲੀ ਅਟਕਾ ਲਿਆ ਹੈ
ਸਾਨੂੰ ਸਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਇੰਝ ਜਾਪਦਾ ਏ
ਫਾਹਾ ਗਲ ਸਾਡੇ ਉਸ ਪਾ ਲਿਆ ਹੈ[14]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਸਮਾਜਿਕ ਨਿਆਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਮੁੱਖਤਾ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਤੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਰਾਹੀਂ ਵਿਅਕਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਸਮਾਜਿਕ ਬਰਾਬਰਤਾ ਦੇ ਬਿਨਾਂ ਨਿਆਂ ਦੀ ਤਵੱਕੋ ਕਰਨੀ ਅਸੰਭਵ ਹੈ। ਸਾਡੇ

ਸਮਾਜ ਦਾ ਇੱਕ ਵਰਗ ਉੱਤਰ-ਵੈਦਿਕ ਕਾਲ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਦੂਸਰਿਆਂ ਦੀ ਟਹਿਲਕਦਮੀ ਵਿਚ ਹੀ ਆਪਣਾ ਜੀਵਨ ਗੁਜ਼ਰ ਬਸਰ ਕਰਦਾ ਆ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਇਹਨਾਂ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਧਾਰਮਿਕ ਸਥਾਨਾਂ, ਧਾਰਮਿਕ ਮੌਕਿਆਂ ਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਆਗੂਆਂ ਦੀਆਂ ਦਹਿਲੀਜ਼ਾਂ 'ਤੇ ਪੈਰ ਰੱਖਣ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਸੀ। ਇਹ ਕਿਰਤੀ ਵਰਗ ਸਮਾਜਿਕ, ਆਰਥਿਕ, ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਅਨਿਆਂ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਸੀ। ਪਵਿੱਤਰ ਭਾਸ਼ਾ ਸੂਦਰਾਂ ਦੇ ਕੰਨਾਂ ਵਿਚ ਸਿੱਕਾ ਢਾਲਣ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਨਾਲ ਹੀ ਆਪਣੀ ਗੂੰਜ ਗਵਾ ਬੈਠਦੀ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਮਨੁੱਖਤਾ ਦੇ ਇਸ ਅਸੂਲ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਜਾਮਾ ਪਹਿਨਾਇਆ ਕਿ ਨੀਚ ਤੋਂ ਨੀਚ ਮਨੁੱਖ ਵੀ ਉੱਚੇ ਤੋਂ ਉੱਚੇ ਇਨਸਾਨ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਹੈ। 'ਨਸਲ ਤੇ ਜਾਤੀ ਦੇ ਹਿਸਾਬ ਨਾਲ ਅਥਵਾ ਰਾਜਸੀ ਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਹੱਕਾਂ ਦੇ ਮਾਮਲੇ ਵਿਚ ਸਭ ਇੱਕੋ ਜਿਹੇ ਅਧਿਕਾਰੀ ਹਨ।'[15] ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਸ਼ਬਦ ਉਚਾਰਦੇ ਹਨ:

ਨੀਚਾ ਅੰਦਰਿ ਨੀਚ ਜਾਤਿ॥ ਨੀਚੀ ਹੂ ਅਤਿ ਨੀਚੁ॥
ਨਾਨਕੁ ਤਿਨ ਕੈ ਸੰਗਿ ਸਾਥਿ॥ ਵਡਿਆ ਸਿਉ ਕਿਆ ਰੀਸ॥[16]

ਨੀਚਤਾ ਆਦਮੀ ਦੇ ਧੰਦੇ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਉਸ ਦੇ ਵਿਵਹਾਰ ਅਨੁਸਾਰ ਹੈ।'ਇਕ ਓਅੰਕਾਰ ਨਿਰੰਕਾਰ ਹੈ, ਪਰਾ ਭੌਤਿਕ ਹੈ, ਬੇਅੰਤ ਹੈ, ਸਭ ਦਾ ਮਾਲਕ ਵੀ ਹੈ, ਸਭ ਵਿਚ ਬਰਾਬਰ ਦਾ ਰਸਿਆ ਵਸਿਆ ਵੀ ਹੈ। ਇਸ ਕੇਂਦਰੀ ਸੱਤਾ ਨਾਲ ਸਭ ਦਾ ਬਰਾਬਰੀ ਵਾਲਾ ਸੰਬੰਧ ਹੈ। ਸਭ ਉਸ ਦੀ ਕਿਰਪਾ ਅਤੇ ਪਿਆਰ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਦੇ ਪਾਤਰ ਹਨ। ਉਹ ਆਪ ਨਿਰਭਉ, ਨਿਰਵੈਰ ਅਤੇ ਕਰਤਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੇ ਸਾਰੇ ਧੀਆਂ ਪੁੱਤਰ ਵੀ ਨਿਰਭਉ, ਨਿਰਵੈਰ ਤੇ ਸਿਰਜਕ ਹੋਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਹਨ। ਕਿਸੇ ਨਾਲ ਕਿਸੇ ਦਾ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਜਾਂ ਸੱਤਾ ਦੀ ਊਚਨੀਚ ਕਰਕੇ ਵੈਰ ਵਿਰੋਧ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਜਾਂ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ।'[17] ਇਕ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਨਾਲ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਸਮਾਜਿਕ ਅਨਿਆਂ ਦੇ ਸ਼ਿਕਾਰ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰਤਾ 'ਤੇ ਲੈ ਆਏ। ਲੰਗਰ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੇ ਇਸ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਹੋਰ ਸਾਰਥਿਕਤਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਆਪੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਪਸ ਵਿਚ ਜੋੜਦੇ ਹਨ। ਅਜਿਹੀ ਸਾਂਝ ਜਿਸ ਅੱਗੇ ਸਭ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਮਨੁੱਖੀ ਵੰਡੀਆਂ ਅਰਥਹੀਣ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਨੂੰ ਸਿਧਾਂਤਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਕੇਵਲ ਪ੍ਰਚਾਰਿਆ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਅਮਲੀ ਜਾਮਾ ਵੀ ਪਹਿਨਾਇਆ। ਸ਼ਬਦ ਨੂੰ ਸੁਰ ਦੇਣ ਵਾਲਾ ਭਾਈ ਮਰਦਾਨਾ ਅਖੀਰਲੇ ਸਵਾਸਾਂ ਤਕ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਸੰਗ ਰਿਹਾ। ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਤੇ ਸੁਰ ਆਦਿ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਤੇ ਫਿਰ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੰਕਲਨ ਹੋ ਕੇ ਸਦਾ ਲਈ ਚਿਰੰਜੀਵ ਹੋ ਗਏ।

ਸਭ ਮਹਿ ਜੋਤਿ ਜੋਤਿ ਹੈ ਸੋਇ॥
ਤਿਸ ਦੈ ਚਾਨਣਿ ਸਭ ਮਹਿ ਚਾਨਣੁ ਹੋਇ॥[18]

ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਦੁਖਾਂਤ ਦਾ ਇੱਕ ਲੰਮਾ ਇਤਿਹਾਸ ਹੈ। ਹਿੰਦੋਸਤਾਨੀ ਔਰਤ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਪ੍ਰਚੀਨ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਅਧੁਨਿਕ ਭਾਰਤ ਤਕ ਡਾਵਾਡੋਲ ਹੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਭਾਵੇਂ ਇਸਦਾ ਵਿਰਸਾ ਕਿੰਨਾ ਵੀ ਸੁਨਿਹਰੀ ਕਿਉਂ ਨਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੋਵੇ? ਪ੍ਰਚੀਨ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚ ਵੀ ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਸੁਨਿਹਰੀ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਸੀ ਏਥੋਂ ਤਕ ਕਿ ਮਹਾਨ ਔਰਤਾਂ ਵੀ ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨਤਾ ਅਧੀਨ ਸਨ।[19] ਇਹ ਅਨਿਆਂ ਸਿਰਫ ਸਮਾਜਿਕ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਨਾ ਬਰਾਬਰੀ ਤੱਕ ਹੀ ਸੀਮਿਤ ਨਾ ਰਿਹਾ ਸਗੋਂ ਇਹ ਤਾਂ ਉਸ ਦੇ ਸਵਾਸਾਂ ਦੀ ਹੋਂਦ 'ਤੇ ਆ ਕੇ ਟਿਕ ਗਿਆ। ਮੱਧਕਾਲੀਨ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਹਿੰਦੋਸਤਾਨੀ ਔਰਤ ਅੰਦਰੂਨੀ ਪ੍ਰਚੱਲਿਤ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਬਾਹਰੋਂ ਆਏ ਸ਼ਾਸਤ ਸਮਾਜ ਦੀਆ ਰੋਕਾਂ ਦੇ ਸੰਤਾਪ ਵੀ ਹਢਾਉਣ ਲੱਗੀ। ਉਹ ਸਤੀ, ਵਿਧਵਾ, ਬਾਲ ਵਿਆਹ, ਦਹੇਜ਼ ਅਤੇ ਕੰਨਿਆ ਹੱਤਿਆ ਦੇ ਨਾਲ ਪਰਦੇ ਤੇ ਬਹੁ ਵਿਵਾਹ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਗਈ। ਪੁੱਤਰ ਪੈਦਾ ਹੋਣ ਦੇ ਵੱਡੇਪਣ ਵਿਚ ਕੰਨਿਆ ਦੇ ਜਨਮ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ ਆਪ ਮੁਹਾਰੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਚਾਣਕਯ ਵੀ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਤੀਰਥ ਸਥਾਨਾਂ 'ਤੇ ਪੁੱਤਰਾਂ ਵਾਲੀ ਇਸਤਰੀ ਨਾਲ ਹੀ ਜਾਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਤੇ ਇਸਤਰੀਆਂ ਪੁੱਤਰ ਪੈਦਾ ਕਰਨ ਲਈ ਹੀ

ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ।[20] ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਧਰਾਤਲ 'ਤੇ ਹੀ ਸਤੀ ਜਿਹੇ ਖੌਫਨਾਕ ਅਣਮਨੁੱਖੀ ਅਧਿਆਏ ਉਲੀਕੇ ਗਏ। ਇਹਨਾਂ ਹਾਲਾਤਾਂ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਜਿੰਦਗੀ ਦਾ ਪਲ ਉਸ ਦੇ ਪਤੀ ਦੇ ਸਵਾਸਾਂ ਦੀ ਪੂੰਜੀ ਦੇ ਰਹਮੋ ਕਰਮ 'ਤੇ ਹੀ ਨਿਰਭਰ ਕਰਦਾ ਸੀ। ਇਸ ਦੇ ਪਿਛੋਕੜ ਪਿੱਛੇ ਸਤੀ ਹੋਣ ਨਾਲ ਪਤੀ ਤੇ ਪਤਨੀ ਦੇ ਪਰਲੋਕ ਵਿਚ ਪੁਨਰਮਿਲਾਪ ਦੀ ਧਾਰਨਾ ਜੋੜ ਕੇ ਇਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕਤਾ ਦੇ ਦਿੱਤੀ ਗਈ।[21] ਭਗਤ ਸਿੰਘ Hoshiarpur District Gaazetter ਦੇ ਹਵਾਲੇ ਨਾਲ ਉਤਰ-ਵੈਦਿਕ ਕਾਲ ਵਿਚ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਬਾਰੇ ਉਲੇਖ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿ 'ਕੋਈ ਸ਼ੈਅ ਅਜਿਹੀ ਨਹੀਂ ਜੋ ਇਸਤਰੀ ਨਾਲੋਂ ਵਧੇਰੇ ਪਾਪੀ ਹੋਵੇਗੀ। ਨਿਰੰਸਦੇਹ ਉਹ ਸਭ ਬੁਰਾਈਆਂ ਦੀ ਜੜ੍ਹ ਹੈ।'[22] ਗ਼ਦਰ ਵਾਰਤਾਕਾਰਾਂ ਨੇ ਵੀ ਇਸ ਮੁੱਦੇ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਦੇ ਹੋਏ ਇਤਿਹਾਸ ਦੀਆਂ ਪਰਤਾਂ ਫਰੋਲਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ। ਔਰਤ ਦੀ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਬਾਰੇ ਉਹ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਯੋਗੀਆਂ ਨੇ ਇਸਤਰੀ ਨੂੰ ਨਰਕ ਦਾ ਦਵਾਰਾ ਦੱਸ ਕੇ ਮਿੱਟੀ ਪਲੀਤ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਰਮਾਇਣ ਵਿਚ ਸੀਤਾ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਰਾਮ ਚੰਦਰ ਤੇ ਹੀ ਮਨੱਸਰ ਹੈ। ਇਹ ਪ੍ਰਜਾ ਰਾਜੇ ਦੀ, ਬੇਟਾ ਬਾਪ ਦਾ ਤੇ ਇਸਤਰੀ ਪਤੀ ਦੀ ਗ਼ੁਲਾਮ ਦੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਪ੍ਰਚਾਰਦੀ ਹੈ। ਧਰਮ ਮੂਰਤ ਰਾਜੇ ਵੀ ਇਸਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਜੂਏ ਵਿਚ ਹਾਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਗ਼ਦਰੀ ਪਤੀ ਪੂਜਾ ਨੂੰ ਮੂਰਤੀ ਪੂਜਾ ਨਾਲੋਂ ਵੱਧ ਖ਼ਤਰਨਾਕ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਕੰਨਿਆ ਦਾਨ ਲਫ਼ਜ਼ ਤੋਂ ਪ੍ਰਗਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸਤਰੀ ਵੀ ਰੁਪਿਆ, ਗੱਡੀ, ਅਤੇ ਘੋੜੇ ਵਾਂਗੂ ਦਿੱਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਸਿਰਫ ਪਿਤਾ ਦੀ ਮਲਕੀਅਤ ਤੋਂ ਪਤੀ ਦੀ ਮਲਕੀਅਤ ਵਿਚ ਰੁਪਾਂਤਰਣ ਹੀ ਹੈ।[23] ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਏਕ ਪੁਰਸ਼ ਬਾਕੀ ਸਬੈ ਨਾਰ ਦੇ ਸਿਧਾਂਤ ਨਾਲ ਮਰਦ ਤੇ ਔਰਤ ਦੇ ਵਖਰੇਵੇਂ ਨੂੰ ਅਧਿਆਤਮਿਕ ਦਿਸ਼ਾ ਤੋਂ ਬਰਾਬਰਤਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰ ਦਿੱਤੀ: 'ਇਸ ਜਗ ਮਹਿ ਪੁਰਖੁ ਏਕੁ ਹੈ ਹੋਰ ਸਗਲੀ ਨਾਰਿ ਸਬਾਈ।[24] ਇਹ ਗਲ ਬਹੁਤ ਵਿਚਾਰਨਯੋਗ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦੀ ਕੁੱਖ 'ਚ ਰਾਜੇ ਜਨਮ ਲੈਂਦੇ ਹਨ ਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਕੁੱਖ 'ਚ ਔਰਤ ਵੀ ਜਨਮ ਲੈਂਦੀ ਹੈ।

ਭੰਡਿ ਜੰਮੀਐ ਭੰਡਿ ਨਿੰਮੀਐ ਭੰਡਿ ਮੰਗੁਣ ਵੀਆਹੁ।
ਭੰਡਹੁ ਹੋਵੈ ਦੋਸਤੀ ਭੰਡਹੁ ਚਲੈ ਰਾਹੁ।
ਭੰਡ ਮੁਆ ਭੰਡ ਭਾਲੀਐ ਭੰਡਿ ਹੋਵੈ ਬੰਧਾਨੁ।
ਸੋ ਕਿਓ ਮੰਦਾ ਆਖੀਐ ਜਿਤੁ ਜੰਮੇ ਰਾਜਾਨ।
ਭੰਡਹੁ ਹੀ ਭੰਡੁ ਉਪਜੈ ਭੰਡੇ ਬਾਝੁ ਨ ਕੋਇ।
ਨਾਨਕ ਭੰਡੈ ਬਾਹਰਾ ਏਕੋ ਸਚਾ ਸੋਇ।[25]

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਸਮਕਾਲੀਨ ਸਮੇਂ 'ਚ ਧਰਮ ਦੀ ਹੋਂਦ ਮਹਿਜ਼ ਇੱਕ ਦਿਖਾਵੇ ਤੇ ਰੋਟੀ-ਪਾਣੀ ਦੇ ਵਸੀਲੇ ਤੱਕ ਸੀਮਿਤ ਹੋ ਕੇ ਰਹਿ ਗਈ ਸੀ। ਰਾਸਧਾਰੀਆਂ ਦੀਆਂ ਰਾਸ-ਮੰਡਲੀਆਂ ਪੇਟ ਦੀ ਅਗਨ ਨੂੰ ਸ਼ਾਂਤ ਕਰਨ ਤੱਕ ਮਹਿਦੂਦ ਸਨ।[26] ਧਰਮਾਂ ਦੇ ਰਹਿਬਰ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਸੇਧ ਦੇਣ ਦੀ ਥਾਂ ਚੌਪਾਸਿਉਂ ਭਟਕਾਉਣ ਵਿੱਚ ਮਸ਼ਰੂਫ਼ ਸਨ। ਉਹ ਧਾਰਮਿਕ ਦੁਆਰੇ, ਜਿੱਥੇ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਸੁਰੱਖਿਅਤ ਤੇ ਦੈਵੀ ਸ਼ਰਣ ਵਿੱਚ ਆਇਆ ਮਹਿਸੂਸਦਾ ਹੋਵੇ, ਜੇਕਰ ਉਹ ਹੀ ਮਾਇਆ ਦੇ ਦੰਭੀ ਪਾਸਾਰੇ ਵਿੱਚ ਲਪੇਟੇ ਜਾਣ ਤਾਂ ਨਿਆਂ ਦੀ ਆਸ ਰੱਖਣੀ ਮੁੱਢੋਂ ਹੀ ਘੁੱਥੀ ਹੈ। ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਇਸ ਸੰਬੰਧੀ ਉਲੇਖ ਕਰਦੇ ਹਨ:

ਮਾਇਆ ਡਰ ਡਰਪਤ ਹਾਰ ਗੁਰਦੁਅਰੈ ਜਾਵੈ
ਤਹਾ ਜਉ ਮਾਇਆ ਬਿਆਪੈ ਕਹਾ ਠਹਰਾਈਐ॥[27]

ਨਿਆਂ ਇੱਕ ਉਹ ਉੱਚਤਮ ਕੀਮਤ ਹੈ ਜੋ ਧਰਮ ਸਾਹਵੇਂ ਆਪਣੀ ਅਸਲ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰੰਤੂ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਸਮਕਾਲ ਧਾਰਮਿਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਨਿਆਂ ਦੀ ਕੋਈ ਆਸ ਦਿਖਾਈ ਨਹੀਂ ਸੀ ਦਿੰਦੀ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਧਰਮ ਨੂੰ ਅਮਲਾਂ ਦੀ ਜੂਹੇ ਲਿਜਾਂਦੇ ਰੱਬ ਦੀ ਹਸਤੀ ਨੂੰ ਸਭ ਦੀ ਸਾਂਝੀ ਤੇ

ਵਿਤਕਰੇ ਤੋਂ ਰਹਿਤ ਵਾਲੀ ਦੱਸਦੇ ਹੋਏ ਨਿਆਂ ਦੀ ਮੂਰਤ ਨਾਲ ਵਾਬਸਤਾ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਗੁਰਬਾਣੀ ਦਾ ਫਰਮਾਨ ਹੈ:

ਤੇਰੈ ਘਰਿ ਸਦਾ ਸਦਾ ਹੈ ਨਿਆਉ॥[28]

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨੂੰ ਨਿਆਂ ਰੂਪ ਤਸੱਵੁਰ ਕਰਕੇ ਉਸਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਧਾਰਮਿਕ ਨਿਆਂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖੀ ਹੋਣੀ ਲਈ ਸੁਤੰਤਰ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਿਉਣ ਦੇ ਵਿਵਿਧ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ। ਅਗਲੇਰੇ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨ ਨੇ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦੇ 'ਓੜਕਿ ਸਚ ਰਹੀ'[29] ਦੇ ਫਰਮਾਨ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਅਨੁਸਰਣ ਕਰਨ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਵਿਵਹਾਰਕ ਰੂਪ ਵੀ ਪ੍ਰਗਟਾਇਆ।

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਜਾਤੀ ਅਤੇ ਮਜ਼ਹਬੀ ਸਮਾਨਤਾਵਾਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਰਾਜਸੀ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਬਰਾਬਰਤਾ ਦੀ ਗੱਲ ਵੀ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਉਹਨਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਰਾਜਾ ਅਤੇ ਪਰਜਾ ਦੋਵੇਂ ਆਪੋ-ਆਪਣੇ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਲਈ ਪਾਬੰਦ ਹਨ। ਪਾਪੀ ਰਾਜੇ ਦੀ ਅਗਵਾਈ ਅਤੇ ਗਿਆਨ ਵਿਹੂਣੀ ਪਰਜਾ ਦੋਵੇਂ ਹੀ ਸਮਾਜਿਕ, ਰਾਜਨੀਤਿਕ, ਧਾਰਮਿਕ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਬਿਹਤਰੀ ਵਾਲੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਨਿਰਮਾਣ ਵਿਚ ਰੋੜਾ ਹਨ। ਪਰਜਾ ਦੇ ਆਪਣੇ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਸੁਚੇਤ ਨਾ ਹੋਣ ਦੀ ਸੂਰਤ ਵਿੱਚ ਹੁਕਮਰਾਨਾਂ ਦੀ ਲੁੱਟ ਤੇ ਅਨਿਆਂ ਬਾਰੇ ਸਵਾਲੀਆ ਨਿਸ਼ਾਨ ਖੜਾ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ।[30] ਬਰਾਬਰੀ ਵਾਲਾ ਸਮਾਜ ਸਿਰਜਣ ਲਈ ਹੀ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਲੰਗਰ ਦੀ ਪ੍ਰਥਾ ਨੂੰ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਅੱਗੇ ਚੱਲ ਕੇ ਅਕਬਰ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਨੂੰ ਵੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨਾਲ ਭੇਂਟ ਕਰਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਲੰਗਰ ਵਿਚ ਜਾ ਕੇ ਆਪਣੇ ਉੱਚੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਵਜੂਦ ਨੂੰ ਮਾਰਨਾ ਪਿਆ ਸੀ।

ਅਨਾਜ ਦੀ ਵੰਡ ਕਰਨ ਵਾਲੇ ਸਰਕਾਰੀ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਲੁੱਟ ਨੂੰ 'ਤੇਰਾ ਤੇਰਾ ਤੋਲਣ' ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਰੱਖ ਕੇ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਪੜਚੋਲਿਆ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮੋਦੀ ਖਾਨੇ 'ਚ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਲੋਕਾਈ ਨਾਲ ਇਨਸਾਫ਼ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਰਾਜੀਨੀਤਿਕ ਪ੍ਰਬੰਧ 'ਤੇ ਕਾਬਜ਼ ਰਤ ਚੂਸਣੇ ਸੱਤਾਧਾਰੀਆਂ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀ ਜਾ ਰਹੀ ਲੁੱਟ ਨੂੰ ਨੰਗਿਆ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਸਾਫ਼ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਤਾਕਤ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਖੇਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ ਇਸ ਧਰਤੀ 'ਤੇ ਇੱਕ ਪੁਰਾਣਾ ਵਰਤਾਰਾ ਹੈ। ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਛੱਤਰੀ ਦੇ ਥੱਲੇ ਇਹ ਲੁੱਟ ਸਦਾ ਪਣਪਦੀ, ਵੱਧਦੀ ਅਤੇ ਲੋਕ ਹੱਕਾਂ 'ਤੇ ਡਾਕੇ ਮਾਰਦੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਲੋਧੀ ਵਿਖੇ ਦਰਬਾਰ ਤੇ ਆਵਾਮ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰਤਾ ਦੇ ਪੱਲਿਆ ਵਿਚ ਤੋਲਿਆ। ਗਿਆਨੀ ਗਿਆਨ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ''ਬਾਬੇ ਹੁਣੀ ਸਭ ਨੂੰ ਝੁਕਦਾ ਜੋਖਣ, ਜੈਸੀ ਰਸਦ ਨਵਾਬ ਦੇ ਘਰ ਜਾਵੇ ਤੈਸੀ ਹੋਰ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਮਿਲੇ...।''[31]

ਰਾਜੇ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰੀਆਂ ਦੇ ਕਰਤੱਵਾਂ ਬਾਰੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਕੇਵਲ ਪਰਮਾਤਮਾ ਹੀ ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸੰਪੰਨ ਹੈ ਤੇ ਰਾਜਾ ਉਸ ਪ੍ਰਤੀ ਜਵਾਬਦੇਹ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ ਰਾਜਾ ਸਭ ਕੁਝ ਆਪਣੀ ਮਰਜੀ ਮੁਤਾਬਿਕ ਨਹੀਂ ਕਰ ਸਕਦਾ। ਇੱਥੇ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਰਾਜ ਦੇ ਦੈਵੀ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਨਕਾਰ ਰਹੇ ਦਿਸਦੇ ਹਨ, ਜਿਸ ਅਨੁਸਾਰ ਰਾਜੇ ਨੂੰ ਪਰਮਾਤਮਾ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਨਿਧ ਮੰਨ ਕੇ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਉਸ ਦੇ ਹੁਕਮ ਮੰਨਣ ਲਈ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਦੀ ਬੇੜੀ ਲਾ ਦਿੱਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਇਸ ਧਾਰਨਾ ਦੇ ਉਲਟ ਪਰਮਾਤਮਾ ਪ੍ਰਤੀ ਰਾਜੇ ਦੇ ਕਰਤੱਵਾਂ ਨੂੰ ਲਾਜ਼ਮੀ ਦੱਸਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਰਾਜਾ, ਪਰਮਾਤਮਾ ਅਤੇ ਪਰਜਾ ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਆਪਣੇ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਨੂੰ ਦਰਕਿਨਾਰ ਨਹੀਂ ਕਰ ਸਕਦਾ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਇਕ ਵੱਖਰਾ ਤੇ ਤਰਕਮਈ ਨਜ਼ਰੀਆ ਸਮਕਾਲੀਨ ਸਥਾਪਿਤ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਨੂੰ ਜੜ੍ਹੋਂ ਉਖਾੜ ਕੇ ਰੱਖ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਰਾਜੇ ਦੀ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਤਾਕਤ ਤਾਂ ਹੀ ਬਹਾਲ ਰਹਿ ਸਕਦੀ ਹੈ ਜੇਕਰ ਉਹ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰੀ ਇਮਾਨਦਾਰੀ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਕਰਤੱਵਾਂ ਦੀ ਪਾਲਣਾ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਪਰਜਾ ਦੀ ਬਿਹਤਰੀ ਲਈ ਕੰਮ ਕਰਨਗੇ। ਇਸ ਦੇ ਉਲਟ ਜੇਕਰ ਰਾਜਾ ਦੁਨਿਆਵੀ ਚਾਵਾਂ ਤੇ ਰੰਗਾਂ ਵਿਚ ਖੋ ਜਾਵੇਗਾ ਤਾਂ ਪਰਮਾਤਮਾ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਤਾਕਤ ਭੇਜ

ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਸੱਤਾਹੀਣ ਕਰ ਦੇਵੇਗਾ।[32] ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਇਕ ਆਦਰਸ਼ ਰਾਜ ਦਾ ਖਾਕਾ ਉਲੀਕਦੇ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿਚ ਰਾਜਾ ਤਾਨਾਸ਼ਾਹ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਲੋਕਾਈ ਦਾ ਸੇਵਾਦਾਰ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ ਲੋਕ ਰਾਜੇ ਨਾਲ ਬੱਝੇ ਹੋਏ ਹਨ, ਉੱਥੇ ਹੀ ਰਾਜਾ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨਾਲ ਬੱਝਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਪਰ ਇਸ ਮੌਲਿਕ ਢਾਂਚੇ ਦੇ ਉਲਟ ਕਸਾਈ ਰੂਪੀ ਲੋਧੀ ਰਾਜੇ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਅਧਿਕਾਰੀ ਲਾਲਸਾ, ਝੂਠ, ਜ਼ੁਲਮ, ਅੱਤਿਆਚਾਰ, ਲੁੱਟ ਅਤੇ ਅੰਧਕਾਰ ਰਾਹੀਂ ਸੱਚ ਦੀ ਕਿਰਨ ਨੂੰ ਰੁਸ਼ਨਾਉਣ ਤੋਂ ਰੋਕ ਰਹੇ ਸਨ:

ਰਾਜੇ ਸੀਹ ਮੁਕਦਮ ਕੁਤੇ॥ ਜਾਇ ਜਗਾਇਨਿ ਬੈਠੇ ਸੁਤੇ॥
ਚਾਕਰ ਨਹਦਾ ਪਾਇਨਿ ਘਾਉ॥ ਰਤੁ ਪਿਤੁ ਕੁਤਿਹੋ ਚਟਿ ਜਾਹੁ॥[33]
ਕਲਿ ਕਾਤੀ ਰਾਜੇ ਕਾਸਾਈ ਧਰਮੁ ਪੰਖ ਕਰ ਉਡਰਿਆ॥
ਕੂੜੁ ਅਮਾਵਸ ਸਚੁ ਚੰਦ੍ਰਮਾ ਦੀਸੈ ਨਾਹੀ ਕਹ ਚੜਿਆ॥[34]

ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸਪੰਨ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਅਸਲ ਸੁਲਤਾਨ, ਰਾਜਿਆਂ ਦਾ ਰਾਜਾ ਅਤੇ ਮੇਰਾ ਪਾਤਸ਼ਾਹ ਆਦਿ ਨਾਵਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੋਧਿਤ ਕਰਦੇ ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਉਹ ਖੁਦ ਹੀ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਅਤੇ ਨਿਆਂ ਕਰਨ ਵਾਲਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪ ਹੀ ਹੁਕਮ ਦੇ ਵਾਰੰਟ ਜਾਰੀ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਅਦਾਲਤ ਹੀ ਸਹੀ ਹੈ।[35] ਜੇਕਰ ਰਾਜ ਗੱਦੀ ਜਾਂ ਉੱਤਰਾਧਿਕਾਰੀ ਦੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਇਸ ਦਾ ਹਵਾਲਾ ਦਿੰਦੇ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਹੀ ਗੱਦੀ 'ਤੇ ਬੈਠਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਜੋ ਉਸ ਦੇ ਲਾਇਕ ਹੈ।[36] ਅਯੋਗ ਸੱਤਾਵਾਨ ਨਾ ਤਾਂ ਮੁਲਕ ਦੀ ਰਾਖੀ ਕਰਨ ਦੇ ਸਮਰੱਥ ਹੋਵੇਗਾ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਉਹ ਪਰਜਾ ਲਈ ਨਿਆਂਕਾਰੀ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਸਮਕਾਲੀਨ ਰਾਜ ਦੀ ਨਿਆਂ ਵਿਵਸਥਾ ਦੀਆਂ ਖ਼ਾਮੀਆਂ ਵੱਲ ਸੰਕੇਤ ਕਰਦਿਆਂ ਰਾਜ ਵਿਚ ਅਦਰਸ਼ ਨਿਆਂ ਵਿਵਸਥਾ ਕਾਇਮ ਕਰਨ 'ਤੇ ਜ਼ੋਰ ਦਿੱਤਾ। ਕੇਵਲ ਪਾਣੀ ਦੀਆਂ ਚੁੱਲੀਆਂ ਕਰਨ ਨਾਲ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਸੁੱਚਤਾ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦੀ ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸੱਚੀ ਚੁੱਲੀ ਭਰਨੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ।[37] ਇਕ ਰਾਜੇ ਲਈ ਸੱਚੀ ਚੁੱਲੀ ਨਿਆਂ ਕਰਨਾ ਹੈ:

ਰਾਜੇ ਚੁਲੀ ਨਿਆਵ ਕੀ ਪੜਿਆ ਸਚੁ ਧਿਆਨ।[38]

ਬੰਸਾਵਾਲੀ ਨਾਮੇ ਵਿਚ ਵੀ ਰਾਜੇ ਲਈ ਨਿਆਂਸ਼ੀਲ ਹੋਣਾ ਆਵਸਕ ਦਸਿਆ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਨਿਆਂ ਤੋਂ ਸੱਖਣਾ ਰਾਜਾ ਨਰਕ ਦਾ ਭਾਗੀ ਬਣਦਾ ਹੈ:

ਨਿਆਉ ਨ ਕਰੇ ਤਾ ਨਰਕੇ ਜਾਇ। ਰਾਜਾ ਹੋਇ ਕੇ ਨਿਆਇ ਕਮਾਏ।[39]

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਅਨੁਸਾਰ ਇਸ ਜਗਤ ਵਿੱਚ ਰਾਜਾ ਤੇ ਰੰਕ ਦੋਵਾਂ ਦੀ ਹੋਂਦ ਅਸਥਿਰ ਅਤੇ ਥੋੜ੍ਹਚਿਰੀ ਹੈ। ਪਰਮਾਤਮਾ ਦੀ ਨਜ਼ਰ ਵਿੱਚ ਦੋਹਾਂ ਦੀ ਹਸਤੀ ਸਮਾਨ ਹੈ। ਦੋਹਾਂ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤ ਬਿਨਾਂ ਕਿਸੇ ਭੇਦ-ਭਾਵ ਤੇ ਇੱਕੋ ਤਰੀਕੇ ਨਾਲ ਨਿਵਾਜ਼ਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਨੇ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੇ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਵੀ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਭੇਦ-ਭਾਵ ਨੂੰ ਨਿੰਦਿਆ ਹੈ। ਕਾਜ਼ੀ ਜੇਕਰ ਭੈੜੇ ਕੰਮ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਦੀ ਅਯੋਗਤਾ ਲਈ ਰਾਜਾ ਹੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿੱਚ ਅਯੋਗਤਾ 'ਚੋਂ ਯੋਗਤਾ ਦੀ ਉਮੀਦ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ ਜਾ ਸਕਦੀ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਕਾਜ਼ੀ ਨੂੰ ਚੰਗੇ ਵਿਵਹਾਰ ਤੇ ਚੰਗੇ ਆਚਰਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੰਦੇ ਪੰਜ ਨਿਯਮਾਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਣ ਲਈ ਆਖਦੇ ਹਨ: ਸੱਚ, ਹਲਾਲ (ਹੱਕ ਹਲਾਲ), ਖੈਰ, ਨਿਯਤ ਅਤੇ ਸਿਫਤ।[40] ਜੇਕਰ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਇਸ ਫੈਸਲੇ ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਉਹ ਆਪਣਾ ਉੱਤਰਾਧਿਕਾਰੀ ਯੋਗਤਾ 'ਤੇ ਖਰੇ ਉੱਤਰੇ ਭਾਈ ਲਹਿਣਾ ਜੀ ਨੂੰ ਥਾਪਦੇ ਹਨ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਮੌਜੂਦਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕਾਂ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਪੈਰੋਕਾਰਾਂ ਨੂੰ ਅਜਿਹੇ ਭੈੜੇ ਕੰਮਾਂ ਤੋਂ ਵਰਜਦੇ ਹਨ। ਜੇ. ਡੀ. ਕਨਿੰਘਮ ਦੇ ਸ਼ਬਦ ਇੱਥੇ ਬੜੇ ਹੀ ਢੁਕਵੇਂ ਲੱਗਦੇ ਹਨ ਕਿ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨੇ ਆਪਣੇ ਸਿੱਖਾਂ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਭੁੱਲਾਂ ਤੋਂ ਬਚਾ ਲਿਆ ਜਿਹੜੀਆਂ ਕਿ ਹਿੰਦੋਸਤਾਨ ਦੇ ਲੋਕ ਸਦੀਆਂ ਤੋਂ ਕਰਦੇ ਆ ਰਹੇ ਸਨ।[41]
ਰਾਜਾ ਜਿਸ ਬੁਰਾਈ ਕਰਕੇ ਦੋਸ਼ੀ ਨੂੰ ਸਜ਼ਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ, ਉਸ ਨੂੰ ਖੁਦ ਵੀ ਉਸ ਤੋਂ ਗੁਰੇਜ਼ ਕਰਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ।[42] ਪਰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇ ਸਮੇਂ ਲੋਧੀ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨ ਤੇ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਿਕ ਅਧਿਕਾਰੀ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਬੁਰਾਈਆਂ ਨਾਲ ਗਲਤਾਨ ਸਨ। ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਸਦਾ ਸੱਚ ਬੋਲਣ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼

ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਹਰ ਪਹਿਲੂ ਬਾਬਤ ਸੀ। ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਵਿਚ ਸੱਚੇ ਨਿਆਂ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਜਾ ਕੇ ਵਿਕਸਿਤ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਸਿੱਖ ਧਰਮ ਵਿੱਚ ਸੰਸਥਾ ਅਤੇ ਅਦਾਲਤ ਦੇ ਤੌਰ 'ਤੇ ਅਕਾਲ ਤਖ਼ਤ ਨੂੰ ਸਿੱਖਾਂ ਦੀ ਸਰਬ-ਉੱਚ ਅਦਾਲਤ ਪ੍ਰਵਾਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ਮੀਰੀ-ਪੀਰੀ ਦੇ ਮਾਲਕ ਗੁਰੂ ਹਰਿਗੋਬਿੰਦ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਕਰਵਾਈ। ਸਿੱਖਾਂ ਵਿੱਚ ਉਤਪੰਨ ਹੋਏ ਆਪਸੀ ਝਗੜਿਆਂ ਦਾ ਨਿਪਟਾਰਾ ਕਰਨ ਲਈ ਇਹ ਸੱਚੇ ਇਨਸਾਫ਼ ਦੀ ਸਿਖਰ ਅਦਾਲਤ ਸੀ।[43]

ਬਾਬਰਬਾਣੀ ਵਿਚ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਬਾਬਰ ਦੇ ਹਮਲੇ, ਯੁੱਧ ਦੇ ਨੁਕਸਾਨ, ਲੋਧੀਆਂ ਦੀ ਅਯੋਗਤਾ, ਅੰਧਵਿਸ਼ਵਾਸਾਂ ਤੇ ਖਾਸ ਕਰਕੇ ਲੋਕਾਈ ਦੇ ਦਰਦ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਤਕੜੇ ਤੇ ਮਾੜੇ ਦੀ ਲੜਾਈ 'ਤੇ ਸਵਾਲ ਉਠਾਉਂਦੇ ਆਖਦੇ ਹਨ ਕਿ ਜੇ ਸ਼ੇਰ ਇੱਜੜ ਨੂੰ ਪੈ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਉਸ ਦੀ ਪੁੱਛ ਗਿੱਛ ਹੋਣੀ ਚਾਹੀਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਹਮਲੇ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਉਹ ਕਮਜ਼ੋਰ ਅਤੇ ਆਮ ਲੋਕ ਹੋਏ ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਰਾਜਨੀਤੀ ਜਾਂ ਯੁੱਧ ਨਾਲ ਕੋਈ ਸਿੱਧਾ ਸੰਬੰਧ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਇਸ ਯੁੱਧ ਵਿਚ ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਹਾਲੀਆ ਵੀ ਬਿਆਨ ਕਰਦੇ ਹਨ।[44] ਸਮਾਜ ਦੇ ਇਸ ਵਰਗ ਨੂੰ ਮੁੱਢ ਕਦੀਮਾਂ ਤੋਂ ਹੀ ਮਰਦਾਂ ਦੀ ਲੜਾਈ ਦਾ ਮੁੱਲ ਤਾਰਨਾ ਪੈ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦਾ ਰੱਬ ਨੂੰ ਉਲਾਮਾ 'ਏਤੀ ਮਾਰ ਪਈ ਕੁਰਲਾਣੈ ਤੈਂ ਕੀ ਦਰਦੁ ਨਾ ਆਇਆ',[45] ਸ਼ਾਸਤ ਵਰਗ ਦੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਨਿਰਦੋਸ਼ਿਆ ਪ੍ਰਤੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਹਮਦਰਦੀ, ਸੰਵੇਦਨਾ ਅਤੇ ਪੀੜ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲੋਕਾਈ ਦੇ ਆਰਥਿਕ ਹਿੱਤਾਂ ਤੇ ਡਾਕਾ ਮਾਰਨਾ ਅਨਿਆਂ ਹੈ ਉਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਤਕੜੇ ਦੁਆਰਾ ਮਾੜੇ ਤੇ ਤਾਕਤਵਰ ਦੁਆਰਾ ਬੇਦੋਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਮਾਰਨਾ ਵੀ ਅਨਿਆਂ ਹੈ। ਅਨਿਆਂ ਦੇ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਰਤਾਰੇ ਵਿਚ ਅਖੀਰ ਕੁਦਰਤ ਹੀ ਨਿਆਂਕਾਰੀ ਸਾਬਿਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।[46]

ਜੇ ਸਕਤਾ ਸਕਤੇ ਕਉ ਮਾਰੇ ਤਾ ਮਨਿ ਰੋਸੁ ਨਾ ਹੋਈ॥
ਸਕਤਾ ਸੀਹੁ ਮਾਰੇ ਪੈ ਵਗੈ ਖਸਮੈ ਸਾ ਪੁਰਸਾਈ॥[47]

ਸਮੁੱਚੀ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਅਤੇ ਜੀਵਨ 'ਚ ਨਿਆਂ ਦੀ ਅਹਿਮੀਅਤ ਨੂੰ ਸਮਝਣ, ਵਿਚਾਰਨ ਅਤੇ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਨ ਦਾ ਅਹਿਦ ਕਰਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਅਨਿਆਂ ਦੇ ਵਰਤਾਰੇ ਵਿਰੁੱਧ ਆਵਾਜ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨ ਦਾ ਸਾਹਸ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਸਾਹਿਬ ਦੀਆਂ ਸਿੱਖਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਰੂਪ ਵਿਚ ਲਾਗੂ ਕਰਕੇ ਹੀ ਸੰਭਵ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਅਨਿਆਂ ਦਾ ਵਰਤਾਰਾ ਇੱਕ ਅਜਿਹਾ ਖਲਾਅ ਪੈਦਾ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਬਾਹਰੀ ਤਾਕਤਾਂ ਦੇ ਸਥਾਪਿਤ ਹੋਣ ਲਈ ਧਰਾਤਲ ਸਿਰਜਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਬਾਹਰੀ ਤਾਕਤਾਂ ਅਨਿਆਂ ਦੇ ਸ਼ਿਕਾਰ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਹੋਰ ਰੋਂਦ ਦਿੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਸਮਾਜਿਕ, ਧਾਰਮਿਕ, ਆਰਥਿਕ, ਅਤੇ ਰਾਜਨੀਤਿਕ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਨਿਆਂ ਦੇ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਆਦਰਸ਼ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕੀਤੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਅਜਿਹਾ ਰਾਜ ਤੇ ਸਮਾਜ ਜਿਸ ਅੰਦਰ ਭਾਗੋਆਂ ਦੀ ਲੁੱਟ, ਬਾਬਰ ਦੀ ਕਤਲੋ ਗਾਰਦ, ਲੋਧੀਆਂ ਦੀ ਕਾਇਰਤਾ, ਧਰਮ ਤੇ ਪਾਖੰਡ, ਜਾਤੀ ਤੇ ਲਿੰਗ ਵਿਤਕਰਾ ਅਤੇ ਅਗਿਆਨਤਾ ਦਾ ਨਾਮੋ ਨਿਸ਼ਾਨ ਨਾ ਹੋਵੇ।

ਹਵਾਲੇ:

1) ਪਿਆਰਾ ਸਿੰਘ ਪਦਮ, ਸੰਖੇਪ ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ (1469-1999), ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2014, ਪੰਨਾ 19.
2) ਗੁਰਬਖਸ਼ (ਅਨੁ.), ਰੂਪਕਾਰ ਵ. ਖੋਜ਼ਲੋਵ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਲੇਖ ਸੰਗ੍ਰਹਿ, ਪੰਜਾਬ ਬੁੱਕ ਸੈਂਟਰ, ਚੰਡੀਗੜ, 2000, ਪੰਨਾ 19.
3) Buddha Prakash, "Peolple's Struggle Against Political Tyranny", Fauja Singh (ed.), History of the Punjab, Volume Third, Publication Bureau, Punjabi University Patiala, 1990, p. 223.
4) L.M. Joshi, "Religious Beliefs and Practices", Fauja Singh (ed.), *ibid*, p. 283.

5) ਤੇਜਾ ਸਿੰਘ ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ (ਅਨੁ. ਭਗਤ ਸਿੰਘ), ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ (1469-1765), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 2013, ਪੰਨਾ 36.
6) ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰ ਪਹਿਲੀ, ਪਉੜੀ 30ਵੀਂ.
7) Anil Chander Banerjee, *Guru Nanak and His Times*, Publication Burea Punjabi University Patiala, 1984, pp. 16-17.
8) ਸੁਰਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਮੱਧਕਾਲੀਨ ਭਾਰਤ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ (1000 ਈ.-1526 ਈ.), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1997, ਪੰਨਾ 385.
9) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 350.
10) ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰ ਪਹਿਲੀ, ਪਉੜੀ 30ਵੀਂ.
11) ਹਕੁ ਪਰਾਇਆ ਨਾਨਕਾ ਉਸੁ ਸੂਅਰ ਉਸੁ ਗਾਇ॥ (ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੁ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 151)
12) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 140.
13) ਮੈਕਸ ਆਰਥਰ ਮੈਕਾਲਿਫ (ਅਨੁ. ਅਜਾਇਬ ਸਿੰਘ), ਸਿੱਖ ਇਤਹਿਾਸ (ਜੀਵਨ ਬ੍ਰਿਤਾਂਤ ਪਹਿਲੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਤੋਂ ਪੰਜਵੀਂ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਤੱਕ), ਲਹੌਰ ਬੁੱਕ ਸ਼ਾਪ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 2010, ਪੰਨੇ 16-61.
14) ਕਰਮਜੀਤ ਸਿੰਘ, 'ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਤੇ ਵਲੀ ਕੰਧਾਰੀ', ਕਾਵ੍ਯਿਸ਼ਾਸਤਰ, ਜਿਲਦ ਪਹਿਲੀ, ਅੰਕ 15, ਮਈ-ਅਗਸਤ 2019, ਪੰਨੇ 17-71.
15) ਜੇ.ਡੀ. ਕਨਿੰਘਮ (ਅਨੁ. ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਗੁਰਮੁਖ), ਸਿੱਖ ਇਤਿਹਾਸ, ਲਾਹੌਰ ਬੁਕ ਸ਼ਾਪ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 1985, ਪੰਨਾ 45.
16) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 15.
17) ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ ਜ਼ਫ਼ਰ, "ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਾਣੀ ਦਾ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਸੰਗ", ਪੰਜਾਬੀ ਟ੍ਰਿਬਿਊਨ, 3 ਨਵੰਬਰ 2019.
18) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 13.
19) : Neera Desai, *Woman in Modern India,* Bombay: Vora, 1977, p. 23 cited in Geraldine Forbes, "Reading and Writings Indian Women: The 50 Years since Independence, 1947-57", *Teaching South Asia: An International Journal of Pedagogy*, Vol.2, No. 1, 2003, p.66.
20) ਮੋਹਨ ਲਾਲ ਸ਼ਰਮਾ (ਸੰਪਾ. ਅਤੇ ਅਨੁਵਾਦਕ), ਚਾਣਕਯ -ਸੂਤਰ, ਲੋਕਗੀਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ, 2009, ਪੰਨੇ 158-59.
21) A.S. Altekar*, The Position of Women in Hindu Civilization*, Motilal Bnarsidass, Delhi, 2009, p. 215
22) ਡਾ. ਭਗਤ ਸਿੰਘ, ਮੱਧ ਕਾਲੀਨ ਭਾਰਤ ਦੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ, ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ, 2003, ਪੰਨਾ 70.
23) ਕਿਰਪਾਲ ਸਿੰਘ ਕਸੇਲ (ਸੰਪਾ.), ਗ਼ਦਰ ਲਹਿਰ ਦੀ ਵਾਰਤਕ, (ਸੰਕਲਤ ਕਰਤਾ: ਗਿਆਨੀ ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ), ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਊਰੋ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਟਿਆਲਾ, 2008, ਪੰਨ੍ਹੇ 63-34.
24) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੁ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 468.
25) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 473.
26) ਵਾਇਨਿ ਚੇਲੇ ਨਚਨਿ ਗੁਰ॥ ਪੈਰ ਹਲਾਇਨਿ" ਫੇਰਨਿ" ਸਿਰ॥ ਉਡਿ ਉਡਿ ਰਾਵਾ ਝਾਟੈ ਪਾਇ॥ ਵੇਖੈ ਲੋਕੁ ਹਸੈ ਘਰਿ ਜਾਇ॥ ਰੋਟੀਆ ਕਾਰਣਿ ਪੂਰਹਿ ਤਾਲ॥ ਆਪੁ ਪਛਾੜਹਿ ਧਰਤੀ ਨਾਲਿ॥ (ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 465)
27) ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਕਬਿੱਤ ਨੰ. 544.
28) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 376.
29) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 953.
30) ਅੰਧੀ ਰਯਤਿ ਗਿਆਨ ਵਿਹੂਣੀ ਭਾਹਿ ਭਰੇ ਮੁਰਦਾਰੁ॥ (ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 469)

31) ਗਿਆਨੀ ਗਿਆਨ ਸਿੰਘ, ਤਵਾਰੀਖ ਗੁਰੂ ਖਾਲਸਾ, ਭਾਗ ਪਹਿਲਾ, ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਭਾਗ, ਪੰਜਾਬ, 2011, ਪੰਨਾ 77.
32) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੁ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 360.
33) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 1288.
34) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 145.
35) J.S. Grewal, *Guru Nanak in History*, Publication Bureau Panjabi University, Chandigarh, 1998, p. 148.
36) ਤਖਤਿ ਬਹੈ ਤਖਤੈ ਕੀ ਲਾਇਕ॥ (ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੁ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 1039)
37) ਜਸਪਾਲ ਸਿੰਘ, ਰਾਜ ਦਾ ਸਿੱਖ ਸੰਕਲਪ, ਨਵਯੁਗ ਪਬਲੀਸ਼ਰਜ਼, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, 2009, ਪੰਨਾ, 293.
38) ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 1240.
39) ਕੇਸਰ ਸਿੰਘ ਛਿੱਬਰ (ਸੰਪਾ. ਰਾਏ ਜਸਬੀਰ ਸਿੰਘ), ਬੰਸਾਵਲੀਨਾਮਾ ਦਸਾਂ ਪਾਤਸਾਹੀਆਂ ਕਾ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2001,ਪੰਨਾ 131.
40) J.S. Grewal, *ibid*., p. 230.
41) ਜੇ.ਡੀ. ਕਨਿੰਘਮ (ਅਨੁ. ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਗੁਰਮੁਖ), ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 55.
42) ਭਾਈ ਕਾਹਨ ਸਿੰਘ ਨਾਭਾ, ਗੁਰਮਤਿ ਸੁਧਾਕਰ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰਮਤਿ ਪ੍ਰੈਸ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1922, ਪੈਰਾ 857.
43) ਲੂਟੇ ਖੋਹੇ ਹੋਇ ਜੋਊ ਤਿਨ ਕੋ ਮਿਲੈ ਨਸਾਫ॥ ਝੂਠਨ ਕੋ ਤਨਖਾਹ ਕਰੈਂ ਔਂ ਸੱਚਨ ਕਰਾਵੈਂ ਮਾਫ਼॥ ਰਤਨ ਸਿੰਘ ਭੰਗੂ (ਸੰਪਾ. ਡਾ. ਬਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ਢਿੱਲੋਂ), ਸ੍ਰੀ ਗੁਰ ਪੰਥ ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 2004, ਪੰਨਾ 311.
44) ਜਿਨ ਸਿਰਿ ਸੋਹਨਿ ਪਟੀਆ ਮਾਂਗੀ ਪਾਇ ਸੰਧੂਰੁ॥ ਸੇ ਸਿਰ ਕਾਤੀ ਮੁੰਨੀਅਨਿ'' ਗਲ ਵਿਚਿ ਆਵੈ ਧੂੜਿ॥ ਮਹਲਾ ਅੰਦਰਿ ਹੋਦੀਆ ਹੁਣਿ ਬਹਣਿ ਨ ਮਿਲਨਿ'' ਹਦੂਰਿ॥... ਇਕਨਾ ਵਖਤ ਖੁਆਈਅਹਿ ਇਕਨਾ ਪੂਜਾ ਜਾਇ॥ਚਉਕੇ ਵਿਣੁ ਹਿੰਦਵਾਣੀਆ ਕਿਉ ਟਿਕੇ ਕਢਹਿ ਨਾਇ॥ ਰਾਮੁ ਨ ਕਬਹੂ ਚੇਤਿਓ ਹੁਣਿ ਕਹਣਿ ਨ ਮਿਲੈ ਖੁਦਾਇ॥ (ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ 417)
45) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 360.
46) ਆਪੈ ਦੋਸੁ ਨ ਦੇਈ ਕਰਤਾ ਜਮੁ ਕਰਿ ਮੁਗਲੁ ਚੜਾਇਆ ॥ (ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 360)
47) ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 260.

Guru as a Literary Motif: A Nanakian Critique

Dr. Rajesh Kumar Jaiswal*

Introduction

In the times of neoliberal dispensation—heavily marked by capital, commodities, information, technological rationality and extreme individualism--the hollow modes of living have become the order of the day. A vast panorama of calculation, utility and lack of social responsibility is widespread. Commitment to the development of social-self, critical thinking and dissenting activity against injustice and inequality is on a vertical decline. This paper is an attempt to critique the 'holy gurus' of our times in the light of the life, mission and teachings of Guru Nanak with reference to the selected literary texts. Lacking courage and conviction for transforming the self and society, the present day 'holy gurus' are estranged from the values and perceptions introduced by the great Gurus as Buddha, Kabir, Nanak, Mirabai, Ravidas, Vivekananda etc. Representing empathy and courage, Guru Nanak is invoked as a lamp-post for the revolution of values and critiquing the degeneration and futility exhibited in today's gurus. Juxtaposition of the past with the present, a method common in literary studies, is resorted to in this exploration. This paper is a Nanakian[1] critique of the contemporary holy gurus as depicted in Kiran Nagarkar's novel, *God's Little Soldier*[2] written in English, Bushra Ejaz's short story, *Snake and Shadows*[3] in Urdu, and Kashinath Singh's story in Hindi, *Pande Kaun Kumati Tohen Laagi*[4]. These three selected, award winning writers hold distinctions in their respective linguistic-literary traditions. Without indulging into any kind of sweeping generalization, the treatment of the texts given below should make it clear that these writers exhibit some kind of unanimity with regard to the marked degeneration and deterioration in the beings and doings of the holy gurus of our age. The paper juxtaposes an iconic and exemplary persona and engagement of Guru Nanak with that of the gurus of our times as represented in the selected literary narratives. The principal concern of this write up is to foreground the harmful effects of the "sacred" gurus, who wield enormous impact on popular consciousness. They have abandoned their responsibilities of social regeneration, progressive transformation and uplifting of the vulnerable and marginalised masses.

Baba Nanak was an exemplary guru. He laid the foundation of a new faith, Sikhism, which advocates a rejection of all superficial differences and external barriers of caste, creed, and gender. He condemned all discriminations and exploitations of the wretched, carried out in the name of religion. Nanak's

* Faculty in English, U.S.O.L., Panjab University, Chandigarh.

teaching and philosophy was founded on the cardinal values of empathy, equality and social justice. As a revolutionary thinker, Baba Nanak emphasized the oneness of humanity. He was a towering spiritual and cultural figure and his life was brimmed with ethical concerns.There was a perfect harmony between his interior and external projections. By establishing a unity between his ideology and practice, emptying his mind from ego, and rejecting asceticism and other worldly outlook, Nanak became a paradigmatic model of existence and action, not only for the common masses but also for the posterior Sikh Gurus. By giving birth to such institutions as *seva* (service)*, sangat* (congregation) and *langar* (community kitchen), Nanak affirmed equity and inclusivity and championed the disruption of age old sacred codes, hierarchies and divisions. In troubled times of ours, when the world is fraught with commodification and consumerism, hatred and sectarian-divide, egocentrism and authoritarianism, exploitation and inequality, the teachings of Guru Nanak become vital for expanding and awakening of people's consciousness.His teachings and world-views have enormous potential for raising and transforming people's consciousness, agency and giving birth to the public spirited life. So, Guru Nanak became "the heartbeat of Sikh religious, cultural, civic, political, economic, intellectual and creative activities.[5]"

Holy Gurus: Literary Representations

Literature is a powerful tool of social reform and social uplift. It is a persuasive medium of understanding social-structures, cultural-codes and mental make-up of a given society and its people. It has immense revitalizing resources and cultural contents to transform its readers' perceptions, beliefs and values, so that they may live a fuller, richer and deeper life. The literary texts explored in this paper draw the attention of people towards the dishonest, self-indulging and self-righteous gurus of our age. Through these texts, the writers anticipate to effect a change in the public perceptions, by illuminating the omissions and commissions of the (un)holy gurus.

The term, *Guru* suggests a preceptor, mentor, reverential figure."Guru is a spiritual master; either a person or a mystical inner principle which aids emancipation of the disciple[6]." It means more than a teacher. In Indian context, Guru is someone who removes ignorance/darkness and marshals people on the path of piety and enlightenment. Through his exemplary life and conduct, the Guru becomes a source of values and principles for his disciples and followers. "The word *'Guru',* attached with the name of Nanak Dev as a prefix, means 'Teacher, Preceptor, Guide'. It has a spiritual connotation. There is no doubt about it that Guru Nanak Dev was a spiritual teacher of humanity, not only for any particular period but for all times[7]."

Literary texts are replete with the **motifs** (i.e. ideas, images, figures, character-types etc. in literature and other arts, used to establish a theme) of holy gurus. To give a comprehensible picture of the contemporary scenario with regard to the erosion marked in the gurus of our age,the chosen three literary texts are summarised below.

In Kiran Nagarkar's novel, *God's Little Soldier* (2006), Zubeida Khala, a self-appointed faith-keeper of Islam, is presented with a tongue-in-cheek approach by the novelist. Zubeida, is an unmarried woman and *mausi* (mother's sister) of the protagonist, Zia Khan. She chooses the "path of piety" and undertakes an obligation of shaping and consolidating Zia's Islamic faith and identity, so that he becomes the"God's chosen" one, His soldier, and who does his best to save the Islam from all corrupt forces and practices. She succeeds in exercising a strong and lasting impact on Zia's psyche.

Carrying the belief that music and singing (unless done in the praise of Almighty) distract a person from the religious path, Zubeida stops Zia from any such exposure. She considers music, dance and singing as satanic practices and fallen conducts. Seeing Zia's father's passion for musical concert, she considers him as a fallen one: "He's the very image of the evil one. We will all burn in hell for eternity because of him.[8]" She keeps a vigilant eye on Zia round the clock, giving him heavy doses of do's and don'ts regularly. She never allows Zia to question her understanding/wisdom of the Islam. Zubeida rebukes Zia severely once she finds him standing and bowing before the Hindu God, *Ganesh*. She tells him that he has done something forbidden and has betrayed brazenly his faith, Islam. She leaves no such occasions to stir his conscience and make him filled with a sense of guilt and repentance. The novelist writes:

"It was Zia's vocation, Zubeida had determined; to bring back to Islam those who had strayed. His voice would be a thunderous indictment in the ears and consciences of those who had become casual about Allah or had turned their backs upon Him altogether. His own faithwould be like a beacon to sinners. Yes, he would bring back the lost souls of Islam. In due course, he would convert the pagans and idolaters and increase the tribe of the Prophet. And Allah had chosen her, the meek and submissive Zubeida, to mould and guide the little boy into a great pir and saint. That was her mission[9]."

A perception of threat from the 'other' and the 'different' as enemy is a very defining feature of communal consciousness and being hostile to the other is no less spectacular. As a Muslim, Zubeida has a constant sense of threat from the 'Hindu Other'. She had no qualms in poisoning Zia's consciousness with communal frenzy. She mutters: "If only someone would rid us of these dogs, they won't leave us in peace even during the holy month of Ramzan. The police just stand by while they deliberately take out a position to disrupt our prayer

meetings[10]". Addressing Zia as a 'hope' and 'saviour' of Islam, Zubeida frequently prompts him into zealatory. Having pocketed a knife and wishing "Khuda Hafiz" to Zubeida, Zia leaves home for attacking a dog named, *Sher*. In return, Zia was also attacked by the dog, which "took a whole chunk of Zia's exposed thigh in his mouth[11]." Zia did this and many more such disgraceful acts just to please his *Khala*. Her endeavours to give an over exposure of the venomous faith to Zia, triggers his radicalization and the latter is metamorphosed into a deadly terrorist, eventually. For Zia "a life without religion is a pen without ink[12]." A minor neglect of duty, a deviation from traditionally established gender roles and any 'wayward' living by people etc. are considered by Zia as fatal and unforgivable offences. He does his best to eliminate such offenders, especially the disbelievers of Islam. The hostile and intolerant behaviour of Zia should be attributed to Zubeida, who subjected him to harmful prescriptions of distorted Islamic faith.

The story, *'Snake and Shadow'*, written by an Urdu writer, Bushra Ejaz, centres on highlighting the sexual exploitation of a poor and vulnerable girl by a Pir (Muslim Saint). The girl, Rabo, (the middle daughter of Karmu, who earns his bread working as a cobbler and a servant at the village land-lady's house) is suffering from epilepsy. She has fits frequently. "According to doctor's diagnosis, the fits were due to a disease, called Hysteria…but Rabo's parents did not agree with the doctor. They believed Rabo suffered fits of epilepsy due to the effect of some genie[13]." To drive away from the influence of genie, Rabo is taken to a Dera, owned and headed by Pir, Vilayat Hassan Shah. "Pir Sahib had fixed the night time for the treatment. During the treatment, Pir Sahib did not tolerate the presence of somebody else. Genie can enter any other person sitting near him[14]."

"Pir Sahib came. He closed the door from inside. Then he moved towards a box lying in the corner of a room. He opened the box to take something in his hand and turned towards Rabo. His big eyes were turning red. His breathing had become fast and hot. His face was looking darker and burnt in the insufficient light of the lantern. Get up girl—take this poppy powder." Pir Sahib put the powder in a bowl lying near the bed and started moving his hand on her back. Then the area of movement increased. Rabo's eyes closed and soon she felt unconscious.[15]"

After sometime, Rabo's body starts expanding and has had an inflated tummy. She feels a movement inside. Recalling a childhood tale, Rabo comes to be convinced that her bulged belly is caused by the presence of a snake which entered her body during one of her sleeps.

Rabo is constantly haunted by this thought that "the snake has made her stomach a permanent abode.[16]" She never comes to realise that she is pregnant

thanks to the *Pir*. To get rid of the supposed presence of the snake growing inside, Rabo strikes her belly with a dagger. Lying on the cot, bathed in blood, she asks in a feeble voice: "Will it (the snake) come out?" And finally, "her neck rolled on the pillow.[17]"

Through his story, *Pande Kaun Kumati Tonhe Laagi,* Kashinath Singh, an eminent Hindi writer from Banaras**,**highlights the spiritual degeneration and depthlessness of a Brahmin, a holy man, Dharamnath Shastri, who submits to the lure of market and develops an intense craving for profit.Projecting to have expertise in Sanskrit grammar, literature, astrology, palmistry, Dharamnath Shastri lives in Banaras near a *Gangaghat*. Running Paying Guests (PGs) in the city, that is, renting houses mostly to foreign tourists has become a very enticing business. Owing to the flourishing of the PG culture, the prosperity and upward mobility of the *Mallah (*a *Dalit,* earning his livelihood by sailing boats*)* community, is unbearable to the *Brahmins* and *Kshatriyas.*Considering themselves as culturally superior, these upper caste people are not supposed to accommodate in their houses to these tourists, commonly considered as *maleksh*(untouchable/unhygienic persons)on account of their "filthy"life-styles, involving not taking bath regularly, consuming the non-veg and frequently changing of sexual partners etc.

A French lady tourist named Malden from Paris has come to Banaras to learn Sanskrit, Indian Philosophy and Culture.She needs a PG. *Pande's* nephew brings Malden to him. When Savitri (Mrs Pande, his second wife much younger in age) gets to know about Malden, a *kristaain*[18](i.e.Christian) is to stay in their house on rent, she becomes fiery and opposes the deal. Savitri is well acquainted with her husband's lustful character and conduct.Being sick of his father's lecherous behaviour, Shastri's grown-up son from his first wife left the house. However, Shastri is able to persuade Savitri eventually by telling her that she should mould herself with the change of time ("*zamanekehisab se chalna sikho*[19]*"*).

One day, Dharamnath Shastri has a scary dream. In the dream, putting one of His feet on his abdomen and the pointed trident on his chest, Lord Shiva questions: *"Be Dharamnath! Kahn hai be? Nikaal be kothari se!*[20]"(Hey, Dharamnath! Where are you, idiot! Take me out of this dingy room!) The lord *Shiva* insists Shastri to take Him out from the enclosed/suffocating space (kothari).Shiva further reprimands: "In spite of being a scholar of the Vedas and Puranas, you have remained an idiot!I have made the species/creatures. Not Hindus, Muslims and Christians… Probably, you have made these categories. You get up now and take me out!" ("*Tune Ved pada hai! Puran pada hai!… fir bhi murkh ka murkh hi rah gaya!Maine praniyon kisristi kihai. Hinduon, Musalmano, Isaaiyon ki nahi. Ye tune banaye honge… Ab uth aur le chal*[21]*!"*).

In addition, Shastri argues with himself: if an entry of *Chanmars*[22] (the low caste people engaged with peeling and tanning the skin of the dead animals for business purposes) in the Kashi Vishvanath Temple has not defiled Lord Shiva, how come the stay of Malden in his house will be a sinful/immoral transaction! Finally, the prayer room, which contained the auspicious *Shivling*, is converted into a living room with an attached toilet for the paying-guest, Malden and the *Shivaling* is shifted on the roof of the house. In the end, seeing Savitri in a Malden's maxi, there is no limit to Shastri's joy.

A Nanakian Appraisal/Critique

The three literary texts summarised above register a critique of the deterioration and disgrace in the ways of being, seeing and conduct of the contemporary sacred gurus. These texts underscore missing emancipatory and transformational resonances, values and visions from the persona of the present-day gurus, which, if otherwise, may galvanize the people to fight against the vices of lust, greed,fanaticism, authoritarianism and exploitation. The texts delineated above converge on the issue that the holy figures across the religions have failed their faiths, followers and posed threats to the moral fabric of the society.

In the Nagarkar's novel ***God's Little Soldier***, Zubeida Khala's conflict ridden psyche and her conspiracy driven identity is deadly for an inter-religious peace and social harmony. She crystalizes in Zia the dividing and discriminatory notions of 'us' and 'them', 'self' and 'other', the 'Hindu' and 'Muslim' etc. She succeeds in pathologizing Zia by supplying an overdose of conservative, regressive ideologies and world-views, which banks upon the hate for dance-music and gender inequality etc. She doesn't allow Zia to question her "wisdom". Zubeida's conduct as a religious practitioner and preacher is at odds with that of Guru Nanak's pluralistic and progressive teachings. Nanak protested against the so-called sacred codes precipitating social-unrest and divide. Cultural and spiritual resources from the diverse existing faiths went into shaping Nanak's great mind and his pluralistic, tolerant and authentic agency and practice. *Khala's* manipulation and misappropriation of Islam for framing Zia's fanatical subjectivity would have attracted Nanak's severe criticism. Mardana, a Muslim, was Nanak's a long term companion. Guru Nanak very exquisitely and emphatically suggests what it means to be a true and genuine Muslim:

"Make your mercy your mosque, faith your prayer carpet, and righteousness your Qur'an; make your humility your circumcision, uprightness your fasting, so you will be true Muslim. Make good work your Ka'ba, truth your pir, and compassion your creed… let virtuous deeds be your utterance of the *kalmia.*Only then you will be called a true Muslim.[23]"

Khala's sinister acts of damaging Zia's consciousness by reinforcing communal contents and thereby radicalising him to become a hardened extremist is a blatant defilement and ravage of the true Islamic ethos. Her religious engagement and enactment go totally against the Nankian idea of socially responsible living and conducting.

Bushra Ejaz's heart-rending story ***Snake and Shadow*** articulates an abhorrent act of a shadowy *Pir*. *Pir's* predatory act concludes into Rabo's self-annihilation. The ugly deed of the *Pir* snatches Rabo of her life. His appalling deed underscores a horrendous mentality of the *Pir*, who had no qualms in objectifying and exploiting the lowly female.

Any separation between spiritual development and moral conduct wouldn't be acceptable to Guru Nanak. In this connection, Nanak observes: "Truth is the highest virtue, but higher still is truthful living.[24]" *Pir's* conduct is a savage violation of Nanak's message of truthful ways of living. Though Nanak condemned any act of self-mortification/asceticism and striking a balance between the spiritual aspiration (*piri*) and temporal affairs (*miri*) is emphasized within Sikhism, the *Pir* Vilayat Hassan Shah's dreadful act for self-gratification is a outrageous violation of the truthful conduct (*sachachar*), service (*seva*) and self-respect. Religiously living is to render services to the poor and needy, whereas *Pir's* conduct is completely horrible and inhuman. In the *Dharam Khand* (Realm of Duty) section of *Japji*, Nanak describes this Earth as a 'place of earning righteousness' (*dharti dharamsala*[25]). The *Pir's* act of landing Rabo into incredibly painful and traumatic difficulties is quite self-willed/self-centred (*manmukh*[26]), in a stark violation of the conduct of therealized-self (*gurmukh*[27]), that of Baba Nanak, a true educator (*satguru*).

Kashinath Singh's story ***Pande Kaun Kumati Tohen Laagi*** foregrounds a *Brahmin*, Dharamnath Sashtri's, one dimensional personality occupied with profit. His subjectivity is in a control of the market forces. The text highlights *Pande's* psyche deterritorialized from a long established Indian tradition of moral and religious ethos. Being blinded by greed and accumulative craving, Mr *Pande* stands completely decoupled with Nanak's reformist and revolutionary values, visions and being. He cannot resist the pull of the market and finds no better things to take care of than amassing capital and commodities. His act of converting the *puja* room into a paying guest with an attached toilet and dislocating the *Shivling* on the top of his house just to maximize his profit is very much a radical withdrawal from his Faith. *Pande's* deal completely disregards the redeeming ethos of Nanak's *Khara*/*Sacha Sauda*[28] (the true bargain), wherein Nanak spends the money given by his father for business, on feeding the poor and the hungry villagers. Despite bearing an aura and image of holy identity, Mr Sashtri cannot commit himself to any socially empowering undertaking.He in no way models himself on Guru Nanak and his emancipatory endeavours. Being

completely obsessed with the self-seeking, he is socially irrelevant and can't commit himself to change the lives of the disadvantaged, something that Nanak undertookas his life's blue-print, an ethical-political mission.

Conclusion

The foregoing deliberation over the literary narratives should clear that let alone the ordinary people, even the high profile religious gurus and their subjectivities are under siege. Since the holy gurus, by virtue of their distinctive ethical position in society, exercise wide influence on the public,they are supposed to generate self-enhancing and society enriching cultural contents, values-orientations, and mindfulness. Now the question is this: if these crucial figures don't undertake the robust job of transforming the life of self and society, then, who else? Probably, they can do and redeem their people if they may recourse to an examined living, self-reflection, recognition of the right, just and ethical projects of social formations and transformations that were intrinsic to Guru Nanak and his configuration of changing the subjects and society. Baba Nanak had civilizational concerns. He was a public voice, and dared to speak against injustice, oppression and exploitation. He had courage to live differently and chart out new paths. So, he got etched into the popular imagination as the *Wahe Guru* (Wondrous Preceptor!).

References :

1. The term 'Nanakian'is derived from Nanak, who as an enlightener made a significant contribution to change the course of Indian history and society by his revolutionary perceptions, values and praxis. The word figures several times in the USA based Prof.Nikky-Guninder Kaur Singh's seminal works, *The Guru Granth Sahib: Its Physics and Metaphysics* and *The First Sikh*.
2. Nagarkar, Kiran. *God's Little Soldier*, New Delhi: Harper Collins, 2006.
3. Ejaz, Bushra. *Snake and Shadow: Short Stories*, Chandigarh: Unistar Books Pvt. Ltd., 2009.
4. Singh, Kashinath. *Pande Kaun Kumati Tohen Laagi*, a story in *Kashinath Singh: Sankalit Kahaniyan*, New Delhi: National Book Trust, India, 2008.
5. Singh, Nikki-Guninder Kaur. *The First Sikh*, New Delhi: Penguin Random House, 2019, P. 212.
6. Mandair, Arvind-Pal Singh. *Sikhism: A Guide for the Perplexed*, New Delhi: Bloomsbury, 2013, P. 218.
7. Kahlon, Kuldeep Singh. *Educational Implications of Guru Nanak Dev's Concept of Man*, Patiala: Indo Printers, 2005, P. 12.
8. Nagarkar, Kiran. . *God's Little Soldier*, New Delhi: Harper Collins, 2006, P. 11.
9. Ibid, P. 26.
10. Ibid, P. 37.
11. Ibid, P. 34.

12. Juergensmeyer, Mark. *Terror in the Mind of God*, California: University of California Press, 2003, P. 69.
13. Ejaz, Bushra. *Snake and Shadow: Short Stories*, Chandigarh: Unistar Books Pvt. Ltd., 2009, P. 98.
14. Ibid, P. 100.
15. Ibid, P. 101.
16. Ibid, P. 102.
17. Singh, Kashinath. *Pande Kaun Kumati Tohen Laagi*, a story in *Kashinath Singh: Sankalit Kahaniyan*, New Delhi: National Book Trust, India, 2008.
18. Ibid, P. 195.
19. Ibid, P. 197.
20. Ibid, P. 202.
21. Ibid, P. 203.
22. Ibid, P. 201.
23. Singh, Pashaura&Fenech, Louis E. *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, New Delhi: Oxford University Press, 2014, P. 252.
24. Ibid, P. 234.
25. Ibid, P.234.
26. Mandair, Arvind-Pal Singh. *Sikhism: A Guide for the Perplexed*, New Delhi: Bloomsbury, 2013, P. 218.
27. Ibid, P. 218.
28. Thapar, Sewram Singh. *A Critical Study of Sri Guru Nanak Dev*. www.whitefalcon publishing, 2019, P. 13.

An Analytical Study of Shri Guru Nanak Dev as the Voice of the Subaltern

Dr. Kriti Kuthiala Kalia *

In the framework of Post-colonial Theory, the term 'subaltern' has come to refer to "those sections of people of communities who are under the command of the ruling class , subject to the hegemony of dominant groups" (Ashcroft 198) and therefore pushed to the margins, having no say in the socio-political voice of the society. Subaltern classes may include workers, peasants and other groups who are denied access to 'hegemonic' power. The primal focus of subaltern studies has always been an investigation of subordination in its various forms.

Cultural theorists like Antonio Gramsci and Gayatri Spivak used the term 'subaltern' to refer to the unrepresented in the society. In the Indian context, the term acquires an even greater significance as the paradigms of 'otherness' in India have always been manifold, owing to its variety in terms of classes, religions, languages, castes and so on. For the purpose of this paper, the premise has been the Indian Subaltern – those oppressed classes and castes of India which were reeling under not just the oppressive regimes of the tyrant rulers but also ended up being pushed to the fringes by the prejudiced, puritan practices across both Hinduism and Islam. This has then been analyzed with the explicit goal of seeing Shri Guru Nanak Dev's work as a social movement to establish a society where no one would be oppressed and the subaltern would be heard.

Guru Nanak Dev is acclaimed as one of the greatest spiritual reformers who preached love, peace, tolerance, social justice and universal brotherhood. His travels (*udasis*) and teachings are ample proof of the empathy that he displayed towards the populations who were placed outside the hierarchies of power. He became the voice for the social groups excluded and displaced from the socio-economic institutions of significance and thereby denied a cultural and political voice.

When Guru Nanak Dev appeared on the scene in the latter half of the 15th century, the Indian society was in a lamentable and ramshackle state owing to the havoc that the domination of the Mughal rulers had wreaked upon India. This was further worsened by the strict brahminical extremism. The Muslims ruled the Hindus; taking advantage of their power, they perpetrated much violence and oppression upon the Hindus, specifically attacking their culture by means of cow slaughter and demolition of *mandirs*. While it were mainly the eco-political reasons that spurred the higher castes (the higher castes refused to partake their

* Assistant Professor, Department of English, D.A.V. College, Chandigarh

food, time, ideas with the lower castes because of their intention to keep them bound in economic and political slavery and to 'show them their place'), the common man was blinded by religious whims. Castes rallied against castes, sects turned on each other. Irrespective of who the perpetrator was, the worst victims were always the lowermost rungs of the society. The subaltern element in the Indian society at the time was clearly demonstrated in the glaring disparity between "the caste arrogance of the twice-born…and the deplorably contemptuous lot of the once-born (the untouchables)" (*Papers on Guru Nanak* 127). Guru Nanak Dev mourned this miserable state of affairs:

The Kali-age is the knife, the kings are butchers

And righteousness hath taken to wings.[1]

He further says:

If a man makes a request for God's sake, nobody hears him

Nanak! Mean now-a-days are men only in shape and name.[2]

He was tormented by the condition of women being tortured by the soldiers, subjected to double the subjugation due to their caste as well as gender. "Broken are their strings of pearls. Wealth and beauty…have now become their bane. Dishonored and with ropes around their necks, they are carried away by soldiers." (Macauliffe 116) Standing up for the oppressed, Guru Nanak Dev thoroughly condemned the tyranny of the weak kings, the exploitative officials, the unfair Qazis and oppressors of all other types. He thought it was senseless to consider those people lower in status "who belong to the working class…and labour hard to maintain the healthy growth of society [while] the people who enjoy all luxuries of life at the cost of their labour are considered high caste" (*The Religion of Guru Nanak* 142.)

Identifying with the lowest of the low (in fact in many of his verses he has called himself as such, a humble servant devoted to the service of the God) he undermined the caste system and eliminated all social distinctions based on birth. Openly criticizing the unfair and ritualistic caste practices, Nanak worked tirelessly towards exposing the hypocrisy of superiority or inferiority by virtue of birth instead of the qualities of one's character. His strong disapproval of the hypocrisy of caste conscious Hindus is evident in these lines:

They have sacred marks (*tilak*) on their forehead…

They have daggers in their hands and act as world's butchers;

They earn their living from those they call *Malechhas*, yet they worship the *Puranas*;

…they allow no one to enter their cooking squares…

But their bodies are already defiled with their foul deeds

And their hearts are false even when they perform ablutions after their meals.[3]

In challenging the hereditary roots of legacies of the tribe, race and family, Guru Nanak Dev practiced what he preached and set an example by not proclaiming his own biological sons, Sri Chand and Lakhmi Das, to be the 'guru' after him.

One of the most important contributions of Baba Nanak Dev in becoming a mouthpiece for the rights of the subaltern population of India was inspiring in them an initiative to awaken their self-respect and give up their tendency of defeat and abjection:

Those who merely live, depart in dishonor

Everything they eat is impure.[4]

This simply means that if one lives a life bereft of self-respect, he is not worth the salt that he eats. The multitude of social prohibitions and religious taboos that hollow ritualism fettered the Hindus with, not just nudged them into bankruptcy but also drained any self-reliance they had possessed. While the high born justified their oppressive strategies towards the lower castes by claiming it as their birthright, the latter wallowing in the lack of self-consciousness submitted without questions to this misery that they considered pre-destined. Guru Nanak Dev encouraged an attitude of resistance against exploitation as the primal step to freedom. In the introduction to *Papers on Guru Nanak*, Dr. Fauja Singh, says that Guru Nanak Dev "impressed upon them (the subalterns) the great desirability of leading a life of self-respect. He was greatly pained to find around him people who behaved themselves in a manner abjectly servile and abashed." (v) Guru Nanak Dev went ahead and manifested this very idea beautifully in the concrete reality of institutions like '*Sangat*' and '*Pangat*' (also known as *Guru ka Langar*.) The spirit of these concepts, that Guru Nanak Dev dedicated two decades of his life to, is embodied by people from varied backgrounds, castes, classes, genders coming together to sit, eat, talk and exchange ideas without any discriminatory stance or reservations, thereby bringing them close in thought, deed and service to humanity and hence, service to God. Guru Nanak Dev's message was "*Kirat Karo, Naam Japo, Vand Chakkho*" (do your work, keep God in your thoughts, share the fruits of your labor.) Such a message would have definitely prompted men of higher castes to become more empathetic towards those from the lower ones, thereby strengthening the moral and spiritual fabric of the society as a whole – the bond created through breaking bread together would certainly prove to be strong and enduring against caste and class discrimination.

Guru Nanak Dev's position as such a powerful pioneer of societal improvement was primarily secured by his experiment of *Raj-jog*, a society-centered religious life. He was not a mere mystic removed from the troubles of the world, he was a part of the system that he was attempting to change which is the most pragmatic approach that one can think of. In his conversation with the *Sidhs* of *Sumer Parbat*, who had completely renounced the world, the Guru warns:

The world is in the throes of sin and the *Dhaul* under the earth is crying for rescue. The *Sidhs* have hidden themselves in the mountains. The *Jogis*, devoid of knowledge, are wasting away their time by rubbing their bodies with ashes every day and night. The world is lost because there is none to save it from evil. (qtd. in *Papers on Guru Nanak* 75)

He was convinced that men should follow their vocations for a smooth conduct of economic equilibrium in the society as well as to instill a feeling of self-respect, usefulness and independence in the person.

Bhakti poets like Kabir had attacked the atrocities of the system from within as they themselves belonged to the subaltern class. Kabir himself expressed his "trenchant criticism of caste for being based on birth" by saying, "Kabir, all men mock at me for my low caste." (*The Sacred Writings of the Sikhs* 204, 206) Kabir was never heard much by the high castes despite having professed a communion with the God. He might not have been taken seriously due to the thought that he wished to denounce something for which the members of Kabir's caste had been craving and had failed to get. Even those poets who belonged to high castes like Ramanand were reduced to sheer declarations of their own opinions and were not able to generate much public response, unlike Guru Nanak Dev who became the face of the resilience from within. Dr. Pushpa Suri opines:

The basic difference lay in the approach to the problem. The high class *bhaktas* did not dive very deep into the emotional maelstrom they created, the lower class *bhaktas* were mere voices than personalities. Guru Nanak tackled this problem with the concern of a physician who …wanted to exterminate the germs of the disease. (*Papers on Guru Nanak* 212)

In this, he set himself apart from being a mere religious reformer. The reformer aims at transformation within the religion, attempting to appeal to the authorities designated by the religious rubrics. Someone like Guru Nanak Dev, who was his own authority, became the founder of a religion than just a religious reformer.

More than his instruction, Guru Nanak Dev proved by his conduct that he stood for the subaltern, that caste wasn't designed by God and that no one

deserved to be oppressed. When he met Bhai Lalo, a carpenter at Aminabad and chose to stay with him instead of Malik Bhagu, a rich noble whose lavish feast he immediately declined, his action was severely judged for flouting Hindu *Dharma*. It is famously narrated that on being asked why he did so, he held Lalo's humble scrapings in one hand and Bhagu's sumptuous treats in another. As he squeezed the two, Lalo's food gave way to drops of milk while Bhagu's food started dripping with drops of blood, metaphorically indicating that blood and life was being choked out of the common people by the corrupt and oppressive government officials. Guru Nanak Dev also took Mardana, a Muhammedan *Mirasi* (a harp player who used to beg) as his inseparable companion, who accompanied him throughout his *udasis*. Guru Nanak Dev sang to the tunes of Mardana's *Rabab*(harp) until the latter's death and then utilized the services of his son, Shahzada. Bhai Mardana has always been described as a peculiar companion, always hungry, skeptical and getting into problems from which Guru Nanak Dev had to deliver him. Given that Mardana was obviously not as evolved in thinking as Guru Nanak Dev, one may infer a two-fold metaphorical conclusion. Mardana can be interpreted as Guru Nanak Dev's alter ego, worldly and domestic, that in keeping with his concept of *Raj-jog*, he neither gave up on nor let it overpower him. Alternatively, Mardana, a subaltern himself, may be representative of anyone or everyone who seeks God and finds a perennial guide in Guru Nanak Dev.

The concept of *Halemi-raj* or the ideal state given by Guru Nanak Dev was founded in morality, compassion and common welfare and has very strong undertones of the same ideals that the Marxist philosophy of a classless society propagates:

Halemi-raj is the restructured society on foundations of equalitarianism and egalitarianism where there are neither exploiters nor exploited…which seeks to bestow temporal sovereignty on the common people and involved in statecraft a liberal order where the temporal power was vested in the *Khalsa* and the spiritual power in the Holy *Granth* (*Political Ethics of Guru Granth Sahib* xiv.)

Thus, it becomes an amalgamation of spiritual and democratic society where men are their own masters, no one controls the means of production and hence the means of exploitation and the state is in the service of the common people, who are extremely aware and conscious of their rights.

Guru Nanak Dev debunked the idea of 'cooking squares' – the practice of ear-marking an area where high caste Hindus would cook and eat and the rest were forbidden from entering it lest their food should be defiled. He mixed freely with the lower castes, choosing to share their meals instead of those offered by the high castes, while the other high caste *bhaktas* had been contented with merely the "occasional symbolic acceptance of food from their hands." (*History*

of Sikhs 25) The free community kitchens that he established lent a blow to the rigidity of caste system everywhere. He didn't discriminate the high against the low, the rich against the poor and the ruler against the subject. He paralleled the low caste *shudra* to the twice born Brahmin, and considered the subjected non-Muslim on the same level as the Muslim ruler. In liberating the society from "fossilized precepts of Hinduism" (*Papers on Guru Nanak* 215) too, Guru Nanak Dev laid the foundation of an open and inclusive society. It held "all the attractions of brotherhood and equality of status on the social front, congregational prayers which symbolized open church on the religious and the responsibility of community solidarity on the moral side." (ibid. 215)

In conclusion, Guru Nanak Dev focused his efforts on ameliorating the fate of the men and women constituting the mass population rather than the elites. As a harbinger of spiritual, moral and social awakening, he spoke for those who were cast aside, who were marginalized and who had lost their right as well as will to a respectable life of integrity and worth. His philosophy of humanism with its emphasis on empathy, charity and non –violence shall always stay relevant as his doctrine of all humans being equal resounds in this beautiful thought:

Avvali allah nur upai(In the beginning, God created light)

Kudrat de sabh bande(All are creations of Nature)

*Ik noor te sab jag upjya (*From that one light the world has been born)

Kaun bhaley, kau mandey?(So how can some be good and some evil?*)*[5]

Notes

1. Quoted in "Guru Nanak's Teachings in the Social Context of his Time" in *Papers on Guru Nanak*, p 204. Originally from Shri Guru Granth Sahib, Tr. By Gopal Singh, Vol. I, Shloka M. I, p. 137.
2. Quoted by M.A. Macauliffe, *The Sikh Religion*, 1963. Vol.1, P. 75
3. Quoted in "Society as depicted in *Asa di Var*" in *Papers on Guru Nanak*, p. 166.
4. From Sri Guru Granth Sahib, Shloka M. I, p. 142.
5. Quoted in *Political Ethics of Guru Granth Sahib*, p 12.

Works Cited and Consulted

- Ashcroft, Bill, et al. *Post –Colonial Studies: The Key Concepts*. 2nd Ed. London: Routledge, 2000.
- Bal, Sarjit Singh. Ed.,*Guru Nanak in the Eyes of the Non-Sikhs*. Chandigarh: Panjab University Publication Bureau, 1969.
- Banerjee, A.C.*Guru Nanak and His Times*. Patiala: Punjabi University, 2000.

- Grewal, J.S.*Guru Nanak in History*. Chandigarh: Punjab University Publication Bureau, 1969.
- Kaur, Gurdeep. *Political Ethics of Guru Granth Sahib*: *The Concept of State*. Delhi: Deep & Deep Publications, 2000.
- Macauliffe, M.A. *The Sikh Religion: Its Gurus, Sacred Writings and Authors*.Vols. I and II. Delhi: Low Price Publications, 1996.
- Singh, Darshan. *Indian Bhakti Tradition and Sikh Gurus*, New Delhi: New Age Publishers and Distributors, 1979.
- -----. *The Religion of Guru Nanak*, Ludhiana, Lyall Book Depot, 1970.
- Singh, Fauja, and Arora, A.C. Eds.,*Papers on Guru Nanak: Punjab History Conference Proceedings*. Patiala: Phulkian Press, 1970.
- Singh, Harbans. Ed., *Perspectives on Guru Nanak: Seminar Papers*. Patiala: GGSDRS, 1975.
- Singh, K. and Singh, T. *The Sacred Writings of the Sikhs*, Hyderabad: Sangam Books, 2003.
- Singh, Khushwant. *A History of the Sikhs: Vol I: 1469-1839*. 2nd Ed. London: Oxford University Press, 2005.
- Talib, Gurbachan Singh. Trans.*Shri Guru Granth Sahib*. Vols. I, II, III, IV. Patiala: Punjabi University, 1985, 1987, 1988, 1990.

Shri Guru Nanak and Effective Communication: A Theoretical Analysis

Dr. Bhavneet Bhatti *

Over the centuries, several thinkers, scholars, spiritual guides and leaders have made immense contribution in curing the ills of a social structure and remoulding the fabric of society. Amongst the various spiritual leaders, the one that stands out in not only finding a new religion but also in giving a new dimension to humanity is Shri Guru Nanak Dev. The founder of Sikh religion and first Guru of Sikhs, Shri Guru Nanak Dev made an unparalleled contribution in laying the foundation for a new social order. His word and his message introduced a new way of thinking, bridged the gap between different social classes prevalent at that time and gave birth to a new faith that continues to serve humanity. Shri Guru Nanak's message also made an immense contribution in the fields of literature and spirituality. His texts including *Babarvaani, Japji Sahib, Siddh Gosht* to name a few, are believed to be masterpieces not only in terms of the religious communication but also in terms of their literary brilliance. Moreover, the method of message composition and dissemination, choice of language, the magnitude of impact, made Guru Nanak's message one of the best examples in effective communication. The present paper is an attempt to analyse the message composition of Guru Nanak with reference to the theories of effective communication in order to understand the elements which make his communication effective across geographical boundaries, social strata, time and age. As one celebrates the 550 year old legacy of Shri Guru Nanak, this becomes an opportune time to revisit his message and imbibe it with lessons in effective communication.

As one looks closely at Shri Guru Nanak's life and message, it becomes significant to understand the core that made his communication effective. The fact that his message was able to transcend not only the geographical boundaries but also the boundaries of age, gender, social class and caste, makes it pertinent to study the elements of his communication that appealed to diverse audiences from varying backgrounds. From the content and subject matter of his message, to the poetic composition and delivery, there is plenty to learn from Shri Guru Nanak's message. In fact, along with the verbal communication, his gestures, his ability to convey message through actions even before uttering any words, all become a part of effective communication. Along with imbibing his message, one can also learn from his teachings as to how can one make communication effective and far reaching. Shri Guru Nanak's travel, tales related to his childhood, message of his *Baani* all hold the key to effective communication.

* Assistant Professor, School of Communication Study, Panjab University, Chandigarh.

The present paper is an attempt to revist the life and message of Shri Guru Nanak from the perspective of effective communication to be able to gain insights into making one's everyday communication effective.

Shri Guru Nanak's communication has had a far reaching impact in various fields of communication including messages of social reform, literary communication and spiritual communication. Revisiting Shri Guru Nanak's message with special focus on his contribution to the social communication brings to forefront his work as a social reformer. One can hope that Guru Nanak's message can help in reinvigorating the present social structures that seem to crumble under the various social pressures. The present day society holds several challenges and social issues which can be addressed as one looks closely into the life and teachings of Shri Guru Nanak. For instance, drug abuse, addictions and lifestyle issues remain major challenges of the fast moving world and the message of Guru Nanak can help look at solutions to these problems by effectively communicating with youth. This is again possible if we are able to take Guru Nanak's message to the masses effectively, with reach and adoption as Guru Nanak did. Secondly, literary communication, which is often seen as a foundation of an enriched society, has been deeply influenced with the life and message of Guru Nanak. Thirdly, the concept of Spiritual communication can be best understood as one looks at the spiritual life and message of Shri Guru Nanak. As our society is one of the fastest growing and evolving societies with a majority of youth population, it becomes very essential that this young majority develops a sense of purpose and direction that can help make a better society. Shri Guru Nanak's message on spiritual communication can help in instilling this sense of purpose and direction.

The present paper will not only help revisit the multi faceted persona and contribution of Shri Guru Nanak but also help in making concrete suggestions and recommendations on how the word of Shri Guru Nanak can help enrich the society on present day and age by making everyday communication more effective.

Guru Nanak's Communication vis-à-vis Process of Communication and Theoretical Foundations of Effective Communication

Communication comes from Latin word 'Communis' or 'Communicare' i.e. 'to make common'. Communication can be defined as sharing of ideas, opinions, expressing yourself through words, symbols and gestures. Communication has also been understood as the process of creating meaning between two or more people through the expression and interpretation of messages. Communication exists in many forms– Intrapersonal Communication**,** Interpersonal Communication**,** Group Communication and Mass Communication. The most basic and potent form of communication is intra personal communication, also known as communication with self. Whichever higher form of communication an individual engages in, he is constantly engaged in intra-

personal communication. This form of communication is also significant in the present study as Shri Guru Nanak's Communication has a deep connect with intra personal communication. Guru Nanak in his *Baani* emphasizes on the significance of thoughts, and communication with self. Inter personal Communication refers to communication between individuals and Group Communication refers to Communication in small and large groups. Again both these forms of communication become relevant to present paper as we look at Shri Guru Nanak's communication, his ability to connect with individuals and his prowess of communicating in small and large groups. Mass Communication deals with communicating in the mass society. In today's day and age where Shri Guru Nanak's message is being disseminated through various mass and new media, mass communication theories become important in understanding this dissemination. Communication can also be seen from the perspectives of verbal and non-verbal communication. Gestures, body language and non-verbal communication plays a very important role in making any communication effective. One finds a number of non verbal cues in Shri Guru Nanak's communication. Right from his dress up, his medium of conveying the message, his actions even before he uttered his words, all are examples of non- verbal communication and its role in effective communication.

Besides literary brilliance another factor that made Guru Nanak's communication effective was the fact that he paid attention towards the receiver. Shri Guru Nanak's communication became effective because he focused on empathy, compassion and people who were receiving the message rather than mere use of words. A number of instances from *Janamsakhi* show that Guru Nanak had the ability to mould his message according to his audience. Effective Communication occurs when you are able to convey intended meaning to the receiver. The four basic elements of communication are understood as Sender, Message, Channel and Receiver. At the most basic level, communication is understood as a process where the sender encodes and message and the receiver, decodes, interprets the message before encoding his message in response. A communication is believed to be effective when this interpretation or understanding of the message is as per the intentions or expectation of the sender. Another important concept in effective communication is the concept of 'meanings'. Scholars have expounded that 'meanings lie in people and not in words'[1]. The statement lays emphasis on the fact that the receivers are extremely important to the process of effective communication. No matter how brilliant be one's command over the language, but if one's words do not mean the same to the receiver, as they do to the sender, there is little scope of effective communication. Shri Guru Nanak's communication became effective because he focused on reaching out to the minds of his audiences rather than mere dissemination of knowledge.

Guru Nanak's Communication and Seven C's of Effective Communication

As one analyses the 7Cs of effective communication vis-à-vis Shri Guru Nanak's message composition and dissemination, one realizes that how this theoretical approach also holds true in case of His communication. 'Newsom, Turk and Kruckeberg posited the 7Cs of effective communication as Content, Context, Clarity, Channel, Credibility, Consistency, Capacity and Capability of audience'.[2] Shri Guru Nanak's communication also helps in understanding this concept of effective communication. In terms of 'Content' Shri Guru Nanak spoke on social issues which made his content most relevant. The 'Context' of his messages was politically and socially topical. For instance, *Babarvaani* has a political comment. The 'Channel' of his message delivery was use of *raag*, music and poetry, this added to appeal of his message. 'Credibility' of his message comes from the fact that he practised what he preached and thus led by example. 'Consistency' came from the fact that He preached his message in varying ways focusing on the same value. Lastly, 'Capacity and Capability of audience' becomes relevant in Shri Guru Nanak' Communication as he altered his message as per his audience. His choice of language, his choice of examples and analogies were based on the common people and common phenomenon around them so that they would be able to comprehend the message.

Guru Nanak's Communication and Theories of Religious Communication

The word 'religion' comes from the Latin word *'Religious'* meaning to bind or tie together. Communication comes from Latin 'Communicare' and root word 'Communicatus', meaning to share or make common. Religious Communication theories point out that the meaning and purpose of life are derived from a faith tradition grounded in scripture, doctrines, and religious experiences. Most Western Religious Communication theory evolves from the Jewish and Christian Traditions**.** In broadest sense, religious communication is a process of reconciling people who have been separated from their spiritual nature with each other and with God and theoretical foundations point out the purposes of Religious Communication as (a) influencing the audiences to believe in God (b) Inspiring moral actions based on those beliefs (c) Inculcating a religious consciousness and identity in audiences[3]. Thus, the basic purposes of religious communication fall in line with Guru Nanak's communication. Guru Nanak was able to influence his followers and inculcated a belief in existence of One Supreme Being and in Oneness of God, thus he was successful in (a) influencing the audiences to believe in God. Further in terms of (b) inspiring moral actions, Guru Nanak lead by example as he inspired the followers to perform moral actions by performing those actions himself. He made these actions a part of his lifestyle and his followers were therefore motivated to perform moral actions. Thirdly in terms of (c) inculcating a religious consciousness and identity, Guru Nanak was able to inculcate an identity –'Sikh' – seeker. Thus, the religious communication theories fall in sync with Shri Guru Nanak's method of religious communication.

Shri Guru Nanak and Persuasive Communication

Persuasive communication can be defined as any message that is intended to shape, reinforce or change the responses of another or others.[4] The basic nature of persuasive communication makes it close to religious communication as in both cases the attempt is made to reshape or mould the belief system of receivers. Religious communication has also been linked with coercion, manipulation and propaganda as over the centuries, religious propagators have used these mechanisms to influence the beliefs of masses. However, all these three forms differ from persuasion as the latter is characterized by free will of the receiver to accept or reject the persuasive attempt of the sender**.** Pertinent to mention here is that the uniqueness of Guru Nanak's communication and effectiveness also lies in the fact that his message is adopted with free will and thus falls under the realms of Persuasive Communication. His persuasion is effortless and is extremely effective as his message lead to establishing of a new religious faith. His messages are able to change the belief and value system of people; they not only adopt his way of thinking with free will but also propagate his message and adopt them as a part of their lifestyles. Thus, one draws lessons in persuasive communication through Guru Nanak's communication. The prime factor in his persuasive communication becomes his factor of implementer leadership where he leads by example and explains the value of his message by actions.

Further, Miller identified three dimensions of persuasive activity, the process of response shaping, response reinforcing and response changing. In simple words this meant that persuasive communication was intended at shaping new beliefs in individuals where there was no existent belief system, reinforcing the existent belief system and changing the existent belief system to new ideas and value systems. Communication theories provide a foundation to understand how these dimensions of persuasion can be identified in Guru Nanak's Communication. Social learning theories describe how 'response shaping' takes place. The theories explain that in this case individuals base their behaviour by observing the positive and negative outcomes associated with the 'model's behaviour. The word 'model' here refers to the leader who persuades the audiences to follow his belief system. In case of Guru Nanak's message and communication, Guru Nanak shunned social evils and preached openly against the meaningless religious rituals which oppressed the underprivileged sections of the society. As narrated in the Janamsakhis, Guru Nanak as a child refused to wear the *jeneau* or the sacred thread and questioned the caste system. His action of refusing to put the sacred thread led to questioning of existing belief systems and thus began the journey of shaping new beliefs. Further Janamsakhis provide evidence of how Guru Nanak's actions led to response shaping amongst his followers. The second characteristic of persuasive communication is 'response – reinforcing' which means instilling the masses with a faith that the belief system

they are following is the right path and thus should be sustained. 'Response-reinforcing' plays a central role in the development of our social, political and religious institutions. Most religious services for example are designed to reinforce belief in a prescribed doctrine and to maintain lifestyles consistent with that doctrine.[5] This characteristic of persuasive communication is again found in Guru Nanak's communication, as Guru Nanak found Sikhism and his followers believed in the doctrine which continues to be a faith today.

Thirdly, persuasive communication is characterized by 'Response-changing' where an individual undergoes dramatic changes in value systems. Even in a civilized society where there is no dearth of access of knowledge and learning we find individuals abandoning their belief systems and choosing to walk a new path of political or religious beliefs. The belief, value and lifestyle changes that these individuals experience clearly reflect the response-changing dimension of persuasion. Although some response alteration experiences are sudden and extreme, most response changing processes evolve slowly over a period of time. This characteristic is again found in Guru Nanak's communication. From his own childhood experience of refusing to wear the sacred thread, to another janamsakhi where he points his feet towards the Mecca and talks about omnipresence of God to another incident where he composes 'Aarti' at Jaganath Puri, all of these become the initial steps which lead to slow but long term changes in belief system of his followers.

Thus, one finds that characteristics of persuasive communication are found in Guru Nanak's communication and theories of persuasive communication, and attitude formation hold true when analyzed vis-à-vis effectiveness of persuasion in Guru Nanak's communication.

Shri Guru Nanak and Theories of Message Adoption

Communication theories provide a vast literature over how new ideas and messages are introduced in the society and how they get adopted over a period of time. Amongst the large body of work, 'Diffusion of Innovation' by Everett M Rogers is believed to be the most relevant in the study of message adoption in social systems. Analysis of Shri Guru Nanak's communication vis-à-vis the theory of Diffusion of Innovation explains how Guru Nanak was able to effortlessly put new ideas in the society and how the followers not only appreciated his messages but also adopted them and practised them in a long run. The theory of 'Diffusion of Innovation' explains how new ideas or innovations are introduced in the society and how they gradually diffuse or become a part of the society through an adoption process over time. The main elements in diffusion of new ideas are (a) innovation or the new idea (b) communication channels (c) time (d) social system.[6] Although the theory of Diffusion of Innovation is usually applied to technological innovation and their introduction in the society, however, in the present context, this theoretical approach is applied to Guru Nanak's communication as it helps in analysing how Guru Nanak was

able to communicate new ideas to the society. The sequential steps in Adoption process are Knowledge, Awareness**,** Comprehension, Liking, Preference, Trial and Adoption. Shri Guru Nanak's message not only passes the stages of Adoption but becomes a way of life. One sees the adoption process in Guru Nanak's method of message delivery. He assures that his message lead to awareness and comprehension. He also tries that His message is put to practical trial through actions and only then people develop a preference and adoption that is sustainable. This is relevant as the adoption process can be applied to present day audience to make impact of communication more meaningful.

Elements of Shri Guru Nanak's Communication

Eleanor M Nesbitt in her book 'Guru Nanak' traces the elements that make Guru Nanak's Communication effective[7.] Guru Nanak's communication has been analysed both in verbal and non verbal terms and a holistic view is presented as Nesbitt puts across travel, language, music and symbol as the factors of Guru Nanak's effective communication. According to *janamsakhis* Shri Guru Nanak travelled extensively from Iraq and Mecca to Sri Lanka and Tibet and how he is able to take his message of oneness of God across geographical boundaries. His Communication thus achieves the element of reach and hence achieves wider adoption through Travel. Further, Language becomes an important factor in effectiveness of Guru Nanak's communication. In ancient traditions, dissemination of religious messages was only in Sanskrit or Arabic which led to a very limited reach. The religious messages were limited only for intellectuals and highly learned people and not the common man. Guru Nanak used language that could reach out to the common man. His verses include phrases from Arabic, Sanskrit, Persian, Braj Bhasha, Hindui and a number of local dialects which reached out to the common man. The SMCR Model of Communication focuses on sub-elements of Message as code, content, treatment, element and structure. Language becomes an important Code and use of Poetry becomes an essential treatment which makes Guru Nanak's communication effective. Closely connected with language and method of message delivery is the use of music and *raag* in Guru Nanak's Communication. *Raag* in simple words can be understood as a combination of notes in which Indian music is based. Shri Guru Nanak used *raags* and their purpose was not only to embellish his message but rather they create a message which is more resonant and memorable. Music helps create emotive meaning which leads to more intense engagement with the message, perhaps the reason behind *Keertan* (religious recital) being a significant part of all religious practises. Finally the use of Symbol has been seen as an important factor in effective communication. Guru Nanak gave the concept of oneness of God and the symbol Ek Oankar makes the message of oneness more effective. It also makes for a striking symbol on paper and is today often used as a symbol / logo for the Sikh faith.

Lessons in Effective Communication from Japji Sahib

Japji Sahib composed by Guru Nanak is one of the greatest compositions in the Sikh Scriptures**.** Japji Sahib is composed for recitation as litany, and is written in a mixture of languages[8]. Japji follows the traditional patterns of compositions of the times beginning with an invocation to God. It opens with a statement on the nature of God, his uniqueness and omnipotence and immortality. The last verse of Japji sums up all that it takes to achieve perfection: self –control, patience, knowledge and earnest prayer[9]. Beyond a literary masterpiece and perhaps the greatest spiritual text, Japji Sahib is also a lesson in effective communication. If the text of Japji sahib is analysed vis-à-vis communication, one can draw many lessons in effective communication. From intra personal and interpersonal communication to business communication, Japji Sahib can offer a learning in skills that can enrich our communication. Essential Communication Skills required today include Reading, Writing, Speaking and Listening. The skill that is usually missed or less practiced is the skill of 'Listening'. According to Rogers and Roetlisberger, 'The biggest block to personal communication today is man's inability to listen intelligently, understandingly and skilfully to another person'[10]. Communication experts today believe that if one can delve in meaningful listening, most of the communication problems can be resolved. It is also discussed that meaningful listening is possible only when one develops empathy. Here the lessons from Japji Sahib become relevant. Although Guru Nanak speaks of listening the Name of Supreme Being, and urges on 'listening' from a spiritual perspective but when applied to communication, one understands the importance and significance of being empathetic and listening. From the perspective of communication skills, a practice of 'listening' can help in achieving a higher consciousness that can help in effectively communicating with self and the world.

suni-ai siDh peer sur naath.
Listening - the saints, priests, warriors and recluse.
suni-ai Dharat Dhaval aakaas.
Listening - the earth, its support and sky.
suni-ai deep lo-a paataal.
Listening - the oceans, lands of the world and the nether regions.
suni-ai pohi na sakai kaal.
Listening - Death cannot even touch you
suni-ai pohi na sakai kaal.
Listening - Death cannot even touch you
naanak bhagtaa sadaa vigaas.
O Nanak, the devotees are forever in bliss.

suni-ai dookh paap kaa naas.

Listening - pain and sin are erased.

(Japji Sahib, Pauri 8) [11]

Conclusion

Thus, Shri Guru Nanak's life and message offer an invaluable lesson in effective communication. As the theories of effective communication, persuasive communication and message adoption are applied to Guru Nanak's message, one learns that the theoretical foundation of effective communication is in sync with Guru Nana's message. His message composition and dissemination teaches lessons in message composition and dissemination for effective communication. Guru Nanak's message also offers insights in successful intra personal, interpersonal and group communication. The theories of communication composed in the modern world, seem to be streaming from the lessons given by Shri Guru Nanak centuries ago and revisiting Guru Nanak's message vis-à-vis communication theories provides further validation to the exiting theories besides adding to the lessons in effective communication.

REFERENCES

1. Lederman, L.C. (1977) New Dimensions: An Introduction to Human Communication, W.C. Brown Co.
2. Rozaimie, A., (2014), Communication & Relationship, Author Solutions (Partridge Singapore).
3. Littlejohn, S.W. and Foss, K.A. (2009), Encyclopaedia of Communication Theory, SAGE Publications.
4. Stiff, J.B., Mongeau, P.A. (2002), Persuasive Communication, Guilford Press.
5. R. Miller in. Stiff, J.B., Mongeau, P.A. (2002), Persuasive Communication., Guilford Press.
6. Rogers E.M.,(2003) Diffusion of Innovation (5th, ed), Simon and Schuster.
7. Nesbitt E,M. and Kaur G.,(1998), Guru Nanak Volume 2 of Indic Values Series, Bayeux Arts.
8. C.Shackle and A. Mandair, (2013) Teaching of the Sikh Gurus: Selections from the Sikh Scriptures, Routledge.
9. Singh, K., and Nanak. Hymns of Guru Nanak, (1991), UNESCO Collection of representative works : Indian Series. Oreint Blackswan.
10. Carl R. And Roethlisberger, F.J. (1991)'Barriers and Gateways to Communication' Harvard Business Review.
11. Sikhi Wikki, The Sikh Encyclopaedia, https://www.sikhiwiki.org/index.php/Japji_Sahib_Pauri_8

Printed at : Panjab University Press, Chandigarh
P.U.P. (435) 100+4P/ 19-03-2020